❀ श्रीजिनायनम ❀

श्री वाणी भूषण पं० ब्र० भूरामल शास्त्री

विरचित

जयोदयनाम महाकाव्यं

प्रकाशक —

ब्रह्मचारी सूरजमल (सूर्यमल जैन)

श्री १०८ श्री वीरसागर जी महामुनेः संघे

मिति ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी वी० सं० २४७६	卐	प्रथमावृत्ति १००० (मूल्यं स्वाध्यायमेव)

प्रकाशकीय निवेदनं



प्रिय महानुभाव! आपके सामने एक बिल्कुल नवीन चीज उपस्थित कर रहे हैं, यद्यपि यह जटिल संस्कृत भाषा में श्लोकबद्ध है, और वह भी उच्च काव्य शैली से रचा गया है अतः यह चीज खास तौर से विद्वानों के अवलोकन करने योग्य हैं। मेरा विचार था कि इसके साथ में ग्रन्थकर्ता से हिन्दी अनुवाद करवा कर छपा दिया जावे। किन्तु कई कारणों की वजह से नही छपा सके। भविष्य में समाज इसकी मांग करेगी, तो संभव है कि ऐसा हो सकेगा। वर्तमान में केवल मूल ही आपके सामने उपस्थित किया जा रहा है। इसकी जटिल संस्कृत और प्रौढ़ रचना एवं नवीन टाईप की वजह से अत्यधिक परिश्रम करने पर भी स्थूल २ कई जगह पर त्रुटियाँ रह गई हैं। एतावत्ता इसका शुद्धयाशुद्धि पत्र जो कि इसके साथ है, अतः पाठकवृन्दों से सविनय निवेदन है कि अध्ययन करते समय सुधार कर पढ़ें। इत्यलम्

ब्रह्मचारी सूरजमल (सूर्यमल जैन)
श्री मुनि वीरसागर जी का संघ

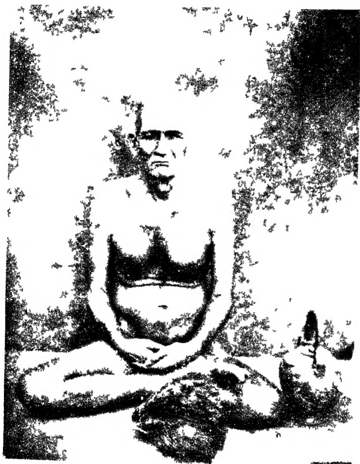


श्री परम पूज्य चारित्रचक्रवर्ति श्री १०८ श्री आचार्य
शान्तिसागरजी महाराज

समर्पितं

श्री परम पूज्य जगदोद्धारक चारित्र चक्र-
वर्ति श्री १०८ श्री आचार्य शांतिसागर
महामुनेः पट्ट शिष्य श्री पू० प्रातःस्मर्णी
आचार्य कल्प श्री १०८ श्री वीर-
सागर महामुनेः करकमलेषु
समर्पित मिदं जयोदय नाम
महाकाव्यं ।

जयोदय महाकाव्य—



श्री आचार्यकल्प—

श्री वीरसागर जी महाराज

प्राक्कथनः

अद्याप्यस्मिन्महीमंडले सुरभारती विशिष्ट प्रवणाः प्रच्छन्न-महाविद्वान्सो वर्त्तंते ये श्री हरिचन्द्र वीरनंदि वाग्भट्ट माघ कालिदास भारवि भवभूत्यादि महाकवि योग्यतां दधाना अपि प्रचार लोकेऽपि पूजकादि सामग्री विरहादप्रसिद्धिमेव प्राप्तास्ते-षामेवान्यतमोऽस्य महाकाव्यस्य रचयिता महाकविः पंडित-श्री भूरामलजी शास्त्री महोदयो जैनः अनेन महाकविना श्री महापुराणोक्तजयकुमार सुलोचना कथानकमवलंब्याष्टाविंशति-सर्गात्मकमेतन्महाकाव्यं व्यरचि। ग्रन्थ कर्तुरस्य गीर्वाण वाण्यां कियान् प्रवेषः कीदृशी च कवित्वशक्तिरिति महाकाव्यस्यै-तस्याध्ययनेनैव परिचयो भविष्यति। काव्य निर्माणेन महा-कविनाऽस्मिन् काव्ये अनुप्रासपूर्त्यै यावान् प्रयत्नो विहित-स्तावान् यद्यर्थ स्पष्टताऽपि सुलचिताऽभविष्यत्तर्हि विदुषामधि-कमनोमोदकरमेतत् क.०यमभविष्यदित्यसंकोचम्। बहुषु स्थलेषु व्यर्थ क्लेश बोधो दुनोति चेतस्तत्र महाकवेरस्या-नुप्रासान्वेषणमेव हेतुर्नतु कवित्वे कश्चिदपिदोषः। जयपुर राज्यान्तर्गत राणोली नामकोपनगर वास्तव्योऽयं दिगम्बर जैनः खंडेलवाल जातीय छावड़ागोत्रीयः पंच पंचाशद्वर्षवयस्कः बालब्रह्मचारी वाणीभूषणः श्री भूरामल शास्त्री महोदयः

सर्व प्रभाव संप्रयुक्तया महामहिम गीर्वाणवाण्याः सेवां चकारेति महान् प्रमोदास्पदावसरः ।

ग्रन्थकर्त्तु रस्य पितृपादमहोदयो वणिग्वरः श्रीचतुर्भुज-महाशयः सप्तवर्ष देशीयमेवैनं महाकविं परित्यज्य स्वर्ययौ। राणौली ग्रामे न काचित्संस्कृत पाठशालाऽप्यासीत् । महाकवि समेताः पंचभ्राता आसन् । गृहार्थिकदशापि साधारणमे-वासीत् तथापि प्रबन्धकर्त्तायं विद्वन्निकेतन बनारस नगरे गत्वा यथाकथमपि गीर्वाणवाणी मातुरेवंविधः सेवको वभूवेत्याश्चर्य-करमेव । अवगम्यते किल बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।

प्रक्षालनादिपंकस्य दूरादेवास्पर्शनं वरंमिति ज्ञायं ज्ञायम-नेन स्वकीय विवाह प्रस्तावोऽपि निषेध पथं प्राप्तः । वर्षद्वयादयं महाकविर्विद्वान् श्रीमत्परम दिगम्बर निर्ग्रन्थ वीतराग महा-मुनि श्री १०८ श्री वीरसागर महात्मनां संघे धर्माचार एव कालं यापयन् संघस्थ साधून् गीर्वाणवाण्या समलंकुर्वाणः स्वजीवनं सार्थकं विदधाति ।

वर्षत्रयादास्माकीन् भारतदेशः स्वातन्त्र्यमभियातः स्वतन्त्रेऽस्य राष्ट्रभाषापि गीर्वाण वाण्येव भविष्यत्येकदेति सुनिश्चि-तमतोऽद्युतः । सुरभारत्यां यावत्यपि नवनिर्मितिर्भवेत् यावानपि प्रचारो भवेत्तत् सर्वमेव तोषकरम् । सुरभारतीं केनापि प्रकारेण कोऽपि स्मरेदित्येव तोषमोदकरम् ।

ग्रन्थस्यास्य प्रकाशने श्री १०८ श्री आचार्यकल्प श्री वीरसागर जी मुनिराज संघसेवको विद्वान् श्री सूर्यमल ब्रह्मचारी महान्तं यत्नं विदधे तेनैव धनिकदातृ जनानुत्साह्यै तत्प्रकाशनाय प्रबंधो विहितोऽतः सोऽपि तावदेव धन्यवादार्हः यावदयं काव्यनिर्माता । यैरपि महाशयैरस्य महाकाव्यस्य मुद्रणाय प्रकाशनायार्थदानं कृतं तेऽपि धन्यवादार्हा अनुकरणीयाश्च ।

जयपुरम्
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी
२००७ वैक्रमाब्दः

पं० इन्द्रलाल जैनः
शास्त्री विद्यालंकारः
जैन गजट संपादकः



जयोदय काव्य का प्रतिपाद्य विषय

प्रथम सर्ग में – हस्तिनापुर के पुरातन राजा जयकुमार भरत चक्रवर्ति के सेनापति का कीर्तिगान किया गया है, अनन्तर जयकुमारजी वन क्रीडार्थ गये, वहाँ उन्हें एक मुनिराज के दर्शन हुए, उनकी स्तुति की और कर्तव्य का मार्ग पूछा।

द्वि० स०—मुनिराज के मुँह से गृहस्थ धर्म का उपदेश हुआ उसे सुनकर आप घर लौटते समय एक सर्पिणि जो इनके साथ मुनिराज से धर्म श्रवण कर रही थी, वह किसी दूसरे से लगी हुई थी, उसे देखकर आपने उसे झिड़काया, देखा-देखी अन्य लोगो ने भी उसे धुत्कारा और पत्थर ईंटों से पीटा, वह मर कर व्यन्तरी हुई, और अपने स्वामी जो व्यन्तर हुआ था उससे कोइ बहाना बनाकर जयकुमार की शिकायत की। क्रोध मे आकर वह देव जयकुमार को मारने आया, इधर जयकुमार अपनी प्रियाओं के समक्ष उपर्युक्त घटना सत्य सत्य कह रहे थे, उसे सुनकर देव प्रतिबुद्ध होकर उसका सेवक बन गया।

तृ० स०—जयकुमार सभा में बैठे हुए हैं, काशी नरेश का दूत आकर सुलोचना के स्वयंवर की खबर देता है और आप स्वयंवर के लिए काशी पहुँचते हैं।

च० स०—अर्ककीर्ति भी सुलोचना के स्वयंवर क समाचार सुनकर काशी पहुँचता है।

पं० स०—और और राजाओं का काशी पहुँचना और स्वयंवर समारोह का होना इत्यादि वर्णन है।

ष० स०—विद्यादेवी के द्वारा राजाओं का परिचय करा गया। इसके बाद सुलोचना ने उचित समझ कर जयकुमार के गले में स्वयंवर माला डाली।

स० स०—अर्ककीर्ति के एक सेवक ने अर्ककीर्ति को स्वयवर के विरुद्ध भड़काया है, सुमति मन्त्री के द्वारा समझाये जाने पर भी, अर्ककीर्ति युद्ध करने को तैयार हो जाता है, एव युद्ध होता है उसका वर्णन ८वें सर्ग में है।

न० स०—जयकुमार की जीत अर्ककीर्ति की पराजय से अकंपन महाराज खुश होकर प्रत्युत्त अन्मना होते हैं। अब सोचते हैं कि अर्ककीर्ति को किस तरह खुश किया जावे, अन्त में अन्वय विनय के साथ वे अपनी सुलोचना से लघु बालिका अक्षमाला नाम की लड़की के साथ विवाह कर देते हैं और इस बात की खबर भरत चक्रवर्ति के पास भेज देते हैं।

द० स०—जयकुमारजी के विवाह की तैयारी होती है, जयकुमार जी को बुलाया गया है और दोनों दुलहा दुलहिन को परस्पर में मिलाकर मडप में उपस्थित किया गया।

एकादश स०—जयकुमार के मुंह से सुलोचना के रूप सौंदर्य का वर्णन

द्वा० स०—उन दोनों के पाणिग्रहण का वर्णन और आई हुई बरात का अतिथि सत्कार एव जीमनवार वर्णन।

त्रयो० स०—जयकुमार ने श्वसुर से आज्ञा पाकर सुलोचना के साथ अपने नगर के लिए प्रयाण किया और रास्ते में चलकर गंगा नदी के तट पर पड़ाव डालते हैं।

च० स०—वन क्रीड़ा और वन क्रीड़ा का वर्णन।

पंच० स०—रात्रि और सन्ध्या का वर्णन।

षो० स०—लोगों के द्वारा की गई पान गोष्ठी का वर्णन।

सप्तदश स०—रात्रि क्रीड़ा का वर्णन।

अष्टा० स०—प्रभात का वर्णन।

एकी० स०—जयकुमार द्वारा की गई सन्ध्यावन्दन सामायिक का वर्णन और उसमे सविस्तार जिन भगवान की स्तुति की गई है।

विश स०—जयकुमार महाराज भरत चक्रवर्ति के भेंट करने के लिए गये हैं और वहाँ से लौटते समय आकर जब हाथी गंगा मे प्रवेश करता है, तब एक देव मकर का रूप धारण करके गज को हड़प करना चाहता है. तब जयकुमारजी घबड़ाये और डूबने को तैयार हो जाते हैं, इस बात को देखकर सुलोचना जो कि गगा के उस तीर पर थी, उसने णमोकार मन्त्र का जाप्य करती हुई गंगा में प्रवेश किया तब उसही वक्त सती के पुण्य प्रभाव से जल देवता का आसन कम्पायमान हुआ और वह आकर उपस्थित होता है—

सुलोचना जयकुमार की पूजन करके अपना परिचय देकर वापिस चली जाती है।

एकविशः स०—जयकुमार के अपने घर को रवाना होने का वर्णन है।

द्वा० स०—जयकुमार अपनी प्रिया के साथ अपने महल की छत पर बैठे हुए बातें कर रहे है, इतने ही में दोनों दपति देव विमान को देखकर जाति स्मरण करते हुए अवधि ज्ञान को प्राप्त हुए। अवधि ज्ञान को पाकर मूर्च्छित होते हैं, होश में आने के बाद जयकुमार सुलोचना से पूर्वभवो के विषय में प्रश्न करते हैं और सुलोचना जवाब देती है। अन्त में इनको पूर्वभव की विद्या भी प्राप्त हो जाती है।

त्रयोविंश: स०—सुलोचना के साथ जयकुमार विमानारूढ़ होकर अनेक तीर्थों की वन्दना करते हुए कैलाश पर्वत पर पहुँचते हैं, वहाँ कैलाश गिरि का वर्णन है, और दोनों दम्पति चैत्यालय मे जाकर भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं उसका वर्णन है, और चैत्यालय के बाहर निकल कर दोनों दम्पति पर्वत की शोभा को देखते हुए पृथक् पृथक् हो जाते हैं। इधर एक देव स्त्री के वेष में जयकुमार के सामने आकर अपने आपको विरहिणी कहते हुए संगम की प्रार्थना करता है और जयकुमार के इन्कार होने पर उन्हें ले भागता है इस बात को देखकर सुलोचना उसे डाँटती है, तब उसने जयकुमार को छोड़ दिया।

च० स०—दोनो के सहयोग सभोग का वर्णन।

प० स०—जयकुमार को वैराग्य उत्पन्न होता है, अत. उनके मुँह से १२ भावनाओं का वर्णन है।

ष. स०—उन्होंने अपने लड़के को राज्यतिलक का वर्णन।

सप्तविंश स०—आप जाकर ऋषभदेव भगवान् के पास पहुचते हैं और दीक्षा की याचना करते हैं, भगवान् उन्हें अष्टाविंश-मूल गुणा का आदेश देते हैं।

अष्टाविंश स०—जयकुमार के द्वारा की गई तपस्या का वर्णन है। अन्त में ग्रन्थ समाप्ति रूप मगलाचरण और कवि प्रशस्ति है।

ब्र० सूरजमल जैन
मुनि वीरसागर जी महाराज का संघ

जयोदय महाकाव्य—



इस ग्रन्थ के रचयिता—

ब्रह्मचारी भूरामल जी शास्त्री



वाणीभूषण-महाकवि-ब्रह्मचारि-भूरामल-शास्त्रि-

विरचितं

जयोदय-महाकाव्यम्

प्रथमः सर्गः



श्रियाश्रितं* सन्मतिमात्मयुक्त्याखिलज्ञमीशानमपीति युक्त्या ।
तनोमि नत्वा जिनपं सुभक्त्या जयोदयं स्वाभ्युदयाय शक्त्या ॥१॥

पुरापुराणेषु† धुरागुरूणां यमीश इष्टः समये पुरूणां ।
श्री हस्तिनागाश्रयणश्रियोभूर्जयोऽथ योऽपूर्वगुणोदयोऽभूत् ॥२॥

कथाप्यथामुष्य यदि श्रुतारात्तथा वृथासार्य ! सुधासुधारा ।
कामैकदेशक्षरिणी सुधासा कथा चतुर्वर्गनिसर्गवासा ॥३॥

---

* रुद्र-विष्णु-ब्रह्म पक्षोऽप्येतद् वृत्तं प्रयुज्य व्याख्येयं ।

† पुरा यं किलाणेषु द्वादशांगरचनारूपशब्देषु धुरा आपुः स ईशो गणधरः श्रीगुरूणां पुरूणां समये सञ्जात इष्टः सोऽसावपूर्वगुणोदयः महादेवतुल्यगुणवानभूत् यतः हस्तिर्गणेशः नागः शेषस्तयोराश्रयणश्रियोभूर्महादेवोऽसौ तु हस्तिनागपुरपालक आसीदेव ।

तनोति पूते जगतीविलासात्स्मृता कथा याथ कथं तथा सा ।
स्वसेविनीमेव गिरं ममारात्पुनातु नातुच्छरसाधिकारात् ॥४॥
समुन्नतं कूर्मवदंघ्रिपद्म-द्वयं स मासाद्य शिवैक* सद्म ।
धरास्थिराऽभूत्सुतरामराजदेकः पुराहस्तिपुराधिराजः ॥५॥
यथा कथाचारपदार्थभावानुयोगभाजाप्युपलालिता वा ।
विद्यानवद्यापनबाल† सत्वं संप्राप्य वर्षेषु चतुर्दशत्वं ‡ ॥६॥
अरिव्रजप्राणहरो भुजंगः किलासिनामा नृपतेः सुचंग ।
स्म स्फूर्तिकीर्ती रसने बिभर्ति विभीषणः संगरलैकमूर्तिः ॥७॥
निःशेषकाष्ठांतरुदीर्णमाप प्रभावमेतस्य पुनः प्रतापः ।
रविः कवीन्द्रस्य गिरायमेष तस्यैव शेषः** कणसन्निवेशः ॥८॥
गुणैस्तु पुण्यैकपुनीतमूर्तेः जगन्नगः संग्रथितः सुकीर्तेः ।
कन्दुत्वमिन्दुत्विऽनन्यचौरैरुपैति राज्ञो हिमसारगौरैः ॥९॥
जगत्यविश्रान्ततयातिवृष्टिः प्रतीपपत्नी नयनैकसृष्टिः ।
निरीतिभावैकमदं निरस्य प्रावर्ततामुष्य महीश्वरस्य ॥१०॥
नियोगिवन्द्योऽवनियोगिवन्द्यः सभास्वनिन्द्योऽपि विभास्वनिन्द्यः।
अरीतिकर्त्तापि सुरीतिकर्त्तागसामभूमिः स तु भूमिभर्त्ता ॥११॥
अधीतिबोधाचरणप्रचारैश्चतुर्दशत्वं गमितात्युदारैः ।
विद्याश्चतुःषष्टिरतः स्वभा § वादमुष्य जाताः सकलाः कलाः वा॥१२

---

* आनन्दनं जलं च । † न, बालसत्वं तथा नवा, अलसत्वं वा । ‡ भरतादिक्षेत्रेषु सर्वत्राधीति बोधाभरणप्रचारप्रकारेण चतुः प्रकारत्वं यद्वा सम्वत्सरेषु चतुरुत्तरदशवर्षत्वं । ** अवशिष्टः । § एकस्य शोडषकलातः चतुर्णां चतुःषष्ठिकलाः स्युरेव चतुरधिक-दशाविद्यावतश्च चतु.षष्ठिः कलानां युक्तैव ।

सुरैरसौ तस्य यशःप्रशस्ति-समंकिता सोमशिला समस्ति ।
कलंकमेत्थंकदलं तदर्थ-विभावनायामिह योऽसमर्थः ॥१३॥
भवाद्भवान् भेदभवामचंगं भवः सगौरीं निजमर्द्धमंगं ।
चकार चादो जगदेव तेन गौरीकृतं किन्तु यशोमयेन ॥१४॥
शौर्यप्रशस्तौ लभते कनिष्ठां श्रीचक्रपाणेः सगतः प्रतिष्ठां ।
यस्यासतां निग्रहणे च निष्ठा मता सतां संग्रहणे च निष्ठा ॥१५॥
व्यर्थं च नार्थाय समर्थनन्तु पूर्णो यतश्चार्थ्यभिलासतन्तु ।
स विश्वतोरोचनमृद्धदेशं कोषं दधौ *श्रीधरसन्निवेशं ॥१६॥
युधिष्ठिरो भीम इतीह मान्यः शुभैर्गुणैरर्जुन एष नान्यः ।
स्याद्वाच्य † ता वा नकुलस्य यस्य ख्यातश्च सद्भिः सहदेवशस्यः॥१७
अहो यदीयानकतानकेन रवेः सवेगं गमनं च तेन ।
कृतोऽपदोऽमुष्य रथाङ्गमेकं हयाः समापुर्गता ‡ तिरेकं ॥१८॥
महीभृतामेव शिरस्सु सौस्थ्यं सदादधानो विषमेषु दौस्थ्यं ।
प्रजासु शम्भुः सविभूतिमत्वं बभार च श्रीमदहीनभृत्वं ॥१९॥
न वर्णलोपः प्रकृतेर्न भङ्गः कुतोऽपि न प्रत्ययवत्प्रसंगः ।
यत्र स्वतो वा गुणवृद्धिसिद्धिः प्राप्ता ॥यदीयापदरीति ऋद्धिं ॥२०॥
नटीमुदाऽमन्दपदामसेयं लासंरसासभ्यजनानुमेयं ।
प्रसिद्धवंशस्य गुणौघवश्यमुपैतु भूमण्डलमण्डनस्य ॥२१॥
समुल्वणे यस्य यशःशरीरे निमज्जनत्रासवशेनमीरे [] ।
गृहीतमेतन्नभसा गभस्ति-सोमच्छलात्कुम्भयुगं समस्ति ॥२२॥

---

* कुबेरः विश्वलोकनकोषनिर्माता चार्यश्च । † शब्दविषयता निन्दा च । ‡ वैषम्यं । ॥ सुखादि, विनाशश्च । [] समुद्रे ।

यस्य प्रसिद्धं करणानुयोगं समेत्य तद्दीव्यगुणप्रयोगं ।
बभूव तावन्नव* तानुयोगचतुष्टये हे सुदृढोपयोग ॥२३॥
यस्यापि × वर्गप्रतिपत्तिमत्त्वं महीपतेः संलभते स्फुटत्वं ।
गतश्चतुर्वर्गबहिर्भवत्वं + पुमान् समूहो न किलापसत्वं ॥२४॥
अहीनलम्बे भुजमञ्जुदण्डे विनिर्जिताखण्डलशुण्डिशुण्डे ।
परायणायां भुवि भूपतेः सः शुचेव शुक्लत्वमुवाह शेषः ॥२५॥
यन्नाभिजातो विधिराविभाति सदा विषादीकुसुमेष्वरातिः ।
हरेश्चरित्रं कृतकं सभीति तस्यानुकूलास्तु कुतः प्रणीतिः ॥२६॥
बुद्धिं गतत्वात् पलितोज्वलाधकीर्तिर्भुजंगस्य गृहं प्रसाद्य ।
इत्वाम्बरं नन्दनमेतिचार-महोजरायान्तु कुतो विचारः ॥२७॥
मद्दुर्हृदां देहत एव बाह्यमनिस्सरन्तीमसतीं निगाह्य ।
कीर्तिं सतः स्वैरविहारिणीन्ते सती प्रतीयन्त्वधिपाः प्रणीतेः ॥२८॥
भोगीन्द्रगेहे ननु नागकन्या यत्कीर्तिपूर्त्याहिसुरी च धन्या ।
स्वर्गे स्ववर्गे मनुते कविः स्वं भवद्गुणस्तोत्रमयं हि विश्वं ॥२९॥
करं स जग्राह भुवो नियोगात्कृपालुतायां मनसोनुयोगात् ।
दासीमिवासीमयशास्तथैनां विचारयामास च संहृतैनाः ॥३०॥
दिगम्बरत्वं न च नोपवासश्चिन्तापि चित्ते न कदाप्युवास ।
मुक्तो जनः संसारणात्सुभोगस्तस्याद्भुतोयं चरणा॥ नुयोगः ॥३१॥

---

* नवसंख्यावत्वं नवीनत्वं वा ।
× पवर्गस्याङ्गत्वम् उत्तरलोकज्ञत्वं च ।
+ पवर्गभिन्नवर्णसमुदायः साशङ्को मनुष्यश्च ।
॥ पादसम्पर्कः सदाचारप्रतिपादकग्रन्थश्च ।

प्रवर्त्तते किञ्च मतिर्ममेयं नभस्यभूद् व्याप्ततयाप्यमेयं ।
तेजस्सतो जन्मवतोग्रवर्ति धनायितं तद्रवितामियर्ति ॥३२॥
न्यशेशयत्यज्जलधींस्तु सप्त तस्यात्र तेजस्तरणिस्सुदप्तः ।
व्यशेषयन्वाद्भुतमीर्षमार्य १ तकान् शतत्वेन तथारिनार्यः ॥३३॥
निपीय मातङ्गघटास्रगोघं स्पृशन्त्यरीणां तदुरोप्यमोघं ।
बामा* ध्वनामात्ममतं निवेद्य यस्यासिपुत्री समुदाप्यतेऽद्य ॥३४॥
सहस्रशोऽन्येऽपि नृपास्तु सन्तु राजन्वतीभूर्भवतास्त्वियन्तु ।
समन्ततोधिष्ण्यकुलाकुला वा ज्योतिष्मती रात्रिरुतेन्दुभावात् ॥३५
त्रि† वर्गनिष्पन्नतयाखिलार्थानमुष्य मेधालभतामिहार्थात् ।
एकाप्यनेकानि कुलान्यरीणां, शक्तिः कुतोग्रस्तु महोग्रवीणा ॥३६
दयालुतां चाप्यपदूषणत्वं कुन्दन्तु शीर्षे दरिणां हितत्वं ।
मत्वारिरप्यस्य कथोपगामी दम्भं॥ परन्त्वत्र निभालयानि ॥३७
भावैकनाथो जगतां सुभासः सम्प्राप भानुश्रितधामतां सः ।
भूरञ्जनो यस्य गुणश्च देव इवास्य चारिर्नतु भेद×एव ॥३८॥
नदन्ति वाजिप्रमुखाः परं च येनात्मगोत्रं समलंकृतं च ।
धात्रीफलं केवलमश्नुवानः कौपीनवित्तोऽरिरिवेशितानः ॥३९॥
त्रिवर्गसम्पत्तिमतोऽत्रमन्तु मदच्चराणां कलनाः का सन्तु ।
नवेतिवार्थाब्धियो भवन्तु तस्येति वार्तास्तु लयं व्रजन्तु ॥४०

---

* वाममार्गगामितां, भयङ्करताञ्च ।

† ३×३=९ तस्मान्निष्पन्नतया धर्मार्थकामाविरोधाच्च ।

॥ दकारमिति भकारं कृत्वा भयालुतामित्यादि ।

× भकारस्थाने वकारः करणीयः यथा द्वावैकनाथ इत्यादि ।

स धीवरो वा *वृषलो मतश्च रतः परस्योपकृतावतश्च ।
तदङ्गजाप्य †न्वयनीत्यधीना शक्तिः प्रतीपे व्यभिचारलीना ॥४१
अनंगरम्योऽपि सदंगमावादभूत्समु ‡ द्रोप्यजडस्वभावात् ।
न गोत्रभित्किन्तु सदा पवि ‡ त्रस्वचेष्टितेनेत्यमसौ विचित्रः ॥४२
महावि§ काशस्थितिमद्विधानः सदा **नवारित्वमहोदधानः ।
सुर: भ्य साधारणशक्तितानः शत्रुश्च शश्वत् कृतिनः समानः॥४३
युगादिभर्तु: सदसां सदस्य इत्यस्मदानन्दगिरां समस्यः ।
हंसः स्ववंशोरुसरोवरस्य श्रीमानभूच्छ्री सुहृदां वयस्यः ॥४४॥
इहाङ्गसम्भावितसौराष्ठवस्य श्रीवामरूपस्य वपुश्च यस्य ।
अनङ्गतामेव गता समस्तु तनुः स्मरस्यापि हि पश्यतस्तु ॥४५॥
घृणांघ्रिणाऽधारि सुधारिणश्चाङ्गजेन पद्मे जडजेऽपि पश्चात् ।
एतच्छयच्छायलवोऽप्यहेतुर्निरुच्यते सम्प्रति पल्लवे तु ॥४६
वचोयदचोभगुणैकबन्धोः पद्मार्थसद्माथ सुपुण्यसिन्धोः ।
आसीत्तदारामललाममश्च महोतदन्तः स्फुरदम्बुदश्च ॥४७
वर्णेषु ×पञ्चत्वमपश्यतस्तु कुतः कदाचिच्च ॥ पल्लत्वमस्तु ।
सज्जं + घभावं भजतो नग + त्वं जगौ परोमुष्य पुनस्तु सत्वं ॥४८

---

* शूद्रः धर्मधारकश्च । † कुलपरम्परा । ‡ मुद्रासहितो वारिधिश्च । ‡ वज्रधारक इन्द्रः परिशुद्धश्च । § प्रसन्नतां पक्षी अविश्च काशश्च तयोः स्थितिमद्विधानं यस्य वनवासत्वात्। ** इन्द्रत्वं दानशीलत्वं च पक्षे सर्वदा नवीनशत्रुतां । ‡ यशोविशिष्टापूर्वशक्तिः पक्षे सुलभे स्वल्पशक्तिः । ×ब्राह्मणादिषु नाशं, अक्षरेषु पञ्चमत्वं वा । ॥ चाञ्चल्यं चकारपरत्वं वा । + समीचीनजयावत्वं जघकारत्वं वा । + गकाराभावत्वं पर्वतत्वं वा।

छलेन लोम्नां कलयन् शलाकाः यूनोगुणानां गणनाय वाकाः।
अपारयन्त्रेदनयान्वितत्वाच्चिक्षेपता मूर्ध्नि विधिर्महत्वात् ॥४६
किलारिनारीनिकरस्य नूनं वैधव्यदानादयशोऽप्यनूनं।
तदस्य यूनो भुवि बालभावं प्रकाशयन्मूर्ध्नि बभूव तावत् ॥५०
पदाग्रमाप्त्वा नखलत्वधारी भवन्विधुः साधुदशाधिकारी।
ततस्तदप्राक्सुकृतैकजातिः सपद्मरागप्रवरः स्म भाति ॥५१॥
रमासमाजे मदनस्य चारौ स्मयस्य चारौ विनयस्य मारौ।
कुले समुद्दीपक इत्यनूमा कचच्छलात्कज्जलधूमभूमा ॥५२
आदर्शमङ्गुष्ठनखं नृपस्य प्रपश्य गत्वा पदमुत्तमस्य।
मुखं बभारानुमुखं च भूमावशेषभूमानवमानभूमा ॥५३॥
स्वर्गात्सुरद्रोः सलिलान्नलस्य लताप्रतानस्य भुवोऽपकृष्य।
सारं किलारं कृत एष हस्तः रेखात्रयेणेत्यथवा प्रशस्तः ॥५४॥
यतश्च पद्मोदय* सन्निधानः सदासुलेखा † न्वयसेव्यमानः।
श्रीपञ्च + शाखः सुमनः ÷ समूहेश्वरस्य कल्पद्रुरिहास्मदूहे ॥५५॥
सर्वेन ॥ तेयः पुरुषोत्तमेऽतिसक्तो न भोगाधिपतिर्न चेति।
श्रीवीरता × मप्यमजद्यथावद्विपत्र ✽ भावं जयतोऽनुधावन् ॥५६॥

* पद्मस्योदयः पद्माया वोदयस्तस्य निधानं यत्र।
† करपक्षे लेखा रेखाः कल्पद्रुपक्षे लेखाः सुराः।
+ हस्तः कल्पवृक्षश्च।
÷ सज्जनशिरोमणेः देवेंद्रश्च।
॥ स जयो यो वै किल नते पुरुषोत्तमेऽसक्तः स च वैनतेयो गरुडो योऽसौ पुरुषोत्तमे कृष्णेऽनुरक्तः।
× श्रीवीरतां, श्रीनिर्लतां च।
✽ विपदस्त्रायत्वं, पत्राभावत्वं च।

* क्षुरक्षणे स्मोद्यतते मुदासः सुरक्षणेभ्यः सुतरामुदासः ।
बवन्धमाऽमुष्य पदं रुषेव कीर्तिः प्रियाऽवाप दिगन्तमेव ॥५७॥
बानारदाह्लादि सदाननन्तु व्यासेन संश्लिष्टमुरः परन्तु ।
बभूव नासा शुककल्पना सा करे रतीशस्य परा शराशा ॥५८॥
भोगीन्द्रदीर्घापि भुजाभिजातिररिश्रियामेव रुजां प्रजातिः ।
यातिर्यगुक्तार्गल तातिरस्तु वक्षःश्रियोऽमुष्य च वास्तु वस्तु ॥५९॥
मुदामुकस्येक्षणलक्षणाय नीलोत्पलं सैष विधिर्विधाय ।
रजांसि चिक्षेप निधाय पंकेऽप्यतुल्यमूल्यं पुनराशुशंके ॥६०॥
तपस्यताब्जेनपयस्यनूनममुष्य नाप्ता मुखतापि यूनः ।
× किमन्त्यजस्यादि + मवर्णतासौ मौनं नु यस्य द्विजराज ॥ राशौ॥६१
भालेन सार्द्धं लसता सदास्यमेतस्य तस्यैव समेत्य दास्यं ।
सिन्धोः शिशुः पश्यतु पूर्णिमास्यं चन्द्रोऽधिगन्तुं मुहुरेष भाष्यं ॥६२
कंठेन संख्यगुणो व्यलोपि वरोद्विजाराध्यतयाऽधरोऽपि ।
कर्णौ सवर्णौ प्रतिदेशमेष बभूव भूपो मतिसन्निवेशः ॥६३॥
सुबाप पद्मा हृदि नाभिकापि तन्मंगलाप्लावनलापिवापी ।
विहारकर्मोपवनन्तु दूर्वाः पर्यन्ततो लोममिषाददुर्वा ॥६४॥
मनो मनो जन्मनिदेशि भूपेऽमुष्मिन् श्रियापावनयानुरूपे ।
श्रुतिं गतेऽकम्पनभूपपुत्री उवाह सा रूपसुधासवित्री ॥६५॥

---

* पृथ्वीपालने दुर्लक्षणे च ।
× अन्तस्थितजकारस्य चाण्डालस्य च ।
+ आदौ मकारवत्त्वं ब्राह्मणत्वं च ।
॥ चन्द्रस्य वृत्तौ, द्विजानां प्रधानसमूहे च ।

जयस्तवास्तामिति मागधेषु पठत्सुबालापितुरुत्सवेषु ।
आकर्ण्य वर्णावनुसज्जकर्णा सदस्यभूत्तच्छ्रवणीऽवतीर्णा ॥६६॥

ह्रियां क्रियासौ तु पितुः प्रसादाद्द्विभ्रया भिया चैव जनापवादात् ।
ततोऽत्र सन्देशपदे प्रलीना बभूव तस्मै न पुनः कुलीना ॥६७

श्रीपादपद्मद्वितयं जिनानां तस्थौ निजीये हृदि सन्दधाना ।
देवेषु यच्छ्रद्दधतां नमस्या भवन्ति सद्यः फलिता समस्याः ॥६८

समगंनावर्गशिरोऽवतंसः गुणो गुणात्संगुणितप्रशंसः ।
सुलोचनाया अघमोचनायाः कृतः श्रुतप्रान्तगतः सभायाः ॥६९

तमेव लब्ध्वावसरं हरारिः शरीरशोभाजयहेतुनाऽरिः ।
जयं विनिर्जेतुमियेष तत्तं तयात्मशक्त्या खलु मूर्तयातं ॥७०

गुणेन तस्या मृदुनानिबद्धः स योशनैः सन्ततिमित्समृद्धः ।
अलिर्वलाद्दारुविदारकोऽपि किमिष्यते कुड्मलबन्धलोपी ॥७१

न चातुरोप्येष नरस्तदर्थमकम्पनं याचितवान् समर्थः ।
किमन्यकैर्जीवितमेव यातु न याचितं मानि उपैति जातु ॥७२

यदाज्ञयार्द्धाङ्गितया समेति प्रियां हरो वैरपरोऽप्यथेति ।
स्मरं तनुच्छायतयात्ममित्रमयं क्षमो लंघितुमस्तु कुत्र ॥७३

गुणावदाता सुश्री वयः स्वरूपाऽस्यराज हंसीकम+लानुरूपा ।
सा कौ+मुदस्तोममयं विशेष-रसायितं मानसमाविवेश ॥७४॥

---

* नवयौवनवती परिरूपा च ।

\+ लक्ष्मीरूपिणी कमलसम्वेदिनी च ।

\+ कौ, मुदस्तोममयं प्रसन्नकुमुदानां समूहेन युक्तं च ।

चिरोच्चितासिव्यसनापदे × तुक् सोमस्य आयुं निजपाणये नु ।
सुलोचनाया मृदुशीतहस्त-ग्रहं स्मरादिष्टमथाह शस्तः ॥७५
मालानलप्लुष्टसुमाधवस्य स्वात्मानमुज्जीवयतीति शस्यः ।
प्रसूनबाणः सकृतो न वायुर्वेदीत्रिवेदीतिविकल्पनाशुः ॥७६
कदाचिदाराममगुष्य हृष्यत्तमं तमानन्ददृगेकदृश्यः ।
वसन्तवच्छ्रीसुमनोऽभिरामस्तपस्विराट् कश्चिदुपाजगाम ॥७७
तपोधनं भानुमिवानुमांतुमुत्कासमुत्कामविधाविधातुः ।
बभूव दृङ्मालिककुक्कुटस्य वाचा समाचारविदोद्भटस्य ॥७८
अथाभवत्तद्दिशि सम्मुखीन उत्थाय सूत्थानमृतामहीनः ।
गतोऽप्यथो दृष्टिपथं प्रभावस्तस्य प्रशस्यैकविचित्रभावः ॥७९
पतिं यतीनां सुमतिं प्रतीत्य तदा तदातिथ्यविधानदीक्षम् ।
मुदोद्गमत्कामशरप्रतानमञ्चिकारोपवनप्रधानः ॥८०॥
फुल्लत्यसङ्गाधिपतिं मुनीनमवेक्षमाणोवकुलः कुलीनः ।
विनैव हालाकुरलान्वधूनां व्रताश्रितिं बागतवानदूनां ॥८१॥
श्रीचम्पका एनमनेनसन्तु तिरः शिरश्चालनतः स्तुवन्तु ।
कोषान्तरुत्थालिकदम्बवन्तः पापानि वाऽपायमियोद्गिरन्तः ॥८२
आराम आरात्परिणामधाम भूपकच्छवदृशा ललामः ।
विलोकयँल्लोकपतिं रजांसि मुञ्चत्यदश्चानुतरँस्तरांसि ॥८३॥
अशोक आलोक्य मुनिं ह्यशोकं प्रशान्तचित्तो विकसन्नशोकम् ।
रागेण राजीवदृशः समेतं पादप्रहारं सकृतः सहेत ॥८४॥

× सुतः ।

यस्यान्तरङ्गेऽद्भुतबोधदीपः पापप्रतीपं तमुपेत्यनीपः ।
स्वयं हितावज्जडताम्यतीत उपैति पुष्टिं सुमनः प्रतीतः ॥८५॥
परोपकारैकविचारहारात्काॐ रामिवाराध्यगुणाधिकारां ।
अलङ्कारात्रतरुर्विशेषं सकौतुको + ऽयं परपुष्ट × वेशम् ॥८६॥
अमीः शमीशानकृपां भजन्ति जनुह्यं नूनं निजमामनन्ति ।
पादोदकं पक्षिगणाः पिवन्ति वेदध्वनिं नित्यमनूस्वरन्ति ॥८७॥
गिरेत्यमृतसारिण्याश्रीवनं चानुकुर्वतः ।
बभूव भूपतेः क्षेत्रं ॥ सकलं चांकुराङ्कितं ॥८८॥
कण्टकित इवाकृष्टश्चक्षुर्दिक्षु क्षिपन् शनैरचलत् ।
च्छायाच्छादितसरणौ गुणेन विपिनश्रियः श्रीमान् ॥८९॥
आरामरामणीयकमनुवदताऽदर्शि हर्षिताङ्गेन ।
सहसा सहसाधुजनैः श्रीगुरुगुणितं च तेन सद्देशं ॥९०॥
प्रागेवाङ्गलतायाः पल्लविता तन्मनोरथलता तु ।
आदर्शदर्शने नृपवरस्य वाग्वल्लरी च पल्लविता ॥९१॥
कुसुमसत्कुलतः पदपङ्कजद्वयममुष्य समेत्य शिलीमुखाः ।
स्वकृतदोषविशुद्धिविधित्सया समुपमान्ति लवा अथवागसः ॥९२
शिखरतस्तु पतन्ति बृहत्तरोः पदसरोरुहयोस्त्रिजगद्गुरोः ।
सुमचयारुचया च शिवश्रिया इव दृशा नभसो विभवोः प्रियाः॥९३॥
यतिपतेरचलादर + दामरेः सुरुचिरा विचरन्ति चराचरे ।
अगणिताश्च गुणा गणनीयतामनुभवन्ति भवन्ति भवान्तकाः ॥९४

ॐ यतेः स्तुतिं । + विनोदयुक्त. सकुसुमश्च । × परोपकार-करं कोकिलयुक्तं च । ॥ शरीरं । + भवानि ।

भुवि* धुतोग्रविधिर्गुणवृद्धिमान् सपदि तद्धि†तमेव कृतं‡ भजन् ।
यतिपतिः कथितो गुणिताव्हयः सततमुक्ति※विदामिति पूज्यपात्।९५
सपदि भास्कर एव विशेषतो भवति भव्यपयोरुहवल्लभः ।
झगितिकौमुदमेव विकाशयन्नमृतगुत्वमथोत्कलयन् मुनिः ॥९६॥
अथ + धरा भवमाशु रसातलं× यतिवरेण पुनः सुमन ॥ : स्थलं ।
परमिहोद्धरता तपसोचितं ननु जगत्तिलकेन विराजितं ॥९७॥
भुवि महागुणमार्गणशालिना सुविधधर्मधरेण च साधुना ।
अभयमङ्गिजनाय नियच्छता यदपि मोक्षपरस्वतया स्थितं ॥९८॥
निजवतंसपदे विनियोज्य तन्मृदु यदीयपदाम्बुरुहद्वयं ।
सुपरितोषमिताः पुनरात्मनोऽमरगणाश्च वदन्ति महोदयं ॥९९॥
अथ परीत्य पुनस्त्रिरतः स्थितः समुचितो नवनीतविनीतकः ।
मुकुलितात्मकराम्बुरुहद्वयं पुरत एव स साधुसुधारुचः ॥१००॥
स्यामाशयं परित्यज्य राजा हर्षितमानसः ।
संगत्य जगतां मित्रं शुक्लं पद्ममिहाप्तवान् ॥१०१॥
वर्द्धिष्णुरधुनानन्दवारिधिस्तस्य तावता ।
इत्थमाह्लादकारिण्यो गावः स्म प्रसरन्ति ताः युग्मं ॥१०२॥

---

* धातुतोऽग्रे गुणवृद्धिकारकविधिर्व्याकरणशास्त्रे पक्षौ प्रणष्ठ-पापकर्मा क्षमादिगुणोदयवान् च ।

† प्रसिद्धं हितं, तद्धितप्रकरणं च ।

‡ सम्पादितं कृदन्तं च ।

※ सततं उक्तिविदां वैयाकरणानां मुमुक्षूणां च ।

\+ शरीरं भूभागश्च ।

× जिह्वामूलं प्रातालं च ।

॥ अन्तरङ्गं स्वर्गश्च ।

कलशोत्पचितादात्म्यमितोहं तव दर्शनात्।
आगस्त्यक्तोऽस्मि संसारसागरश्चुलुकायते ॥१०३॥
ममात्मगेहमेतत्ते पवित्रैः पादपांशुभिः।
मनोरमत्वमायाति जगत्पूतानिलिम्पितं ॥१०४॥
हे सज्जनपतेश्चन्द्र वत्प्रसादनिधेऽखिलः।
पादसंपर्कतो यस्य लोकोऽयं निर्मलायते ॥१०५॥
महतामपि भोभूमौ दुर्लभं यस्य दर्शनं।
भाग्योदयाच्चकास्तीति स पाणौ मे महामणिः ॥१०६॥
धन्याः परिग्रहाद्यूयं विरक्ताः परितोग्रहात्।
नित्यमत्रावसीदन्ति मादृशा अवलाकुलाः॥१०७॥
धतकाम! महादान! नयदासं सदायकं।
सत्यधर्ममयावाम मच्चमाच क्षमाचकः ॥१०८॥
कर्त्तव्यमनकास्माकं कथयाथ मुनेऽनकं।
किमस्ति व्यसनप्राये किन्न धाम्नि विशामये ॥१०९॥
ग्रन्थारम्भमये गेहे कं लोकं हेमहेङ्गित!
शांतिर्याति तथाप्येनं विवेकस्तु कलोऽतति ॥११०॥
समुत्सवकरस्यास्याभ्युदयेन रवेरिव।
श्रीमतो मुनिनाथस्याप्युद्भिन्ना मुखमुद्रणा ॥१११॥
भूपालबाल किन्नोते मृदुपल्लवशालिनः।
कान्तालसन्निधानस्य फलतात् सुमनस्कता ॥११२॥
जन्मश्रीगुणसाधनं स्वयमवन् सन्दुःखदैन्याद्वहिः,
यत्नेनैव विधुप्रसिद्धयशसे पापापकृत्सत्वयः।

मञ्जूपासकसङ्गतं नियमनं शास्ति स्म पृथ्वीभृते,
तेजःपुञ्जमयो यथागममथाहिंसाधिपः श्रीमते ।११३। षडरचक्रबन्धः
एतद्वृत्तस्य प्रत्यराग्राक्षरैः षष्ठाक्षरैश्च क्रमेणजय—
महिपतेः साधु सदुपास्तिरितिसर्गविषयनिर्देशः ॥
श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियंघृतवरीदेवी च यं धी च यं ।
तेनास्मिन्नुदिते जयोदयनयप्रोद्धारसाराश्रितः,
नानानव्यनिवेदनातिशयवान् सर्गोऽयमादिर्गतः ॥११४॥

इति श्री वाणीभूषण - महाकवि - ब्रह्मचारि भूरामलशास्त्रि - विरचिते
सुलोचनास्वयम्वरापरनामजयोदयमहाकाव्ये जयकुमारस्य
मुनिवन्दनावर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

———

अथ द्वितीयः सर्गः



संहिताय मनुयन् दिने दिने संहिताय जगतो जिनेशिने ।
संहिताञ्जलिरहं किलाधुना संहितार्थमनुवच्मि गेहिनां ॥१॥
भाति लब्धविषयव्यवस्थितिर्धीमतां लसतु लभ्यनिष्ठतिः ।
तद् द्वयेष्टपरिपूर्णास्थितिः सञ्जयेत्तु महतामहोमितिः ॥२॥
आत्मने हितमुशन्ति निश्चयं व्यावहारिकमुताहितं नयं ।
विद्धितं पुनरदः पुरःसरं धान्यमस्ति न विना तृणोत्करं ॥३॥
नीतिरैहिकसुखाप्तये नृणामक्षयेमार्षशीतिरस्तकर्मणे घृणा ।
लोकनिर्गतसुखाविनाऽगदं दुद्रुखुर्जनेऽउपैति कौमुदं ॥४॥
तत्वभृद् व्यवहृतिश्च शर्मणे पूतिभेदनमिवागचर्मणे ।
तावदूषरटके किलाफले का प्रसक्तिरुदता निरर्गले ॥५॥
लोकरीतिरितिनीतिरङ्कितार्षप्रणीतिरथ निर्णयाश्रिता ।
एतयोः खलु परस्परेक्षणं सम्भवेत्सुपरिणामलक्षणं ॥६॥
सद्भिरैहिकसुखोचितं नयाल्लौकिकाचरणमुक्तमन्वयात् ।
प्राप्तमेतदनुयातु नात्र कः पौत्रिकाङ्गुलियुगेव बालकः ॥७॥
सन्निवेद्य च कुलङ्करैः कुलान्यतदाचरणमिङ्गतं बलात् ।
आचरेत्स्वकुलसक्तिमानियद्वर्त्म सद्भिरुपतिष्ठितं हि यत् ॥८॥
इङ्गितं दुरभिमानसन्ततेस्तत्कदाचरणमेव मन्यते ।
किन्तु काकमतमप्युराश्रयत्यत्र हंसवदकुश्चितारायः ॥९॥

आत्रिकस्थितिमती रमारती मुक्तिरुत्वरसुखात्मिका धृतिः ।
काकचत्तुरिव याति तद्द्वयं पौरुषं भवति तच्चतुष्टयं ॥१०॥
सम्मता हि महतां महान्वयाः संस्मरन्तु नियतिं दृढाशयाः ।
आत्रिकेष्टिनिरताः पुनर्नवा नाक्ततोहि परिपोषणं गवां ॥११॥
सन्ति गेहिषु च सज्जना अहा भोगसंसृतिशरीरनिस्पृहाः ।
तत्ववर्त्मनिरता यतः सुचित्प्रस्तरेषु मणयोऽपि हि क्वचित् ॥१२
कर्मयत्सतुषमेति सृष्टिकः शोधयन्ननुकरोति दृष्टिकः ।
बालकः परकरोपलेखकः संलिखत्यथ कुमार एककः ॥१३॥
स्वीकृते परमसारवत्तया जायते पुनरसारतारयात् ।
तक्रतो हि नवनीतमाप्यतेऽतः पुनर्घृतकृते विधाप्यते ॥१४॥
नैव लोकविपरीतमञ्चितुं शुद्धमप्यनुमतिर्गृहीशितुः ।
नामसत्यमिह वाऽर्हतामिति मङ्गलेऽनुगतमस्त्यवेर्गतिः ॥१५
शक्यमेव सकलैर्विधीयते कोनु नागमणिमाप्तुमुत्पतेत् ।
कूपके चरसकोऽप्युपेत्यते पादुकातु पतिता स्थितिः क्षतेः ॥१६॥
लोकवर्त्मनि सकावशस्यवन्निष्ठितेऽरमहितेष्ठिदस्यवः ।
स्वोचितं प्रतिचरन्तु सम्पदं सर्वमेव सकलस्य नौषधं ॥१७॥
सम्विरोधिषु जनः परस्परं व्यावहारिकवचस्सु सञ्चरन् ।
तत्समुद्धरतु यद्यदोचितं कोनु नाश्रयति वा स्वतो हितं ॥१८॥
यातु कामधनधर्मकमसु सत्सु सम्प्रति मिथोऽपशर्मसु ।
तानि तावदनुकूलयन्वलात्कर्दमे हि गृहिणोऽखिलाश्वलाः ॥१९
बाष्टवद्वृषमपेत्य संहता वासवद्विषयदासतां गताः ।
पाशवेद्धनविलासतत्परा गेहिनो हि सतृणाशिनो नराः ॥२०॥

गेहमेकमिह भुक्तिभाजनं पुत्र तत्र धनमेव साधनम् ।
तच्च विश्वजनसौहृदाद् गृहीति त्रिवर्गपरिणामसंग्रही ॥२१॥
कर्मनिर्हरणकारणोद्यमः पौरुषोऽर्थ इति कथ्यतेऽन्तिमः ।
सत्सु सत्त्वकृतपात्रसातन श्रावकेषु खलु पापहापनं ॥२२॥
प्रातरस्तु समये विशेषतः स्वस्थिताद्यमनसः पुनः सतः ।
देवपूजनमनर्थसूदनं प्रायशो सुखमिवाप्यते दिनं ॥२३॥
मङ्गलन्तु परमेष्ठिपूर्जितं दिव्यदेहिषु नियोगपूजितं ।
पार्थिवेषु पृथुताश्रितं पदं प्रत्ययं चरति देव इत्यदः ॥२४॥
साम्प्रतं प्रणदितानधानकं देवशब्दमिममुत्तमार्थकम् ।
स्वीकरोति समयः पुनः सतामग्निरम्बरमुवीव देवता ॥२५॥
कुत्सितेषु सुगतादिषु क्रमाद्वा कपोलकलितेषु च भ्रमात् ।
पद्मयोनिप्रभृतिष्वनेकशः देवतां परिपठन्ति सैनसः ॥२६॥
सर्वतः प्रथममिष्टिरर्हतः देवतास्वपि च देवतायतः ।
मङ्गलोत्तमशरण्यतां श्रितः देहिनां तदितरोऽस्तु को हितः ॥२७॥
यत्पदाम्बुजरजोरुजो हरत्याप्लवाम्बु तु पुनातु सच्छिरः ।
साम्प्रतं धनिविभोचितं पटाद्यन्यतः श्रयति भूषणाच्चयम् ॥२८
भूरिशो भवतु भव्यचेतसां स्वस्वभाववशतः समिष्टिवाक् ।
मूलसूत्रमनुरुद्धय नृत्यतः प्रक्रियावतरणं न दोषभाक् ॥२९
देवमप्रकटमप्ययात्मनः यातु तत्प्रतिमया गृही पुनः ।
सत्यवस्तुपरिबोधने विशोभान्ति क्रीडनकतोयतः शिशोः ॥३०
सम्भवेज्जिनवरप्रतिष्ठितिः शांतये भवभृतां सतामिति ।
श्वालिको हि परवारमीप्सुपं सन्निधापयति कूटपूरुषं ॥३१॥

बिम्बके जिनवरस्य निर्घृणा युक्तिभिर्भवति तद्गुणार्पणा ।
माषकादिमरणादिकृद्धवेत्किञ्च मन्त्रितमितः समाहवे ।।३२

तत्र तत्र कलितं जिनार्चनं व्याहृतं भवति तत्तदार्चनम् ।
वार्षिकं जलमपीह निर्मलं कथ्यते किल जनैः सरोजलं ।।३३।।

योजनं हि जिननामतः पुनः स्वोक्तकर्मणि समस्तु वस्तुनः ।
पूजनं क्वचिदुदारसम्मति स्वस्तिकं सपदि पूज्यतामिति ।।३४।।

भूमिकासु जिननाम सञ्चरंस्तत्तदिष्टमधिदैवतं स्मरन् ।
कार्यसिद्धिमुपयात्वसौ गृही नो सदा चरणतो व्रजन्बहिः ।।३५

यद्वदेव तपनातपोऽभ्रकृत् श्रीजिनानुशय इष्टसिद्धिभृत् ।
नूनमप्रकटरूपतो मतंस्तत्त्रिसायमनुजायतामतः ।।३६।।

इष्टसिद्धिमभिवाञ्छतोऽर्हतां नामतोऽपि भुवि विघ्ननिघ्नता ।
व्येति काककलिता विलापदं तीरमित्यरमतीरयन्पदं ।।३७।।

श्रीजिनं तु मनसा सदोभयेत्तश्च पर्वणि विशेषतोऽर्चयेत् ।
गेहिने हि जगतोऽनपापिनी भक्तिरेव खलु मुक्तिदायिनी ।।३८।।

आत्रिकेऽष्टहतिहापनोद्यतः साधयेत्स्वकुलदैवताद्यतः ।
हेलया हि बलवीर्यमेदुरः साधयत्यनरगोचरं सुरः ।।३९।।

शिष्टमाचरणमाश्रयेदनावश्यकं य खलु तत्र तत्र ना ।
श्रीपतिं जिनमिवार्चितुं पुरा स्नान्ति दीव्य तनवोऽपि ते सुराः ।४०

सम्भवत्यपि समन्ततोऽदरीद्रयात्मरक्षपरिवारितो हरिः । (?)
श्रीमतीं भगवतीं सरस्वतीं सागलङ्कृतिविधौ वपुष्मतीं ।।
राधयेन्मतिसमाधये सुधीः शास्ततो हि कृतकार्य आयुधी ।।४१

सम्विचार्य खलु शिष्यपात्रतां शास्तुरेवमनुयोगमात्रतां ।
शास्त्रमर्थयतु सम्पदास्पदं यत्प्रसङ्गजनितार्थदं पदम् ॥४२॥
शस्तमस्तु तदृता प्रशस्तकं व्याकरोति विषयं सदा स्वकं ।
पारवश्यकविचारवेशिनी संहिता हि सकलाङ्गदेशिनी ॥४३॥
यत्तरामवहरञ्च शस्तकं शस्तमेव मनुते किलानकं ।
व्यक्तमेतदुरुपयुक्ततां गतं शर्मणे सपदि सर्वसम्मतं ॥४४॥
सम्पठेत् प्रथमतोऽद्युपासकाधीतिगीतिसुचितात्मरीतिकां ।
अज्ञता हि जगतो विशोधने स्यादनात्मसदनावबोधने ॥४५॥
भूतले तिलकतामुताश्रतां श्रीमतां चरितमर्च्चतः सतां ।
दुःखमुश्चलति जायते सुखं दर्पणे सदसदीयते मुखं ॥४६॥
सुस्थितिं समयरीतिमात्मनः सङ्गतिं परिणतिं तथा जनः ।
दृष्टुमाशुकरणश्रुतं श्रयेत्स्वर्णकं हि निकषे परीक्ष्यते ॥४७॥
सञ्चरेत्सुचरणानुयोगतस्तावदात्महितभावना रतः ।
नित्यशोऽप्रतिनिवृत्य सत्पथः कीर्त्यते पथि गतो यतोऽन्यथः॥४८
किं किमस्ति जगति प्रसिद्धमत् कस्य सम्पदथ कीदृशी विपत् ।
द्रव्यनामसमये प्रपश्यताओवितर्कविषय हि वस्तुता ॥४९॥
एतकैर्निजहितेऽनुयोजनमस्ति मुक्तिसुमिदात्मनः पुनः ।
हस्तयन्त्रकशिचाख्यसीवनं वासतो हि भुवि जायतेऽवनं ॥५०
विश्वविश्वशनमात्मवञ्छितिः शङ्किनः स्विदमितः कुतो गतिः ।
योग्यतामनुचरेन्महामतिः कष्टकृत्भवति सर्वतो क्षति ॥५१॥
उद्धरन्नपि पदानि सन्मनः शब्दशास्त्रमनुतोषयज्जनः ।
श्रीप्रमाणपदवी व्रजेन्मुदा वाग्विशुद्धरुदितार्थशुद्धिदा ॥५२

दूषणानि वचनस्य शोधयेत्तच्च भूषणतया भुवो वहेत् ।
च्छन्दसं समवलोक्य धीमतां प्रीतये भवति मञ्जुवाक्यता ॥५३
यातु वृद्धिसमयात्किलोपमा पन्हुतिप्रभृतिकं च बुद्धिमान् ।
भूरशो ह्यभिनयानुरोधिनी वागलङ्करणतोऽभिवोधिनी ॥५४
व्याकृतिं शुचिमलङ्कृतिं पुनश्छन्दसां ततिमिति त्रयंजनः ।
साभिधेयमभिधानमन्वयप्रायमाश्रयतु तद्धि वाङ्मयः ॥५५॥
तानवं श्रुतिमुपैति मानवः स्याच्च वर्त्मनि मुदोऽघसम्मकः ।
प्रीतमस्तु च सहायिनां मन आद्यमङ्गमिह सौख्यसाधनं ॥५६॥
कामतन्त्रमतियत्नतः पठेद्यद्युपस्थितिरुपादि × मन्मठे ।
तत्र तत्र हतिरन्यथा पुनः शिक्षते च हयराडुदश्वनं ॥५७॥
श्रीनिमित्तनिगमं प्रपश्यतः भाविवस्तु तदपेक्षते यतः ।
त्यागशक्यमपि शक्यते ततः संगडेन हि शिल्पासृतिः स्वतः ॥५८॥
अर्थशास्त्रमवलोकयन्नराट् कौशलं समनुभावयेत्तरां ।
श्रीप्रजासु पदवीं व्रजेत्परां व्यर्थता हि मरणाद्भयङ्करा ॥५९॥
यातुताललयमूर्च्छनादिभिर्जनकीर्तनकलाप्रसादिभिः ।
गीतिरीतिमपि तच्छ्रुतात्पुनर्मञ्जुवाक्त्वमिह विश्वमोहनं ॥६०॥
कृच्छ्रसाध्यमिव सुष्ठुकार्यकृत् मन्त्रतन्त्रमपि चेत्स्वतन्त्रहृत् ।
तन्निवेदि पुरतः परिश्रमात्सा (रा)धयेदघविराधये पुमान् ॥६१॥
वास्तुशास्त्रमवलोकयेन्नरो नास्तु येन निलयो व्यथाकरः ।
अन्यदप्युचितमीक्षमाणकः सम्भजेच्छ्रियमभिप्रमाणकः ॥६२॥

× गृहस्थाश्रमे ।

आर्षवाच्यपि तु दुःश्रुतीरिमाः किन्न पश्यतु गृहे नियुक्तिमान् ।
आममन्नमतिमात्रयाशितं चास्तु भस्मकरुजे परं हितं ॥६३॥
नानुयोगसमयेष्विवादरः स्यान्निमित्तकसुखेषु भो नर ।
वाक्तया समुदितेषु चार्हतां मूर्धवत् क पदयोः सदङ्गता ॥६४॥
ज्ञाप्यमाप्यमथ ह्याप्यमप्यदः श्रीगिरोऽपि समियाद्वशंवदः ।
मातुरुच्चरणमात्रतोवुचीत्यादि संकलितुमेति किन्नुचित् ॥६५॥
जातु नात्र हितकारि सन्मनः भ्रंशयेदपि तु तत्त्ववर्त्मनः ।
तत्कुशास्त्रमवमन्यतामिति कः श्रयेदवहितं महामतिः ॥६६॥
ना महत्सु नियमेन भक्तिमानस्तु कस्तु पुनरत्र पक्तिमा ।
चेद्भवेन्महदनुग्रहप्रषद् यैर्मतो हि भुवि पूज्यते दृषद् ॥६७॥
सन्निपातगुणतो निवर्तिनश्चापवर्गिकपथाग्रवर्तिनः ।
यस्य कामपरिवादसादुरो मङ्गलं श्रयतु दर्शनं गुरोः ॥६८॥
बोधवृत्तसुवयःसमन्वयेष्वाश्रयन्ति गुरुतां जनाश्च ये ।
तान् प्रमाणयतु ना यथोचितं लोकवर्त्मनि समाश्रयन् हितं ॥६९॥
पार्थिवं समनुकूलयेत्पुमान्यस्य राज्यविषये नियुक्तिमान् ।
शल्यवद्रुजति यद्विरोधिता नाम्बुधौ मकरतोऽरिता हिता ॥७०॥
सर्वतो विषयतर्षपाशिनः हन्त संसृतिविलासवाशिनः ।
व्यर्थमेव गुरुताप्रकाशिनः के श्रयन्तु किल शर्मनाशिनः ॥७१॥
दानमानविनयैर्यथोचितं तोषयन्निह सधर्मिसंहतिम् ।
कृत्यकृद्विमतिनोऽनुकूलयन् संलभेत गृहिधर्मतो जयं ॥७२॥
अन्तरङ्गबहिरङ्गशुद्धिमान् धर्म्यकर्मणि रतोऽस्तु बुद्धिमान् ।
श्रीर्यतोऽस्तु नियमेन सम्वशा मूलमस्ति विनयो हि धर्मसात् ॥७३॥

धीमता हृदयशुद्धये सतास्तिक्यभक्तिधृतिसावधानता ।
त्यागितानुभविता क्रमज्ञता नैष्प्रतिच्छ्यमिति चोपलभ्यतां ॥७४॥
भावनापि तु सदावनायना किन्तु भोगविनियोगभृन्मनाः ।
आचरेत्सदिह देशना कृता श्रीमता प्रथमधर्मता मता ॥७५॥
भस्मवन्हिसमयाम्बुगोमया नैर्जुगुप्स्यसुसमीरणाशयाः ।
ऐहिकव्यवहृतौ तु सन्विधाकारिणी परिविशुद्धिरष्टधा ॥७६॥
शोधयन्तु सुधियो यथोदितं वर्तनादिपरिणामतो हितम् ।
भस्मना किममुना परिष्कृतं धान्यमस्त्यघुणितं न साम्प्रतम् ॥७७॥
गोमयेन खलु वेदिलिम्पनप्रायकर्मलभतामितो जनः ।
नास्तु पाशविकविट्तयान्वयः किन्नु गव्यमिव चाषिकं पयः ॥७८॥
शुद्धिरस्ति बहुशः तृणोद्भवा ग्राह्यतामनुभवेत् पयो गवां ।
स्वोचितात्समयतः परन्तु वा काल एव परिवर्तको भुवां ॥७९॥
अम्भसा समुचितेन चांशुकक्षालनादिपरिपठ्यतेऽनकं ।
सम्प्रपश्यति हि किन्न साधुचिद्धारिचारितमुदूखलं शुचि ॥८०॥
किट्टिमादिपरिशोधनेऽनलं सम्वदेदधिपदं समुज्वलं ।
सेमुषी श्रुतरसिन्सुराजते स्वर्णमग्निकलितं हि राजते ॥८१॥
शौक्तिकैणमदकादिकेष्वितः प्राशुकत्वमथनैर्जुगुप्स्यतः ।
को न सम्वदति संग्रहे पुनर्नो घृणोद्धरणमात्रवस्तुनः ॥८२॥
स्थातुमिष्टफलकादि शोच्यते कीदृगेतदिति केन वोच्यते ।
वाति किन्तु दुरितावधीरणः सर्वतोऽपि पवमान ईरणः ॥८३॥
भो यथा स्ववशमीचितं सदाचादिशुद्धमिति विद्धि सम्विदा ।
भाव एव भविनां वरो विधिः सर्वतो ह्यपरथागसां निधिः ॥८४॥

आगमोचितपथा यथापदं सावधानक उपैति सम्पदम् ।
कोऽथ तत्र किमितीत्थमत्थमः यत्न एव भविनां शुभाश्रमः ॥८५॥
किं क कीदृगिति निर्णयो बृहत्संशयादिकृतकौशलं दधत् ।
दिक्षु अन्धतमसायते जगत् चक्षुरत्र परमागमो महत् ॥८६॥
धेनुरस्ति महतीह देवता तच्छकृत्प्रभवणे निषेवता ।
प्राप्यते सुशुचितेति भक्षणं हा तयोस्तदिति मौढ्यलक्षणं ॥८७॥
न त्रिवर्गविषये नियोगिनी नापवर्गपथि चोपयोगिनी ।
श्राद्धतर्पणमुखासमुद्धता भूरिशो भवति लोकमूर्खता ॥८८॥
सम्पठन्ति मृगचर्म शर्मणे औणवस्त्रमथवा सुकर्मणे ।
इत्यनेकविधमत्यघास्पदमस्ति मौढ्यमिह शुद्धिसम्पदः ॥८९॥
यत्वनिष्टमृषिभिर्निषेधितं देशितं हृदयहारवद्धितं ।
अन्यदप्यनुमतादुरीकुरु लोक एव खलु लोकसंगुरुः ॥९०॥
विश्वसाद्विशदभावनापरः स्वं यथोचितमथार्पयेत्नरः ।
वर्त्मनि स्थितिविधौ धृतादरः श्वोदरं च परिपूरयत्परं ॥९१॥
मृष्टभाषणपुरस्सरं यथा स्वं सदन्नजलदानसम्पथा ।
सन्निसर्जनमथागतस्य तु कर्मधर्मणि सुखं गृहीशितुः ॥९२॥
प्रत्नमेव नृप विद्धि सृष्टये स्वस्य साम्प्रतममीष्टपुष्टये ।
यद्वदेव परिषेचनं भुवस्तुष्टये भवति तद्धि भूरुहः ॥९३॥
धर्मपात्रमघघर्षकर्मणे(?) कार्यपात्रमथवात्र शर्मणे ।
तर्पयेच्च यशसे स्वमर्पयेद् यशाः किमिव जीवनं नयेत् ॥९४॥
भोजनोपकृतिभेषजश्रुतीः श्रद्धया स नवभक्तिभिः कृती ।
पूरयेन्मुनि(यति)षु सन्मना गुणगृह्य एव यतिनामहोगणः ॥९५॥

तर्पयेदपिवरान्सुहृत्तथा मन्यमानपि तटस्थितॉस्तथा ।
श्रीवरं स्विदवरं च सत्रपः स्वप्रजाङ्गमभिवीक्षते नृपः ॥९६॥
कार्यपात्रमवताद्यथोचितं वस्तुवास्तुसुखमर्पयन् हितं ।
येन सम्यगिह मार्गभावना का गतिर्निशि हि दीपकं विना ॥९७॥
श्रीत्रिवर्गसहकारिणो जना नात्रिकेष्टिपरिपूर्तितन्मनाः ।
तान्नयेच्च परितोषयन् धृतिं कुम्भकृत्युपरते क वा स्थितिः ॥९८॥
नष्टमस्तु खलु कष्टभङ्गिनामेवमार्द्रतरभावभङ्गिना ।
देयमन्नवसनाद्यनल्पशः स्यात्परोपकृतये सतां रसः ॥९९॥
स्वं यथावसरकं सधर्मणे सन्निधाकरमवश्यकर्मणे ।
कन्यकाकनककम्बलान्विति निर्वपेद्धि जगतां मिथः स्थितिः ॥१००॥
स्वर्णमेत्र कलितं सुकृताय स्यादिहेति दशधादुरूपायं ।
दानमुज्झतु भवार्णवसेतुर्योग्यतैव सुकृताय तु हेतुः ॥१०१॥
स्वान्वयस्य तु सुखस्थितिर्भवेत् सन्निराकुलमतिः स्वयंभवे ।
सर्वमित्थमुचिताय दीयतां हीङ्गितं स्वपरशर्मणे सतां ॥१०२॥
स्वं यशोऽग्रजननामसंस्मृतिरित्यनेकविधकारणोद्धृतिः ।
कल्प्यतां भविषु भावनोच्छ्रितिस्तावतैव हि पथप्रतिष्ठितिः ॥१०३॥
नित्यमित्यनुनयप्रयच्छने स्तोऽथ पर्वणि विशेषतोऽङ्गिने ।
कर्मणो च परमार्थशंसिने शीलसंयमवते सुजीविने ॥१०४॥
तानवोमिति (?) मानवोचितं सज्जनैः सह समत्तु रोचितं ।
उद्धवेत्समरिक्तभाजनस्तद्धि संग्रहणता गृहीशिनः ॥१०५
देवसेव्यमवगाह्य आर्षवर्त्मनि तु यो घृतादरः ।
सोऽस्यपंक्त्यनवशेषमाहरन्त्वत्रिवर्गपरिपूर्तितत्परः ॥१०६॥

राक्षसाशनमुपात्ततामसं नाशिवार्शविकमप्युतावशं ।
तद्धयं परिहरेत्तु दूरतः कः किलास्तु सुजनोऽपदे रतः ॥१०७
पादजेषु पतितेषु वा पुनर्नोपविश्य रससान्महान् जनः ।
यत्नतः परिचरेदितोऽमुतः किं पुमानवपतेत्स्वतः कुतः ॥१०८
द्यूतमांसमदिरापराङ्गनापण्यदारमृगयाचुराश्च ना ।
नास्तिकत्वमपि संहरेत्तरामन्यथा व्यसनसङ्कुला धरा ॥१०९
कुत्सिताचरणकेष्वशङ्किताकारिणी परभवादिनास्तिता ।
हाऽखिलव्यवहृतेर्विलोपिनीतीह संकटघटोपरोपिणी ॥११०॥
सर्वस्यार्थकुलस्य साधकतया सार्थीकृतात्मप्रथं,
निष्कादर्प्य तदात्वमूलहरणं तीर्थाय सम्यक्कथं ।
अर्थं स्वोचितवृत्तितो ह्यनुभवेदर्थानुबन्धैः नयः ।
स श्रीमान् मुदमेति तावदभितः शश्वत्प्रतिष्ठाश्रयः ॥१११
शस्त्रोपजीविवार्ताजीविजनाः सन्त्यथो द्विजन्मानः ।
कारुकुशीलवकर्मणि रतेषु संस्कारधारा न ॥११२॥
अस्तु सर्वजनशर्मकारणं जीविकाभुजमुवोऽसिवारणं ।
निर्बलस्य बलिना विदारणमन्यथासहजकं सुधारण (?) ॥११३
कृषिकृत्परिपोषणेन राज्ञां दधदायव्ययलेखनप्रतिज्ञां ।
नयनानयनैश्च वस्तुनो वा निगमो विश्वविपश्चिवारको वा ॥११४
करकौशलेन च कलाबलेन कुम्भादिनर्तनादिबला ।
शुश्रूषणं हि शूद्रा जीवा खलु विश्वतोमुद्रा ॥११५॥
निजनिजकर्मणि कुशलाः परधामीर्मूर्ध्नि सम्पन्मुसलाः ।
किमु मस्तकेन चरणं पद्भ्यामथवा समुद्धरणम् ॥११६॥

स्वान्वयकर्मकृदस्मादस्तु समारब्धपापमथ भस्मा ।
क्वचिदाश्रमे समुचिते निरतोसावात्मनो रुचिते ॥११७॥
नैव वर्त्मपरिहासिखे ददात्युद्धतायतु कदात्मने कदा ।
प्राणहारिणमहोस्फुरन्नयः कोऽत्र सर्पमुपतर्पयन् स्वयं ॥११८॥
द्रव्यदेशसमयस्वभावतः पर्ययोऽस्ति निखिलस्य चेत्सतः ।
वृद्धिहानिनियमोऽपि भोजनाःन्निसम्प्रतिमार्गदेशना (?) ॥११९॥
वर्णिगेहिवनवासियोगिनामाश्रमान् परिपठन्ति मोजिनाः ।
नीतिरस्त्यखिलमर्त्यभोगिनी युक्तिरेव वृषभृन्नियोगिनी ।१२०।
स्वस्वकर्मनिरताँस्तु धारयन् तद्गतोपनियमान्सुधारयन् ।
सारयन् पथि निजं परानथाधारयेन्नृपतिरीतिहृन्नकथाः ॥१२१॥
सर्वतो विनयताऽसतीं सतीं भूरिशाऽभिनयता समुन्नतिं ।
तन्यते तनयवन्महीभुजाऽदर्शवर्त्मपरिणाहिनी प्रजा ॥१२२॥
धर्मार्थकामेषु जनाननीतिं नेतुं नृपस्यास्तु सदैव नीतिः ।
त्रयी हि वार्ताऽपि तु दण्डनीतिप्रयोजनीयाथ यथा प्रतीतिः ॥१२३
वारितुं तु परचक्रमुद्यतः सामदामपरिहारभेदतः ।
प्राभवाभिबलमन्त्रशक्तिमान् शास्ति सम्यगवनिं पुमानिमां ॥१२४
यत्र यन्निरुपयोगि तत्र तद्दानमप्यनुवदामि पापकृत् ।
नार्दिताय तु सदर्चिषे घृतं सुष्ठु हीह सुविचारतः कृतं ॥१२५
इत्थमात्मसमयानुसारतः सम्प्रवृत्तिपर आप्रदोषतः ।
प्रार्थयेत्प्रभुमभिन्नचेतसा चित्स्थितिर्हि परिशुद्धिरेनसां ॥१२६
स्वस्थानाङ्कितकाममङ्गलविधो निर्जल्पतल्पं क्रमेत्,
नित्यद्योतितदीपकेऽपि सदने पत्न्या समं विश्रमेत् ।

प्रेमालापपरः समर्थनकरश्चतुर्प्रदानस्य स,
यावत्तुष्टिसुभावपुष्टिविषये निर्णीतरे वा रसः ॥१२७
न दर्पतोयः समये समर्पयेत्कुवित्सुवीजं सुविधा प्रबुद्धये ।
किमस्य मूर्खाधिभुवस्तदा भुवामबस्सरोहावसरे गते क वा ॥१२८
होडाकृतं द्यूतमथाह नेता संक्लेशितोऽस्मिन्विजितोऽपि जेता ।
नानाकुकर्माभिरुचिं समेति हे भव्य दूरादमुकं त्यजेति ॥१२९
त्रसानां तनुमांसनाम्ना प्रसिद्धा यदुक्तिश्च विज्ञेषु नित्यं निषिद्धा ।
सुशाकेषु सत्स्वप्यहो तं जिघांसुर्धिगेनं मनुष्यं परासृक्पिपासुं १३०
लोके घृणां समुपयन्मदकृद्भिरस्मिन्यङ्गातमाखुसुलमादिभिरङ्ग वच्मि
धीभ्रंशनं परवशत्वमुपैति दैन्य--
मस्मान्मदित्वमुपयाति न सोऽस्ति धन्यः ॥१३१
माक्षिकं मक्षिकाव्रातघातोत्थितं तत्कुलक्लेदसम्भारधारान्वितम् ।
पीडयित्वाप्यकारुण्यमनीयते संशिभिर्वंशिभिः किन्नु तत्पीयते १३२
श्वेव विश्वे जनोऽसौ तनोतीङ्गितं भोक्तुमुच्छिष्टमन्यस्य वा योषितं ।
हा प्रतिद्वारमाराधनाकारकं धिङ् नरं तं च रङ्कं कदाचारक ॥१३३
मातुः श्वसुश्च दुहितुरुपर्यपरदारदृक् ।
किमुधमधमो गुह्यलम्पटस्सञ्चटत्यपि ॥१३४
गणिकाऽपणिकाऽखिलैनसांमणिका च त्वरगेव सर्वसात् ।
कणिकापि न शर्मणस्तनोर्कणिकाऽस्यां प्रणयो नयोज्झितः १३५
घ्नन्ति हन्त मृगयाप्रसङ्गिनः कौतुकात्किल निरागसोऽङ्गिनः ।
अन्तकान्तिकसमात्तशिक्षिणस्तान्धिगस्तु सुतविश्ववैरिणः ॥१३६
प्राणादपीष्टं जगतां तु वित्तं हर्तुर्व्यपायि स्वयमेव चित्तं ।
स्वनिर्मितं गर्तमिवाशु मर्त्तुं चौर्यं तदिच्छेत्किल कोऽत्र कर्त्तुं ॥१३७

आर्यकार्यमपवर्गवर्त्मनः कारणं त्विदमुदारदर्शनः ।
स्वैरिता पुनरनार्यलक्षणं नो यदर्थमिह किञ्च शिक्षणं ॥१३८॥
नयवर्त्मेदं निर्णयवेदं प्राप्तुमखेदं स्पृष्टनिवेदम् ।
सुमतिसुधादं विगतविषादं शमितविवादं जयतु सुनादं ॥१३६
इत्यवाप्य परिशेकमेकतो गात्रमङ्कुरितमस्य भूभृतः ।
नम्रतामुपजगाम सच्छिरस्तावता फलभरेण वोढ्रुं ॥१४०॥
सन्निपीय वचनामृतं गुरोः सन्निधाय हृदि पूततत्पदौ ।
प्राप्य शासनमगाद गारिराडात्मदौस्थ्यमयमीरयँस्तरां ॥१४१॥
स सर्पिणीं वीक्ष्य सहश्रुतश्रुतामथैकदान्येन बताहिना रतां ।
प्रतर्जयामास करस्थकञ्जतः सहेत विद्वानपदे कुतो रतं ॥१४२॥
गतानुगत्यान्यजनैरथाहता मृता च साऽकामुकनिर्जराघृता ।
गतेर्ष्यया नाथचरामराङ्गना भवं बभाणोक्तमुदन्तमुन्मनाः ॥१४३॥
स च विमूढमना निजकामिनीकथनमात्रकविश्वसितान्तरः ।
न हि परापरमेव परामृशन् तमनुमन्तुमवाप्य चचाल धिक्॥१४४
अभूद्दारासारेष्वरिवलमपि त्रन्त्वनुवदन्,
समासीनः सम्यक् सपदि जनतानन्दजनकः ।
तदेतच्छ्रुत्वासौ विघटितमनो मोहमचिरात्,
सुरश्चिन्तां चक्रे मनसि कुलटायाः कुटिलतां ॥१४५॥
दोषा योषास्यतः सद्यः प्रभवन्ति मृषादयः ।
युक्तमुक्तमिदं वृद्धैर्वरं दोषाकरादपि ॥१४६॥
मृषासाहसमूर्खत्वलोल्यकौटिल्यकादिकान् ।
सर्वानवगुणान् लातीत्यबला प्रणिगद्यते ॥१४७॥

अंतर्विषमया नार्यो बहिरेव मनोहराः ।
परं गुञ्जा इवाभान्ति तुलाकोटिप्रयोजनाः ॥१४८॥
प्रियोऽप्रियोऽथवा स्त्रीणां कश्चनापि न विद्यते ।
गावस्तृणमिवारण्येऽभिसरन्ति नवं नवं ॥१४९॥
न सौन्दर्ये न चौदार्ये श्रद्धा स्त्रीणां चलात्मनां ।
रमन्ते रमणं मुक्त्वा कुब्जान्धजडवामनैः ॥१५०॥
अनल्पतूलतल्पस्थं स्त्रियस्त्यक्त्वानुकूलकं ।
रमन्ते प्राङ्गणेऽन्येनाहो विचित्राभिसन्धिता ॥१५१॥
हत्वा हस्तेन भर्त्तारं सहाग्निं प्रविशन्त्यहो ।
वामागतिर्हि वामानां को नामावैतु तामितः ॥१५२॥
प्रत्ययो न पुनः कार्यः कुलीनानामपि स्त्रियां ।
राजप्रियाः कुमुद्वत्यो रमन्ते मधुपैः सह ॥१५३॥
रूपवन्तमवलोक्य मानवं तत्पिनृव्यमथवोदरोद्भवं ।
योषितां तु जघनं भवेत्तथाप्यामपात्रमिव तोयतो यथा ॥१५४
अनंकुरितकूर्चकं ससितदुग्धमुग्धस्तवं,
भुनक्त्यपि सकूर्चकं लवणभावभृत्तक्रवत् ।
न दृष्टुमपि फाराटवदुधवलकूर्चकं वाञ्छती,—
त्यहो पुरुषमेकमेव त्रिधा साञ्चति ॥१५५॥
मुकुरार्पितमुखवद्यदन्तरङ्गस्य हितत्वं,
शिखरिवराङ्कितगूढमार्गसदृशं विषमत्वं ।
गगनोदितनगरप्रकल्पमिव या सुमहत्त्वं,
प्रत्ययमत्ययकरं विद्धि यदि विद्धि नर (?) त्वं ॥१५६॥

स्मितरुचिराधरदलमनल्पशो जल्पन्तीमनुजेन केनचित्,
तरलितनयनोपान्तवीक्षणैः श्रणति क्षणमपराय च क्वचित् ।
अनुसन्धत्ते धिया ह्रिया पुनरपरं रूपबलोपहारिणम्,
विदितमिदं युवतिर्न भूतले या बिभर्ति परमेकताकिणं ॥१५८॥
अहह पार्श्वमिते दयिते द्रुतं न तद्दशावनिकृन्तनतोऽद्भुतं ।
वदति यद्यपि भाविवधूजनः न तु मनः प्रतिबुद्धयति कामिनः ॥१५८
साक्षात्कुरुते हन्त युवतिभुजपाशनिबद्धं किमहा—
कुतिगमोहनिगडवर्तितमपि न स्वं वेत्ति विकारी ।
रङ्कः पापपवेरपभीतिस्तिष्ठति किमुत विचित्रं,
अस्तिमसावविगाह्य च रतिराज्ञापान्लालितगात्रः ॥१५६॥
नानैवमित्यभिधाय नागः समभिगम्य महीपतिं,
गजपत्तनस्य शशंस गर्हितभार्यकः श्लाघापरः ।
परमार्थवृत्तेरथ च गद्गद्वाक्तया भूत्वाशुम,—
भक्तोऽधुना समगच्छदुपसम्मतिं प्राप्य रतिप्रभः ॥१६०॥

(इतिनागपतिलंबश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः ससुषुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमल्लियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
श्रीमत्सन्मतिसम्मतामृतरसैर्निस्यूतशस्यांकुरे,
सागाराचरणोक्तिकस्तदुदिते सर्गो द्वितीयो वरे ॥१६१॥

इति श्रीवाणीभूषण - ब्रह्मचारि - भूरामलशास्त्रि - विरचिते
सुलोचनास्वयंवरे चित्राङ्किते सागारमार्गवर्णनो नाम
द्वितीयः सर्गः ।

अथ तृतीयः सर्गः

धर्मकर्मणि मनो नियोजयन्वित्तवर्त्मनि करौ प्रयोजयन् ।
नर्मशर्मणि शरीरमाश्रयन् स व्यमात्समयमाशु हापयन् ॥१॥
जिव्हया गुणिगुणेषु संश्रवँश्चेतसा खलजनेषु सम्वरं ।
निर्वलोद्धृतिपरस्तु कर्मणा स्वौक एकमभवत्तु शर्मणां ॥२॥
प्रातरादिपदपद्मयोर्गतः श्रीप्रजाकृतिनिरीक्षणेऽन्वतः ।
नक्तमात्मवनिताक्षणे रतः सर्वदैव सुखिनां सुसम्मतः ॥३॥
मत्स्यरीतिरिपुरेष ×धीवरः+सत्समागमतया कलाधरः ।
यः समाय‡ समयो महेन्द्रवन्नित्यमित्युचितकृच्छ्रुमाश्रवः ॥४॥
भूतले स्वयमनागसेऽवितः[] सम्बभौ सपदि नागसेवितः ।
वारिदेषु* विनयाश्रयोऽपि सन् योऽत्र वारिदगणं रुषारिषन् ॥५
बन्धुबन्धुरमनो विनोदयन्दीनहीनजनमुग्भयभयं ।
वैरिषन् रसितिवैरिसंग्रहमव्यथेऽकथि पथि स्थितोऽन्वहं ॥६
‡ राजतत्वविशदस्य या स्वसः क्षीरनीरसुविवेचनावतः ।
साथमाना† समयं सुरक्षति संस्तवं सुखगताय* पक्षतिः ॥७
ह्रासमेति जडता प्रतिष्ठितिः किन्तु यत्र बहुधान्यनिष्ठितिः ।
श्रीशरत्समनुयायिनीत्यभाद्राजहंसपरिवारिणी सभा ॥८

× निषादः विद्वानपि । + सभ्यास्तस्काश्च । ‡ सम्यगायवान् मायाजालसहितश्च । [] नीतिमार्गाय नियुक्तः । * बहुश्रुतेषु ।
‡ रजतस्य भावो राजतं तस्य भावः राजनीतिश्च । † प्रतिष्ठायुक्तं मानससरोरूपं च । * सुखेन गतं चेष्टितं तस्मै शोभनपक्षिविधिश्च ।

पल्लवैरभिनवैरथाश्रिता सर्वतोऽपि सुमनःसमन्विता ।
या फलोदयभृदिङ्गिताश्रिता किन्नु सत्कृतलता तथा मता ॥६

सज्जलक्षणविभङ्गदेशिनी या मलापहरणोपदेशिनी ।
जैनवागिव सरित्सुवेशिनी तीर्थसम्भवपथानुवेशिनी ॥१०

सम्पदादरणकारिणीत्यलं कालमाश्रितवती मुदादरं ।
मञ्जुवृत्तविभवाधिकारिणी कामिनीव कवितानुसारिणी ॥११

कामवत्स्मृतिसमुद्भवत्वतश्चावलोद्धृतिसमाश्रयत्वतः ।
निर्णयः खलु समुन्नतत्वतः कस्यचिद्रतिकरो हि तत्वतः ॥१२

भास्वतः समुदयप्रकाशिनः *क्षौद्रलेशपरिमुक्तविकाशिनः ।
यत्र वारिजतुलाविलासिनः श्रीयुताः खलु समानिवासिनः ॥१३

मन्त्रिणः खलु विषादनाशिनश्चाक्षिवच्चरनराः सुदर्शिनः ।
दृष्टिमान् सुकृतवत् पुरोहितः प्रक्रमश्च सकलो यथोचितः ॥१४

गुप्तिभागि उत कामवत्तु न पक्षपाति अमृतांशुवत्पुनः ।
कोन्वतिश्रुतिरितो दृगन्तवत्साऽखिलाङ्गसुलमाऽसमामवत् ॥१५

दूतवत्तु चरकार्यतत्पराः श्रोत्रिया इव च सुश्रुतादराः ।
यत्र ते नटवदिष्टवाग्भटाः स्मावभान्ति भिषजोऽद्भुतच्छटाः ॥१६

चारणा गुणगणप्रचारणास्ते कुविन्दवदुदारधारणाः ।
सम्भवत्सुपदवेमपाकया सञ्जयन्ति विलसत्कलाकया ॥१७

देशनेव दुरितापवर्तिनी भावनेव सुकृतप्रवर्तिनी ।
कल्पनेव सुकवेः सदर्थिनी तस्य संसदभवत्समर्थिनी ॥१८

---

* संकीर्णत्वं, मधु च ।

संसदीति नियतो नृपासने सोऽजयज्जयनृपः कृपाशनैः ।
दुर्मदाचलभिदः सदा स्वतः धारकः कमलसच्चमत्कृतः ॥१९
संसदीह नतवर्गमण्डितेऽथापवर्गपरिणामपण्डिते ।
श्रीत्रिवर्गपरिणायके तथा तिष्ठतीष्टकृदसावभूत्कथा ॥२०
प्रतिहारमतः कश्चित्प्रतीहारमुपेत्य तं ।
नमति स्म मुदा यत्र नमितिः स्मरतः पृथक् ॥२१
दशाशिक्षाऽदायिनृपस्य हेचित्स संमुचा दन्तरुचाम्यसेचि ।
रसागिरः खण्डमदात्तदास्या आतिथ्यचातुर्यमभूत्र कस्मात् ॥२२
यशोविशिष्टं पयसोऽपि शिष्टं बिभर्ति वर्णौघमहोकमिष्टम् ।
तरां धराङ्के तव नाम काम-गवीचविद्वद्रसम्वदामः ॥२३
मरालमुक्तस्य सरोवरस्य दशां त्वयाऽनायितमां प्रशस्य ।
कश्चिन्नदेशः सुखिनां मुदे स विशुद्धवृत्तन सतासुवेश ॥२४
शिरीषकोषादपि कोमले ते पदे वदेति प्रधणं तदेते ।
अस्माकमश्माधिक हीर वीर पूर्णं कुतोऽलङ्कुरुतोऽथ धीर ॥२५
भवादृशा कष्टमदृष्टदैव श्रियां क सम्भाव्यमहो सदैव ।
अथोपथामाततया तथापि न क्षेमपृच्छानुचितास्तु सापि ॥२६
पद्भ्यामहोकमलकोमलतां हसद्भ्यां,
किं कौशलं श्रयसि कौशरमाश्रयद्भ्यां ।
वैरीशवाशिफरराजिभिरप्यगम्यां,
श्रीदेहलीं नृवर नः सुतरामरं यान् ॥२७
दर्शयित्वा सुवर्णोत्थपदान्यतिथये मुदा ।
द्रुतं कुरु नरेशस्य विनिन्द्रचेत्यभूद्रसा ॥२८

वाग्मितापि सितास्यावद्रसितावशिताभृतः ।
भाष्यावली च दूतास्यान्लालेव निरगादियं ॥२६
सुमना मनुजो यस्यां महिला सारसालया ।
श्रीधरोऽधीश्वरो यस्याः सा काशी रुचिरा पुरी ॥३०
तदधीशाज्ञयाऽऽयातः कुशलं वः पदाब्जयोः ।
विसारसन्ततेः किं स्याज्जीवनं जीवनं विना ॥३१
महीमघोनः सुतरामघोनः समागमो नर्मसमागमो नः ।
भवादृशो भात्यथवा दृशोऽ पि यतोऽधुना निष्फलताव्यलोपि ॥३२
भवादृशामेव भुवीहनाम वयं च यच्छासनमुद्वहामः ।
समुत्सरामः कुतलेऽभिराम(?)नैकं च नो ग्राममिहापि धाम ॥३३
भस्थितस्य कुशलं शिरस्य तु सम्बभूव पथि पादयोस्ततुः ।
सांप्रतं कुशलं(?)तेऽवलोकनादश्वनैः कुशलतेव चाधुना ॥३४
विपत्त्रेऽपि करे राज्ञः पत्रमत्रेति सन्ददत् ।
अथ त्रपतयाप्यासीत् स दूतो मञ्जुपत्रवाक् ॥३५
निष्ठाप्य सूत्रवत् पत्रं व्याख्याप्याख्यातसंकथा ।
तद्वाणी रमणीयाऽऽसीद्रमणीव हि कामिनः ॥३६
तस्यैका तनया राज्ञो राजते कौमुदाश्रया ।
सुप्रभाकुक्षितो जाता चन्द्रिकेव सुरोचना ॥३७
विचक्षणेक्षणाचुणं वृत्तमेतद्गतं मतम् ।
क्षणदं क्षणमाख्यानात्कर्णालङ्करणं कुरु ॥३८
स्मरस्य वागुरा बाला लावण्यसुमनोलता ।
शाटीव सुभगा भाति गुणैः संगुणिता शुभैः ॥३६

इक्षुयष्टिरिवैषाऽऽसीत्प्रतिपर्वरसोदया ।
अङ्गान्यनङ्गरम्याणि कास्या यान्तूपमां ततः ॥४०
अथासौ चन्द्रलेखेव जगदाह्लादकारिणी ।
नित्यनूत्नां श्रियं रेजे बिभ्राणा स्मरसारिणी ॥४१
उत्क्रान्तवती ‡कौमारमेषां चंचललोचना ।
स्नेहादिव तथाप्येनां नैव मारस्स्म बाधते ॥४२
सा तनुस्तानि चाङ्गानि किन्त्वभूद्रामणीयकं ।
यौवनेनाद्भुतं तस्यास्स्यात्कारेण यथा गिरः ॥४३
+व्यञ्जनेष्विव सौन्दर्यमात्रारोपावसानकौ ।
विसर्गौस्तनसन्देशात्स्मरेणोद्देशिताविति: ॥४४
समुत्कीर्य करावस्या विधिना विधिवेदिना ।
तच्छेषांशैः कृतान्येवं पङ्कजानीति सिद्ध्यति ॥४५
असौ कुमुदबन्धुश्च द्वितैषी सुदृशोऽग्रतः ।
×मुखमत्र सखीकृत्य +बिन्दुमित्यत्र गच्छतु ॥४६
दृष्टिसृष्टिरपूर्वं वाकृष्टिर्विश्वस्य चेतसां ।
इतीवेनोमयत्वेन कज्जलैरपि लाञ्छिता ॥४७
श्रेणीति कालवालानां वेणी वैणीदृशो भृशं ।
वक्ष्यते वीक्ष्यमाणेभ्यः पन्नगीव विपन्नगी ॥४८
नाभिस्तु मध्यदेशेऽस्यास्सरसा रसकूपिका ।
लोमलाजिच्छलेनैतत्पर्यन्तेशाड्वलावली ॥४९

---

‡ कुमारावस्थां कौ पृथिव्यां मारं च । + ककारादिषु शरीराव-यवेषु च । × आस्यं मुकाररूपं च । + कान्तिलेशं अनुस्वारं च ।

❀ सभमस्याः पदस्याग्रं †नखमाहुः सदाजनाः ।
नभस्तु खमिति ख्यातिं लेभे श्रीपूज्यपादतः ॥५०

सुमाभं हसितं यस्या भ्रूयुगं चापसन्निभं ।
दृश्यते तनुरेतस्याः सुमचापपताकिनी ॥५१

विधिर्येनाभ्युपायेन नाभिवापी निखातवान् ।
लोमलाजिच्छला सैषा *कुशिकैवाथवा भवेत् ॥५२

चन्द्रोदये विभावर्या वसन्तेषु कुसुमश्रिया ।
भाति स्म यौवनारम्भस्तस्या यद्वच्छरद्वर्षा ॥५३

इङ्गितेनोभयोः श्रेयस्करीहामुत्र पत्तयोः ।
दुहिताद्विहिता नामैतादृशी पुण्यपाकतः ॥५४

एतादृशीं समिच्छन्तु सर्वेऽपि रमणीमणिं ।
स्पृहयति न कं चन्द्रकलाप्यविकलाशया ॥५५

संश्रयेत्कमथैकं सावस्थातुं स्थानभूषणा ।
निराश्रया न शोभन्ते वनिता हि लता इव ॥५६

सुभगा हि कृता यत्नाद्विधिनाथ प्रियम्बदः ।
दत्वा स्मरो विलासादि सुवर्णं सुरभीत्यदः ॥५७

सुवर्णमूर्तिः प्रागेव यौवनेनाधुनाश्रिता ।
अद्भुतां लभते शोभां सिन्दूरेणेव संस्कृता ॥५८

❀ भयादीत्यासहित सभ, भैर्नत्रर्वा ।
† नास्ति खं नाशो यस्य तम् ।
* कुद्दालिका ।

बहुशस्य + ह्रचिताबाधरबिम्ब × स्य दृश्यतां ।
साध्व्यायंतोऽधरं बिम्बनामकं च फलं परं ॥५६

सुकृतैकपयोराशेराशेव सुरसातया ।
पद्मोऽपि चेज्जितः पद्भ्यां पल्लवे पत्त्रता कुतः ॥६०

अवा + लभावतो जंघे सुवृत्ते‡ विलसत्तनोः ।
मनः सुमनसां हर्तुं भजतो दीव्यतामतः ॥६१

श्रोणीमहती सैव मोदकौ संकुचरूपौ,
त्रिवलिर्जवलेविकाकपोलौ घृतवरभूपौ ।
अधरलतारसगुल्गुलेतिपरिणामसुरम्या,
स्मितपयसा मधुरेण रसवतीयं बहुगम्या ॥६२

ग्राहकान्समाव्हयति सैष कन्दर्पकान्दविक,
इमकां संक्रीणातु सुकृतवित्तीनृपनाविक ? ।
सम्यक्ता गुणवती व्यञ्जनैरखिलैः पूर्णा,
दर्शनेन तनुभृतां संकलितमूर्धनि घूर्णा ॥६३

द्वितीयमुत्पाद्य पदादिकरस्यापहृत्य धात्रानुपमत्वमस्या,
समोद* नस्यात्र भवादृशस्य प्रयुक्तये सूप• मतापिशस्य ? ॥६४

किमत्र तूलेन विभो भवादृशा सुदर्शनी यैव समस्ति सा दृशा ।
न वर्णनेनैव भवेदहोमितारसज्ञयैवाश्रितसंहितासिता ॥६५

+ अतिप्रशंसनीयन्वं, बहुव्रीहिसमासबलं च । × अधरं बिम्बनामफलं यस्मात् । + लोमरहितत्वात् मूर्खत्वरहितत्वात् वा । ‡ वर्तुलाकारे सदाचारिण्यौ च । * हर्षयुक्तस्य सम्यगोदनस्य च । • सम्यगुपमायुक्तता, दालीमान्यता च ।

तत्रापि भूमावपि रूपराशावाशाधिकस्येविहुलास्तु तासां ।
कासावरम्या स्मरसारवास्तुसुलोचनानामसुलोचना तु ॥६६
समं समालोच्य स आत्ममंत्रिभिस्तदेवमापृच्छ्य निमित्ततंत्रिभिः ।
ततोनवद्यप्रतिपत्तिमन्मतिस्स्वयंवरोद्धारकरत्वमिच्छति ॥६७
भाति चातिहितं तेन शान्ति ‡ वर्मतये हितं ।
तत्त्वार्थभाष्यमेवास्यं यस्य देवागम* स्थितिः ॥६८
समायातः समायातः स्रग्दिवश्चादि बन्धुवाक् ।
कौतुकं कौ तु कस्माच्च कृतवान् कृतवाञ्छनः ॥६९
तस्या मानसपक्षी भवेद्भवेऽस्मिन्नरेशसुरसायाः ।
कस्य करक्रीडनकं निश्चेतुमितीह मानसः ॥७०॥
भूपतेरीप्सितं सर्वं प्रक्रमते यथोचितं ।
देवराडेव वान्धव्यात्सहभावो हि बन्धुता ॥७१
देवांशे स्फुरदेव देवदिगमिद्वारं प्लवालम्बने,
स्वश्रीशानदिशो नरेश्वरविशो वैमाविशो भावने ।
तेनैवोपपुरे सुरेण रचितं सम्यक्सभामंडपं,
दिव्ये वास्तुनि वास्तुनीति निपुणे श्रीसर्वतो भेदकं ॥७२
कलत्रं हि सुवर्णोरुस्तंभं कामिजनाश्रयं ।
मंडपं सुतरामुच्चैस्तनकुम्भविराजितं ॥७३
हिरण्यगर्भवत्ख्यातं कस्यचित् सुभ्रुवो भुवि ।
कामकर्म समुद्देश्य चतुर्मुखतया स्थितं ॥७४

---

‡ चित्राङ्गददेवस्य पूर्वनाम, समन्तभद्राचार्यनाम च ।
* देवतागमनं, आप्तमीमांसा च ।

मृङ्गोपाचपताकाभिराह्वयन् स्फुटभङ्गिनः ।
मरुदान्दोलितानाभिरुत्कानिति समन्ततः ॥७५
×मुकुरादिसमाधारं +मौक्तिकादिसमन्वितं ।
नवविद्रुमभूयिष्ठमाराममिव मञ्जुलं ॥७६
कर्बु रासारसम्भूतं पद्मरागगुणाङ्कितं ।
राजहंसनिसेव्यं च रमणीयं सरो यथा ॥७७
सा देवागम-सम्भूता सेवनीया सुदृष्टिभिः ।
⁂अकलङ्ककृतिः शाला विद्या❀नन्दविवर्धिता ॥७८
विशालापि सुशाला सा नगरी सगरीत्यभूत् ।
वसुधा महिता तावद्युक्तानवसुधान्वयैः ॥७९
सर्वत्रैव सुधाधाराथ +चित्रादिमनोहरा ।
सुरसार्थिभिराराध्यामरेवासौ पुरी पुरी ॥८०
वर्णसाङ्कर्यसम्भूता विचित्रचरितैरिह ।
जनानां चित्तहारिण्यो गणिका इव भित्तिकाः ॥८१
वर्णाश्रमच्छवित्राणा मत्तवारणराजिताः ।
नृपा इव गृहा भान्ति श्रीमत्तोरणतः स्थिताः ॥८२
पयोधरसमाश्लिष्टा ध्वजाली विशदांशुका ।
तनुनीव लुनीते या विभ्रमैः श्रममङ्गिनां ॥८३

× वृक्षविशेषः काचश्च ।
+ मौक्तिकपुष्पं मुक्ता च ।
⁂ अकलङ्का चासौ कृतिः, अकलङ्कस्य कृतिर्वा ।
❀ विद्याया आनन्देन विद्यानन्दनामाचार्येण च ।
+ चित्रप्रभृतिभिः चित्रानामवेश्यादिभिश्च ।

यत्र गन्धोदसंसिक्ताः कोशांशुष्पाश्च वीथयः ।
हर्षोत्कर्षतया स्विन्ना रोमाञ्चैरिव मंडिताः ॥८४
विशदाचतया तन्ता सुभाषेव सुलोचना ।
दर्शनीयतमा काशी साशीर्वा व्यक्तमङ्गला ॥८५
मतिं क कुर्याभरनाथ पुत्री मनेद्भवाकं वमखर्वमत्री ।
इष्टे प्रमेये प्रयतेत विद्वान्विधेर्मनः सम्प्रति को नु विद्वान् ॥८६
सौन्दर्यमात्रा त्वयि भो सुमात्रा प्रवृत ! मेसच्चकुनैश्च यात्रा ।
श्रीमन्तमन्तः शयवैजयन्तीत्यक्त्वान्यमिच्छेक धियो जयन्ति ॥८७
सुकन्दशम्ये च कलङ्किरात्री विषादिदुर्गे स्मरशर्मपात्री ।
विधेश्च संयोजयतोभ्युपायः परस्परं योग्यसमागमाय ॥८८
अदृश्यरूपा वितनोरतिर्व्यभ्रा (?) दभूत् सुभद्रा भरतस्य वल्लभा ।
वरिष्यति त्वान्तु सतीति सत्तम
चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः ॥८९
प्रस्थिते मयि सुदक (?) सुसक्वेपिणी पथि पदोः प्रघणस्पृक् ।
साशिकापि भवती भवतीशदिक्सदिष्टशकुनैश्च गुणीशः ९०
सुरोचनान्यायसुरोचनेति समिच्छतः का पुनरभ्युदेति ।
विधाविधातुस्तुरिरुत्तरीतुमवर्णवादाख्यपयोनिधिन्तु ॥९१
यात्रा तवात्रास्तु तदीयगात्रावलोकनैर्लब्धफला विधात्रा ।
वामेन कामेन कृतेऽनुकूले तस्मिन् पुनः श्रीः सुघटानदूरे ॥९२
इत्थं वारिनिवर्णैरङ्कुरयन् संसदं तथैव रसैः ।
हृदि रोमानसमुच्छित्रमप्युष्य कुर्वन् स विरराम ॥९३

आर्द्रे भूमिपतेर्मनःस्थलमसौ काशीति संज्ञेतया,
तस्यैकादिनिपूरपूरितमभूत्क्षेत्रं पुनः साङ्कुरं ।
तस्या मानसपद्वि एव मुदितात्सम्फुल्लनेत्रोदरे,
सज्जातापि मुहुश्च्युतेह शतशो मुक्ताफलाख्यानता ॥९४
हारं हृदोऽनुकूलं स समवाप महाशयः ।
जयः समादरात्तस्माद्उपहारं वितीर्णवान् ॥९५
स पुनः परमानन्दमेदुरो मानवाग्रणीः ।
गन्तुमुत्सहते स्मैव नारीणां हितसाधनः ॥९६
विषमेषु हिते नैवं समेषु हितकारिणा ।
सन्देहधारिणाप्याराात्संदेहप्रतिकारिणा ॥९७
तदा सन्मूर्ध्नि रत्नेन मूर्ध्नि रत्नं तदापि सत् ।
सुदग्गुणानुसारेणासुदृक्सिद्धान्तशालिना ॥९८
नत्वार्हतां पदाम्भोजे उन्नतेन मनीषिणां ।
प्रस्थितं सहसोत्थाय श्रीमतामग्रगामिना ॥९९
तस्य भूतिलकस्यापि सम्भुवा तिलकोचितः ।
समाधेयस्य तत्त्वस्य बाधारहितता कृता ॥१००
प्रवालजलजाताभ्यां चरणौ चरणोत्सुकौ ।
मिषेणोपानहोस्तस्याप्यभूतां वर्मिताविताः ॥१०१
अमानवचरित्रस्य महादर्शं किलेक्षितुं ।
सूर्याचन्द्रमसावास्यं रेजाते कुंडलाच्छलात् ॥१०२
सज्जीकृतं स्वीचकार परं परिकरं नृपः ।
शोभते शाश्विणां सार्थं स्तेजस्वी तपनोऽपि चेत् ॥१०३

स्वर्गश्रियः प्रेममुक्तापाङ्गसन्तानमञ्जुला ।
पतन् पार्श्वे मुहुर्यस्य चामराणां च यो बभौ १०४
स्वर्णदीसलिलस्यन्दः स्वर्णशैलतटे यथा ।
स्फुरत्कान्तिचयोहारस्तस्योरसिलुठन्बभौ ॥१०५॥
साधुप्रसाधनं यस्य समालोक्य विशांपतेः ।
दधुर्नार्योऽरयश्चैवं कन्दर्प* स्विदप+त्रपाः ॥१०६॥
प्रसक्तिर्मनसो वक्ति कार्यसम्पक्तिमत्र वा ।
इत्यनन्यमनस्कारैः प्रस्थानं कृतवान् जवात् ॥१०७
पुरन्ध्रीजनदत्ताशिर्विकाशिकुसुमाञ्जलिं ।
श्रयन् गोपपतिः प्राप गोपुरं स शनैः शनैः ॥१०८
अत्याचीद्दूरतः सद्भिः सेवितः सदनाश्रयं ।
†अनीतिप्रथितं राजा नीतिमान् पुरमप्यसौ ॥१०९
समुदङ्गसमुदगात् मार्गलं मार्गलक्षणं ।
नरराट् परपराद्वैरी सत्वरं सत्वरञ्जितः ॥११०
अस्मत्खरखुराघातैः खिन्ना किमिति मेदिनी ।
आलिङ्गन् प्रययौ वाजिनिवहोऽनुनयन्निव ॥१११
उपांशुपांशुले व्योम्नि ढक्काढक्कारपूरिते ।
बलाहकबलाधानात् मयूरामदमाययुः ॥११२
सुमंदन्मरुदावेल्लत्केतुपंक्तिः समुज्वला ।
इलां चालयितुं रेजेऽवतरन्तीव स्वर्णदी ॥११३

---

* कन्दर्पं कामं, कं नाम दर्पं गर्वमिति च ।
+ निर्लज्जाः वाहनवर्जिताश्च । † ईतिरहितं ।

स विभ्रमां च विटपैरुपरिलष्टपयोधरां ।
तत्याज तरसा भूपः स्निग्धच्छायां वनावनीं ॥११४

चतुर्दश × गुणस्थानमुखेन शिवपूः* गता ।
शुक्लेन + वाजिना तेनाराद् त्रिमार्गानुगामिना ॥११५

स्वग्रेष्टं स्मरसोदरं जयनृपं तत्रागतं सादरं,
यत्नाद् गोपुरमण्डलात् स्वयमथोत्सर्गस्त्वथावाधिपः ।
वस्त्रानीयसुपुष्कराशयतनोर्धामप्रभृत्युज्वलं,
रक्त्यादात्स्वपुरेऽयमान्तवरदोऽरं कृत्यपः श्रीधरः ॥११६

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
नव्यां पद्धतिमुद्धरत्सुकृतिभिः काव्यं मतं तत्कृतं,
सर्गस्य द्वितयेतरस्य चरमां सीमान्तमेतद्गतं ॥११७

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि भूरामल शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये तृतीयः सर्गः ।

× चतुर्दशवल्गानायुक्तेन मुखेन, नावद्धा गुणस्थानद्वारेण च ।
* काशी मुक्तिश्च ।
+ श्वेतघोटकेन शुक्लध्यानेन च ।

अथ चतुर्थः सर्गः

यावदागमयतेऽथ नरेन्द्रान् काशिकानरपतिर्निजकेन्द्रात् ।
आदिराज इदमाह सुरम्यमर्ककीर्तिमचिरादुपगम्यः ॥१

तात ! शातकरमेव निवेद्यं कौतुकेन समुदा ह्रियतेऽद्य ।
श्रूयतां श्रवणयोरनुजेन न श्रुतं च भवतामनुजेन ॥२

यत्स्वयंवरविधानकनाम कर्तुमिच्छति मुदा गुणधाम ।
सोऽप्यकम्पननृपस्तनुजाया यामनुस्वयमिहातनुजाया ॥३

वीक्षितुं यमधुनाखिलकायः प्रस्थितः सुमनसां समुदायः ।
श्रीवसन्तमिव किं पुनरेष मानवाङ्गभवपल्लवलेशः ॥४

उक्तपत्ररसनो रविरीतिस्तावतैव हि समुद्गिरतीति ।
गम्यतां किमिति सम्प्रति तत्रास्माकमङ्गविधिना गुणिभर्त्रा ॥५

आह कोऽपि विनिशम्य रसालां वाचमाचरितचित्त इवालात् ।
का स्वयंवर नु या खलु शाला यं कमेव वृणुते खलु बाला ॥६

आस्तदा सुललितं चलितव्यं तन्मयावसरणं बहुभव्यं ।
यश्चतुष्पथक उत्कलिताय कस्यचिद् व्रजति चिन्न हिताय ॥७

फेनिलेन परिशोध्य शरीरं सन्निवेद्य भगवत्पदतीरम् ।
दैवदानववलायितकस्य स्यात्परीक्षणमहो किल कस्य ॥८

हे महीश महनीय नयन्तु दृक्पथं भुवि धियोभिनयन्तु ।
श्रीमतः प्रथम इत्यधिकारः किं विधोः शरदि नप्युपचारः ॥९

याप्यतीव हिमवान् स्विददीनं भोज्यमस्तु लवणेन विहीनं ।
वंचितास्स्म किमुपायफदेते श्रीमतामनुचरा वयमेते ॥१०
यामि यात यदि वश्चिदुदेति भूपविच्चु जनतावशगेति ।
सानुकूलवचनं निजगाद चक्रवर्तितनयोऽपि यदादः ॥११
सांप्रतं सुमतिराह निशम्य स्वामिभाषितमिवेदमसम्यक् ।
निर्निमिन्त्रणतया न भवद्भिर्यातुमेवमुचितं गुणवद्भिः ॥१२
तत्र दुर्मतिरुपेत्य जगाद शंकुशोधननिभं सहसादः ।
ईदृशेऽभिनयके प्रतियाति किन्न तस्य हि निमन्त्रणतातिः ॥१३
गम्यतां पुनरितीह निरुक्तिः साष्टचन्द्रनरपोग्रहयुक्तिः ।
स्वम्वरं प्रचरितुं धृतसत्तां गन्तुमेष च समाममवत्तां ॥१४
गच्छतां तु + तरुणाहितसक्तिश्छाययां भिददतीत्यनुरक्तिं ।
पद्धतिर्वनु सुलोचनिकेवा मोददा सफलकौतुकसेवा ॥१५
पाणिनीय + कुलकोक्तिसुवस्तुपूज्यपादविहितां सुदृशस्तु ।
सर्वतोऽपि चतु × रङ्गततामिः काशिकाम् ययुरमीधिषणाभिः ॥१६
आप्रतं भरतभूपतुजं तं चैत्यकाशिपतिरुत्तमसन्तं ।
सोपहारकरणः प्रणनाम प्रोक्तवानपि यदेव ललाम ॥१७
पादपद्मरुचयः शुचयोऽपि आव्रजन्तु भवतोऽनुनयोऽपि ।
सेवकस्य च कुटी रमयन्तु सौरभाश्रयणमाशु नयन्तु ॥१८

\+ तरुणैराहितासक्तिर्यत्र सा, पक्षे तरुणा वृक्षेण ।

\+ हस्तसंकेतप्रापणीया, पाणिनेरियं पाणिनीया चासौ कुलकोक्तिश्च ।

× चतुर्भिरङ्गैस्तताभिः, चतुरङ्गैर्हयैस्तताभिः ।

यौवनादिमसारिक्त्रवदुर्मेः स्यात्स्वयंवरविधिदु हितुर्मे ।
श्रीमतां नयनमीनयुगस्यानन्दहेतुरियमत्र समस्या ॥१६
इत्थमुक्तवति काशिनरेशे दुग्धवन्मृदुवचः श्रुतिलेशे ।
दूषणस्य विचचार जलौका एव दुर्मतिसदर्थितग्लौकाः ॥२०
दत्तमस्त्यपि निमन्त्रणपत्रमत्र येन च भवान् गिरमत्र ।
दुग्धतो हि नवनीतयुदेति गौस्तृणानि हि समादरणेऽति ॥२१
काशिकापतिरितो नतिमाप वायुनांघ्रिप इवायममापः ।
तत्र तस्य सचिवेन सदुक्तं वाच्यमेव समये खलु युक्तं ॥२२
संनिमन्त्रणमहान्यकृतिभ्यः कार्यकार्यपि तु मंत्रणमिभ्यः ।
स्वात्मना पुनरिती हिमवद्भ्यः प्रार्थ्यते सपदि भो निजसद्भ्यः ॥२३
यच्च कुङ्कुमितपत्रपदेनामन्त्र्यते स्वयमथायमनेनाः ।
श्रीमतां चरणयोः समुपेतः स्वामि एव मन किन्न तथेतः ॥२४
विज्ञभाषितमिदं सुमनोभिराश्रितं हृदयतो बहुशोभि ।
इत्यनेन रविरुल्लसितोऽभूज्जातुचिच्चनतमो धृगितो भूः ॥२५
राजकीयसदनं मतिमद्भ्यः प्राह सत्तनुपिताथ भवद्भ्यः ।
संविहाय हृदयं न गुणेभ्यः स्थानमन्यदुचितं खलु तेभ्यः ॥२६
स्नानसम्भजनभोजनपानानन्तरं मतिमुवाह निदानात् ।
अर्ककीर्तिरनुयोजनमात्रमागता वयमनर्थतयात्र ॥२७
याम एव सदसीह परन्तु भिन्नभिन्नरुचिमद्गुणतन्तु ।
सत्तनुर्ननु परं जनमञ्चेत्का वशा पुनरहो जनेमञ्चे ॥२८
सन्निशम्य वचनं निजभर्त्तर्मानसं मुदितमेव हि कर्त्तुम् ।
प्राह भो प्रतिभवाम्यपहर्त्तुं तिष्ठतान्मदनुकः खलु मर्त्तुं ॥२९

अन्वमानिरविखेदमयोग्यमित्यतोऽपयश एव हि मोर्म्यं ।
तत्र चोक्तमितरेण जनेन सम्वदाम्ययनमेकमनेनः ॥३०
साधदीदमहमस्मदुपायात् दायनाम विकरोमि यथायात् ।
तच्च नैकहृदि येन पुनः स्यादुत्थितातिविकटेव समस्या ॥३१
तयदाप्य निगले हि विभूनामर्पणीयमिति युक्तिरनूना ।
एवमन्यमनुजेन निरुक्तं दुर्मतिस्तु स बभाण न युक्तं ॥३२
तत्करोमि किल सा सहजेनारोपयेद्विभुगले तदनेनाः ।
चिन्तयन्तपुरुमित्यमिराध्यं धीमतामपि धिया किमसाध्यं ॥३३
युक्तिमेति पुरुषो यदि मुक्तिमश्वितुं स्वयमतीन्द्रियसूक्तिं ।
तत्किमङ्गमिह नानुविधत्तेप्यङ्गनानुकरणप्रतिपत्तेः ॥३४
सन्निनाय सनिजं मतिकेन्द्रमुत्सहेऽत्र महनीयमहेन्द्रम् ।
योर्हतीह सुदृशोऽग्रिमसाजमेष एव खलु कञ्चुकिराजः ॥३५
सम्प्रवृज्य पुनराह तमेष भो सुभद्र ! भवतामधिवेशः ।
राजतामतिशयेन च राज-राजिरत्र बहुला सखिराजी ॥३६
माघवीप्रकृतिपूर्णमिवौकः कौतुकस्य नगरं खलु लोकः ।
आव्रजत्यपि यतः स्वयमेव श्रीमतां सुमुख किन्न मुदे वः ॥३७
प्रस्तरोच्चयमपात्पृथुसानोः सम्बिवेचनमहो वसुभानोः ।
नैव साहजिकमस्ति यदेषा कर्तुमर्हतु हृदा मृदुलेशा ॥३८
इत्यतः पृथुलराजसमूहात् संलभेत च वरं सुतनूहा ।
चेद्यदि स्खलितमत्र तदा किं कर्तुमर्हति भवान् सुविपाकिन् ॥३९
त्वद्विभुर्विभुषु वीक्ष्य वरार्हं तां ददत्त दुहिताय सदार्हन् ।
किन्तु किन्तदिह बुद्धमनेन नैव वेद्मि खलु वृद्धजनेन ॥४०

एतदुक्तमुपश्रुत्य जगादाथो महेन्द्रमतिराट् श्रुतवादान् ।
इत्यनेन हि भवादृशभीवा स्यादृशां भवितुमर्हति भिवा ॥४१
भाग्यवल्लिफलमेतदमुष्या अस्मदीयकरकार्यमनुस्यात् ।
यत्किलोपवनरक्षणतातिर्मालिहस्ततल एव विभाति ॥४२
हेऽपयोगगहनोदधिनाविश्चित्तवृत्तिरधुना भुविका वः ।
कस्त्वदीश दुहितुर्भुवि योग्यः केन सन्मणिरसानुपभोग्यः ॥४३
इत्यमुष्य विनियोगमुवेतः कंचुकी समनुकूलितचेतः ।
प्राह चक्रिसुत एव विशेषस्तत्समो भवतु को न रवेशः ॥४४
इत्यवेत्य रविना ‡ निजगाद सत्तमोस्तु भवतामभिवादः ।
सन्तु दीर्घजनुषोऽत्र भवन्तः पूरयन्तु कुशलं भगवन्तः ॥४५
एवमस्ति पुनरादिसुतोपि तोषमेष्यति दुराग्रहलोपी ।
दावयामि भवते परितोषं सज्जनाश्रयमितः कुरु कोषं ॥४६
फुल्लदा न इतोभिजगाम यस्य दुर्मतिरितीह च नाम ।
सानुकूल इव भाग्यवितस्ति तद्भविष्यति यदिच्छितमस्ति ॥४७
पृष्ठतः स्मरति कञ्चुकि आर्यः कीदृगस्ति मनुजोयमनार्यः ।
कस्य को वशकृदस्ति विचार्य सौहृदं तु सुहृदामथ कार्यं ॥४८
प्रत्युपेत्य स जगौ रविमेवं फुल्लदास्यकुसुमः सकृदेव ।
तद्भविष्यति यदेवमुदेवः ईशिता तु जगतां पुरुदेवः ॥४९
इत्यनेन वचसा हृदि मोदमप्युपेत्य गदितं च वचोऽदः ।
कौतुकेन भरतेशसुतस्यै-वं परस्परमनेकसदस्यैः ॥५०

‡ अर्ककीर्तिर्मनुष्यो दुर्मतिः ।

केनचिद्गदितमस्मदधीशः स्यादहो नववधू स मयीसः ।
मोदकान्यपि तदामहदस्मद्भाग्यमित्यनु पुनर्भविता स्मः ॥५१
इत्यमुक्तवति तत्र परस्मिन्नाह कोपि मदनोदयरश्मिः ।
केवलं न भविता मृदु भुक्तिः सम्भविष्यति च बीवनियुक्तिः ॥५२
येन कर्णपथतो हृदुदारमेत्य पूरयति सोमृतसारः ।
भूरिशः सरस एव सहासः सोन्वपूरिपरमो भुवि रासः ॥५३
निर्मलाम्बरवती मृदुतारा स्फीतचन्द्रवदनीयमुदारा ।
दृष्टुमपि हि सुरोचनिका वा प्रस्फुरज्जलजवत्पदभावा ॥५४
दर्शयत्यपि निजं पुलिनं तु वारिपूरवरमार्दववीर्या ।
आपगामगतलज्जमिवाङ्कं सङ्गमान्तरवती युवतीर्या ॥५५
वारिजे कमलिनीमलिनागः भूरि चुम्बतितरां धृतरागः ।
दीर्घकालकलितामिव रामा मानने सपदि कामुकनामा ॥५६
× पक्वबालसहिता खलु शालिकालिभिर्द्रुतमुपाद्रियते वा ।
याऽप + दन्तवचना जरती वा रादघावृतपयोधरसेवा ॥५७
भूरि धान्य* हितवृत्तिमतीतन्नि† र्जरत्वमधिगन्तुमपीतः ।
सम्बिका शयति या जडजातमप्युद* र्कमनुदयात्यथ वातः ॥५८
नीरमुज्वलजलोद्भवनिष्ठं प्रोल्लसत्तममरालविशिष्ठं ।
सोमशोभिनभसो मघुतस्य तुल्यतामनुदधाति हि तस्य ॥५९

× परिपक्वैः शिरोभिः, श्वेतैः केशैर्वा ।

+ विपन्निवारिका, दन्तरहितमुखा च ।

* अनेकप्रकारेण परोपकारकर्त्री, अनल्पधान्यसंगाहिका च ।

† जलाभावं देवत्वं च । * उद्धतमहं, आविलत्वं च ।

शीतरश्मिरिह तां रुचिमाप यां पुरा न हि कदाचिदवाप ।
इत्यतः पुलकितेव तमिस्राभ्यामपुष्टतरतां च भुवि प्राक् ॥६०
वीक्ष्य लोकमधिष्ण्यान्यधनेशमापतापमधुनात्र दिनेशः ।
तेन मास्य लघिमापि परेषामुन्नतेरसहनात् स्वयमेषा ॥६१
कन्यकां+ व्रजति भोक्तुमिवेष सन्निपत्यजडजेषु दिनेशः ।
भ्रष्टविश्वपथदर्शक एव दुष्प्रयोगवत्संस्मृतये वः ॥६२
भैरवश्यमपि यत्र नभस्तु भैरवस्य धरणीतलमस्तु ।
वाहनैः प्रमुदितैस्ततमेतत् कं निशासु कुमुदैः समवेतं ॥६३
स्वर्गतोऽपि समुपेत्य धरायामभ्रमच्चि यदि पूर्वजमाया ।
वक्तुमाशु शरदो महिमानमस्तु किं वचनमत्र वदानः ॥६४
आश्विनो[] पलपनेन हि निष्ठा कार्तिका§ श्रितिरितोऽस्त्ववषिष्ठा ।
कौशरस्य समुपेत्य शुचित्वं शारदोदयरयेऽस्तु कवित्वं ॥६५
मरूपकरणायाथ वायसास्थितिहेतवे ।
अस्यां समानभावेन यतिवाचीव चान्वयः ॥६६
हलि * जनो बहुधान्यगुणार्जने मतिमुपैति च विप्लवलोऽवनेः ।
व्रजति वेदमतीत्य पुनर्वचः शिखिजनो‡न्यत एव तथा स च ॥६७

+ कन्यानामराशि पुत्री च ।
[] आशु इनोपलपनेनेश्वरभजनेन आश्विनप्रारम्भेण च ।
§ का, अर्तिका श्रितिः कार्तिकाश्रितिश्चेति ।
* कृषीवलः, चाण्डालादिश्च ।
‡ म्लेच्छवर्गः हिन्दुलोकश्च ।

स्वर्गोदारमिदं क्षणं सुमनसामीशोपलब्धादरं,
यत्रोद्दामसुधाकरोद्भयविधिः सत्वप्रतिष्ठाक्षमः ।
वर्त्तेतापि पुनीतसारमधुरा पद्मालयानां ततिः,
तिष्ठन्ती स्वयमापतानवनवारम्भाप्यमन्दस्थितिः ॥६८

(स्वयंवरमतिश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वय,
वाणीभूषणमक्षियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
कान्ताप्तिप्रतिपत्तिसाधनतया सर्गश्चतुर्थोऽसकौ,
तत्प्रोक्तस्य समाप्तिमेति सरसः काव्यप्रबन्धस्य कौ ॥६९॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
अर्ककीर्तिसमागमननामकः चतुर्थस्सर्गः ।

———

अथ पंचमः सर्गः

श्री स्वयंवरमवेत्य तदारात् देहदीप्तिकृतकामनिकाराः ।
शस्त्रशास्त्रविदि लम्भितपाराः प्रापुरत्र कुलजाः सुकुमाराः ॥१

दिक्षु शून्यतमतां वितरीतुं सत्तमैर्नृपसुतां तु वरीतुं ।
दर्शकैरपि परैरपहतुं तानितं तदितरैः परिकर्तुं ॥२

वात्ययात्ययिनि तूलकलापे तादृशी स्मरशरार्पितशापे ।
वेगिता तु समभूत्कृतचारे सा भुवामधिभुवां परिवारे ॥३

प्रेरितः सपदि चित्तभुवा यदंचति स्म न हि कोऽत्र युवा यः ।
कौतुकेन सह सम्पदलोपि न स्थितः सधरणेश्वकणोपि ॥४

कन्यका यदपकर्षणविद्या ईश्वरा अपि विमुक्तनिषद्याः ।
काशिमाशु सकलाः समवाप राजतेऽतिविमलाः खलु यापः ॥५

सामदामविनयादरवादैर्धामनाम च वितीर्य तदादैः ।
आगतानुपचचार विशेषमेष सम्प्रति सकाशिनरेशः ॥६

तामपेत्य वसुधा वसुरूपां प्रस्थितास्तु सकला दिगनूपाः ।
तत्तदङ्गिसमुपाङ्कितवाधानिर्वृतिं तु हरितामिति वाऽधात् ॥७

तैरकम्पनभुवा तुलितानि वीक्ष्य चित्रखचितानि भसानि ।
भूमिपैर्दिनमनायिनिशापितत्स्फुरच्छयनभवादृशापि ॥८

दूतहूतिमुपगम्य समस्तैः सोऽपरेद्युरिह तत्सुखमस्तैः ।
सारितामरणभूषणसारैर्मण्डपोऽप्यलमकारि कुमारैः ॥९

आत्मतादृपनयन्निह भूपान दर्पकोऽतिकुशलान् समरूपान् ।
स्वस्य नाम बहुरूपमिदानीमाह सार्थकमनुत्तरमानो ॥१०
रूपयौवनगुणादिकमन्यैः स्वं जनोऽथ तुलयन्निह धन्यैः ।
रक्तिमेतरमुखं सरटोक्तं नैकरूपमयते स्म तथोक्तम् ॥११
सस्मयौ सपदि काशिसु भूमावेव देव ! जगतां नृपभूमा ।
ऋद्धिरस्तु वरदानरधातुस्तापितान्समयते स्म तु यातु ॥१२
सातिसंकटतया नरराजां लंघनाशयविलंबनभाजां ।
सन्ददौ विचलदञ्चलपाकाऽऽह्वानननन्तु नृपसौधपताका ॥१३
आसनेषु नृपतीनिह कश्चित्सन्निवेशयति स स्म विपश्चित् ।
हास्मितोरविकरानवदात उत्पलेषु सरसीव विभातः ॥१४
भोग उत्तमतमो भुवि दारास्तेषु रत्नमियमेव ससारा ।
तत्र भोगिपदयोगिकलापः युक्तमेव पुनराशु समाप ॥१५
सत्वरङ्गतरलैर्निजिकेन्द्रादागता हयवरैस्तु नरेन्द्राः ।
तावतैव हि हयाननवगः प्राप्तवानभिनिवोधनिसर्गः ॥१६
मानिनोऽपि मनुजास्तनुजायामागता रसवशेन सभायां ।
जायते सपदि तत्र किमूहः स्वागतः खलु विमानिसमूहः॥१७
चित्रभित्तिषु समर्पितदृष्टौ तत्र शश्वदपि मानवसृष्टौ ।
निर्निमेषनयनेऽपि च देव व्यूह एव न विवेचनमेव ॥१८
सेवकेऽपि समभूद्गुणवर्गः पाटवामरणविभ्रमसर्गः ।
तं स्म येन जनतामनुतेऽर्रं नायकं कमपि सुन्दरवेरं ॥१९
यत्कुलीनचरणेषु च तेषुच्छायया परिणतेषु मतेषु ।
उद्गतः सुमनसां समुदायः काल एव सुरभिः समियाय ॥२०

मासि मासि सकलान्विधुबिम्बान् स्मात्मभूस्तिरयते भितडिम्बान्।
सन्निधाय विबुधः समनीषामाननानि रचितुं स्विदमीषान् ॥२१
नो वृषाङ्कविभवेन पुराथ पञ्चतामुपगतो रतिनाथः।
सन्ति साम्प्रतमिमाः प्रतिमास्तु सृष्टिदृष्टिविषयाः कतमास्तु ॥२२
ईदृशे भुवगणेऽथ विदग्धे का क्षती रतिपतावपि दग्धे।
नानुवर्तिनि रवौ प्रतियाते दीपके मतिरुदेति विभाते ॥२३
वेशवानुपजगाम जयोऽपि येन सोऽथ शुशुभेऽभिनयोऽपि।
लोकलोपिलवणापरिणामः नीरमीरयति च स्म स कामः ॥२४
राजमान इह राजनि एतैर्बाहुजैः सदसि तत्र समेतैः।
जल्पितं जगति नामनिजं यत्त्वत्रमत्र न पुरस्सरमेतत् ॥२५
द्राक् पपात तरणाविवपद्मानन्ददायिनि जये स्मयसद्मा।
दृष्टिरभ्युदयभाजि जनानां तेजसाञ्च निलये भुवनानां ॥२६
स्थातुमत्र हृदये तरुणानामातिथेयविलसत्करुणानां।
द्वन्द्विताऽजनि बृहद्गुणराजोस्सोमसूनुसुमसायकभाजोः ॥२७
राजराजिरिति दूषणभृष्टिरुच्चरोच्चरगुणाधिकसृष्टिः।
स्मैति या भुवनभूषणकृत्तां मौक्तिकावलिरिवायतवृत्ता ॥२८
या सभा सुरपतेरथ भूतासौ ततोऽपि पुनरस्ति सुपूता।
साऽधरा स्फुटममर्त्यपरीताऽसौ तु मर्त्यपतिभिः परिणीता ॥२९
तत्र कश्चन कविर्गुरुरेक एक एव हि कलाधरटेकः।
अत्र सन्ति कवयो गुरवश्च सर्व एव हि कलापुरवश्च ॥३०
मादृशा खलु दृशागुणगीता कापि नापि परिषत्परिपीता।
ज्ञायते च न भविष्यति दृश्याभूत्रयाति शयिनी बहुशस्या ॥३१

सौष्ठवं समभिवीक्ष्य समाया यत्र रीतिरिति सारसभाक्षाः ।
वैभवेन किल सज्जनताया मोदसिन्धुरुदभूज्जनतायाः ॥३२

काशिभूपतिरहो बहुदेशाभ्यागताः कथममी सुनरेशाः ।
वर्ण्यभावमनुयान्तु सुतायामित्यभूत्स्थलमसावकितायाः ॥३३

तत्तदाशयविदाथ सुरेण भाषितं नृपसकुचिचरेण ।
राजराजिचरितोचितवक्त्री विश्वमेव सदसीह भवित्री ॥३४

भूरि भूशकलवासिनराणां वंशशीलविभादिवराणां ।
वेत्सि देवि (!) पदमर्हसि तत्त्वं मौनमत्र न हि ते खलु तत्त्वं ॥३५

इत्यमुष्य पदयोः रज एषा शासनं किल बभार सुवेशा ।
देवतापि नु +मया खलु बुद्धिर्मस्तकेन विनयाश्रितशुद्धिः ॥३६

आगता सदसि सा खलु बाला गानमानविलसद्गलनाला ।
दृष्टिसृष्टिविषयेषु विशाला आदरानुगतमानवमाला ॥३७

या विभाति सहजेन हि विद्या तन्मयावयविनी निरवद्या ।
एतदीयचरितं खलु शिक्षा वा जगद्धितकरी सुसमीक्षा ॥३८

केशवेश इह ×पन्नगसूत्री सा श्रुतिस्तु भवताच्छ्रुति ‡पुत्री ।
वक्त्रमत्र खलु +सोमविचारं हास्यमस्यति [शितांशुकसारं ॥३९

ओष्ठ एव †मरुणाम्बरजल्पस्सत्कुचो भवति ‖कुम्भककल्पः ।
दृष्टिरेव लभते चणिकत्वं हस्तयुग्ममथ पल्लवतत्वं ॥४०

— +नाम्ना । ×सर्पः पक्षे नागदत्ताचार्यः । ‡ वेदः । + चन्द्रः पक्षे सोमनामाचार्यः । [चन्द्रमाः पक्षे श्वेताम्बराचार्यः । † लौहितीकृताकाशः पक्षे रक्ताम्बराचार्यः । ‖ घटः कुम्भकनामकाचार्यश्च ।

सन्त्रयीतुवलि* पर्वविचारा श्रोणिरेव हि ¶गुरूक्तिरुदारा ।
कामतन्त्रमथवास्ति जघन्यं शून्यवादमुदरं वद धन्यं ॥४१
अन्ततां स्फुटमनेकपदेन यान्ति सम्प्रति गुणाः प्रमदेन ।
नास्तिकत्वमथ दुर्गुणभारः संतनोति सुतरामतिचारः ॥४२
उल्लसत्कुचयुगव्यपदेशादेतदीयहृदये तु विशेषात् ।
वाच्यवाचकयुगन्धरमेतद्राजते कनककुंभयुगं तत् ॥४३
यत्सुवर्णकलितं ललितं स्याद्वृत्तरूपचरणश्रुतमस्याः ।
ऊरूयुग्ममिदमेव तु सत्यं वृत्तभावमनुविन्दति नित्यं ॥४४
आयतं जगति वृत्तसुरूपं वैधधर्मपथयुग्मनिरूपं ।
भ्राजते भुजयुगं खलु देव्या या समस्ति चतुरैरपि सेव्या ॥४५
एतदीयरदनच्छदसारौ पूर्वपक्षपरपक्षविचारौ ।
वक्तुरप्यपरवक्तुरुमाङ्गैः शोभितौ स्वधृतपक्षसुरागैः ॥४६
सत्यतारकपदप्रतिमानौ यौ समीचितपरस्परदानौ ।
निश्चयेतरनयौ हि सुदृष्ट्या नेत्रतामुपगतौ प्रतिपत्या ॥४७
सात्रिसूत्रि अपि तत्र कुतस्स्याच्चेत्कुतं नगलकन्दलमस्याः ।
वाद्यगीतनटनोचितसारैस्तच्छ्रुतात्समवकृष्य विचारैः ॥४८
तां गभीरचरितां स्फुटमध्यात्मश्रुतिं द्व्यणुकमञ्जुलमध्या ।
द्रागनङ्गसुखसारविधात्रीमेति नाभिमतिसुन्दरगात्री ॥४९
भात्यसावुदिततारकवृत्ताऽङ्केन किञ्च कलितोचितसत्ता ।
हारयष्टिरपि सद्गलनाले ज्योतिषां श्रुतिरिवाद्य सुकाले ॥५०

---

* त्रिवलियुक्ता, वेदविचारिका च ।

¶ स्थूलतरा, बृहस्पतिनिषाणी च ।

साऽवदन्नृप ! सुमङ्गलवेलासौ शुभस्तु भवतादवहेला ।
ईदृशामिह महीमहितानां वृत्तमङ्ग विवृणोमि हितानाम् ॥५१

त्वत्सहोदरनिदेशविधात्री तत्पुनर्भवदनुग्रहपात्री ।
एकया व्यवहृता यदि मात्रा भिद्यते नृप न जातु विधात्रा ॥५२

श्रीपयोधरभराकुलितायाः संगिरा भुवनसम्विदितायाः ।
काशिकानृपतिचित्तकलापी सम्मदेन सहसा समवापि ॥५३

मोदनोदयमयः प्रतिमादैः प्रस्तुतं स्तुतमनिन्दितपादैः ।
काशिभूमिपतिरारभमाणः सोऽभवत् सपदि सत्पथशाणः ॥५४

दुन्दुभिर्ध्वनिमसावनुतेने व्योमसर्पिणमिमं खलु मेने ।
मोदनोदनिधिगर्जनमेष किन्तु मानवमहापरिवेशः ॥५५

निर्जगाम नृपनाथतनूजा स्त्री न यामनुकरोति तु भूजा ।
पार्श्वतः परिमितालिविधानादेवतेव हि विमानसुयाना ॥५६

यापि कापि उपमा सुदृशः स्यात्सैव ‡नित्यमपकारपराऽस्याः ।
सैव +वाकविवरैरुदिता या सङ्गतास्ति न परा मुदितायाः ॥५७

कौतुकाशुगसुलास्यविधाने रङ्गभूमिरियमित्यनुमाने ।
सूत्रधार इह सौविद एवासौमहेन्द्रयुतदत्तसमाव्हा ॥५८

भूषणेष्वरुणनीलसितानामश्मनां द्विगुणयत्यभियाना ।
अङ्गसंगमितभाभिररेपान् ×कुङ्कुमैणमदचन्दनलेपान् ॥५९

---

‡ अयोग्या, पकारवर्जिता वोपमा, उमेत्यर्थः ।

+ कथिता कविभिः सैवाथवा उकारेण रहिता, लमैव सा लक्ष्मीरिति । × अनल्पान् ।

†अन्दुभिस्तु पुनरंशुकराजैः सान्द्ररत्नलसदंशुलभाजैः ।
नावकाशममुकां नृकलापः क्वापि सम्यगिति पातुमवाप ॥६०
पूर्वमत्र जिनपुङ्गवपूजामाचचार नृपनाथतनूजा ।
यत्र भूत्रयपतेरथ भक्तिः सैव सम्भवति सत्कृतपक्तिः ॥६१
तत्र मुक्तिललना वरमारादादरात्समभिषिच्य च +वारा ।
सा तया स्वतनुमाशु सिसेच प्रस्तुताथ रुचिरेऽवसरे च ॥६२
×कौतुकानुकलितालिकलापाऽऽमोद ÷ पूरितधराम्रदुरूपा ।
तत्स्वयंवरवनं निजगामासौ वसन्तगणनास्वभिरामा ॥६३
पुष्परूपधनुषा स्मर एनं जेतुमर्हतु जयं गुणसेनं ? ।
शक्रचापममुकाय ददाना स्वान्दुरत्नरुचिजं मृदुयाना ॥६४
नित्यमेतदवलोकनकर्त्री दृष्टिरस्तु न विकारसवित्री ।
भूभृतामिति सचामरचारः पार्श्वयोरिह बभौ स विहारः ॥६५
दृष्टिराशु पतिता विमलायां नव्यभव्यरजनीशकलायां ।
कौमुदादरपदातिशयायां प्रेक्षिणी ननु नृणामुदितायां ॥६६
नो हृदेव न दृशैव विशोकैः किंतु पूर्णवपुषैव हि लोकैः ॥
मज्जितं सुदृशि तत्र मदेन भूषणानुगतबिम्बपदेन ॥६७
सन्निमेषकदृशा खलु पातुं रूपमम्बुजदृशो ननु जातु ।
जृंभणच्छलितयाऽरमशक्तैराननं विवृतमित्यनुरक्तैः ॥६८
प्रौढतामुपगतानि विभूनां मानसानि खलु यानि च यूनां ।
❀ताम्रचूडपरिवाद्यकरावैर्जाग्रतिन्तु गतवन्त्यनुभावैः ॥६९

---

† भूषणैः । + जलेन । × विनोदपूर्णसखियुक्ता, पक्षे पुष्पानुगतषटपदयुक्ता । ÷ हर्षः सुगन्धश्च । ❀ वाद्यविशेषः कुक्कुटश्च ।

वीक्ष्यतामथ विभाकरमूर्ति, संयुयुस्तु पुनरुत्थितिपूर्ति ।
लौमकानि सहसा सकलानि ‡बाल्यमाञ्जि अपि सम्प्रति तानि ॥७०
स्वान्तपत्रिणि यतोऽत्र वरतु श्रीदृशस्तनुलतामभिसतु ।
जृम्भिताननवतामिह यासौ प्रेरिकैव चटकी †समियासौ ॥७१
दृक्संक्रमिताप्सरस्सु* यूनामनिमेषकता* मवापदूना ।
आलिसु सुधाधुनीं पुनरेनाम्प्राप्य []सफरतामितेत्यनेनाः ॥७२
युवमनसीति वितर्कविधात्री सुकृतमहामहिमोदयपात्री ।
सदसमवाप मनोहरगात्री परिणतिमेति यया खलु धात्री ॥७३
विजित्य बाल्यं वयसात्र विग्रहे महेशसाम्राज्यमहोत्सवे च हे ।
कुचच्छलेनोदयिमोदकद्वयं स्मराय दत्तं रतये पुनः स्वयं ॥७४
जितात्करत्वेन विषयात्तमग्रजं निजं भुजाभ्यां कलितं विभाव्यते ।
श्रियो निवासोऽयमहो कुतोन्यथा कुतश्च लोकैः कर एष गीयते ॥७५
अहो महोदन्वति यत्र सम्भवा भवावलिं संस्कुरुते रते रमा ।
रमा समासादितसंक्रमासकौ स कौ ×क भव्यो रसराजसागरः ॥७६
स्मरो नरोऽसौ †विजयैकतत्परो निघर्षकुण्डीनचतुण्डिकेत्यरम् ।
न रोमराजिर्मुशलीति ते पपुः तदेतदस्यामद मन्दिरं वपुः ॥७७
येनाप्यमुष्याश्चरणद्वयस्य यत्साम्यसौभाग्यमवाप्तमस्य ।
साम्राज्यमासाद्य सरोजराजेः पद्मः प्रसिद्धः खलु सत्समाजे ॥७८

---

‡ केशत्वयुक्तानि शिशुत्वसहितानि च ।
† भ्रजिष्णौ । * जलयुक्तसरोवरेषु स्वर्गवेश्यासु वा ।
* रूपतां पक्षे देवत्वं वा निमेषाभावतां वा ।
[] मृद्धरूपतां जन्मसाफल्यं च ।
× पृथिव्यां । † विजया भङ्गा तल्लीनः विजयपरायणश्च ।

संग्रह्य सारं जगतां तथात्रासौ निर्मितासीद्विधिना विधात्रा ।
इतीव क्लृप्ता उदरेऽपि तेन तिस्रोऽपि रेखास्त्रिबलिच्छलेन ॥७६
आस्येन चास्याश्च सुधाकरस्य स्मितांशुभासातुलया धृतस्य ।
ऊनस्य नूनं भरणाय *सन्ति लसन्त्यमूनि प्रतिमानवन्ति ॥८०
जित्वा त्रिलोकीं विशिखत्रयेण मुक्तं पुनर्व्यर्थतया स्मरस्य ।
दृग्देशवेशाच्छरयुग्यमेतन्नासापदेशास्तिलपुष्पतूणं ॥८१
नेत्रे पवित्रे सुदृशः समस्य भ्रूभङ्गदम्भादपि दर्पकस्य ।
चापार्थमारोपितशस्यनासावंशस्फुरत्पत्रयुगं स्वभासा ॥८२
यन्मूर्धजैः सार्द्धमधीरदृष्ट्यास्तुलैषिणस्सा च मरीचसृष्ट्या ।
स्वबालभारस्य च बालभावं वदत्यदः पुच्छविलोलनेन ॥८३
कामोऽभिरामोऽपि मृतो मदेश नये नयेनापि तु जीव्यते सः ।
रसोऽधरस्यास्य पुनीततन्तुः मुधा सुधांते विबुधाः पिबन्तु ॥८४
का कोमलाङ्गी बलये धराया ‡धाकोऽप्यपूर्वप्रतिमोऽमुकायाः ।
पाकोऽथवा पुण्यविधेरनन्यः नाकोऽनुयोत्रैव समस्तु धन्यः ॥८५
+वयोऽभियुक्तेयमहोनबालता*कराधरांघ्रिष्वधुना प्रवालता ।
उरोजयोः कुड्मलकल्पकालता रदेषु मुक्ताफलताऽथवाऽऽगता ॥८६
जितापि रम्भा †विधुजन्मदात्री कुतोऽथ •साचाघनसारपात्री ।
सुवृत्तभावादि बलेन चोरुयुगेन तन्व्याः सुकृतायतोरुक् ॥८७
×किमिन्दिरासौ ननु साकुलीना कलाविधोः सा न कलंकहीनाः ।
रतौ सतीयं ननु सा न दृश्या प्रतर्कितं राजकुलैः स्विदस्यां ॥८८

---

* उद्धनि । ‡ प्रभावः । + नवयौवनपूर्णा, पल्लिसक्ता च ।
* बाल्यवर्जिता, नूतनलता च ।
† कर्पूरः । • पुण्यवती, कर्पूरानुत्पादिका च । × लक्ष्मीः ।

समावनिर्यौ तु विभाविचारतः स योऽपि नाकः समुदेति मानवान्।
रसातलन्तूत्तलसातलं पुनर्जगत्त्रयं चैकमयं समस्तु नः ॥८६
शूरा बुधा वा कवयो गिरीश्वराः सर्वेऽप्यमीर्मङ्गलताममीप्सवः।
कः सौम्यमूर्तिर्ममकौमुदाश्रयोऽस्मिन्संग्रहे स्यात्तु शनैश्चराम्यहम्॥९०
अभ्यागतानभ्युपगम्य सुभ्रु वः श्रीदृक्परीदृक्तया धवान्भुवः।
साऽभूत्समन्तादनुयोगनर्तिनी हीणापि दृष्टापि तु चक्रवर्त्तिनी ॥९१
कराधिकत्वेन यथोत्तरं तरां प्रवर्तमानेऽपि विधौ समुत्तरा।
अपूर्वरूपाम्बुधितोऽपि साऽभवद्दृगुत्तमापारमितेव सुभ्रु वः ॥९२
वीक्ष्य शिक्षणकृतादरणीयाऽथ न गणनीयतया गणनीयान्।
असुमत्वात्सुमताश्रुतयापि कौशरमावात्सुवृत्ततापि ॥९३
कुरीन् तरुणाश्रितां वरत्तु विवरणार्थमुदितामुपकर्त्तु।
सम्पल्लवललितां सभावनीमनुबभूव कारिकां पावनीं ॥९४
वाग्वालिकायाः स्फुटदन्तरश्मिरभित्रजंत्यामिव सेर्षरीतिः।
समुज्ज्वलाकालतया बभूव सुधावधीनासदृशीदृशीति ॥९५
मनो मर्मकस्य किलोपहारः बहुष्वथान्यस्य तथाऽपहारः।
किमातिथेयं करवाणि वाणिः हृदेऽप्यहृद्येयमहो कृपाणी ॥९६
जयेति मातः प्रणयं ममाप्त्वा सम्प्लावयेऽहं सहसा समाप्त्वा।
एकेन सम्बद्धमुदोऽलमेतैः किं राजकैर्भूरितया समेतैः ॥९७
सुवचभाजो ग्रहणाय वामां भुवीत्यपूर्वामपरस्य हा मां।
राज्ञामतः पंचदशीं धिगेव किमाभवं सा गुरुवाग्युगेव ॥९८
भयान्वितोहं परिषत्त्वयातः कुतस्तु पारं समुपैमि मातः।
बालस्य चाऽऽलस्य सहोनतातः मिदंप्रिरुक्तः खलु पंकजातः ॥९९

बिधानमाप्त्वा कमलं करिष्णोरप्यभ्रमालोकतया चरिष्णोः ।
सम्भेदमापाऽऽदरमुद्रणाशा देव्या मुखाम्भोरुहमुद्रणासा ॥१००
कः सौम्यमूर्तीति जयेति सूक्ती शुक्तीशुभे त्वकवलोपयुक्तो ।
सत्कर्त्तुमेवोदयते समुद्रः न कोऽपि नायात इतोस्त्यशूद्रः ॥१०१
किमिष्यते मेकगतिश्च सूक्ता श्रीराजहंस्यास्तव वारिमुक्ता ।
पथाप्यथादीयत इष्टदेशः खलोपयोगाद् गवि दुग्धलेशः ॥१०२
मुदश्रुसन्तानयुगस्तु कश्चित्त्वया यदैवाङ्गसमस्ति नश्चित् ।
परेष्वपि स्पष्टमुदश्रुवाहा सभा भवत्त्या न किमादराहा ॥१०३
अभूदियं भूरि नभास्वतस्तु सभा पुनः सत्समवायवस्तु ।
इतान्धकालास्तु सुते नवीना तदास्ययोगादथ कौमुदीना ॥१०४
त्वमिष्यते सप्रतिपद्धरातरेऽद्वितीयतामञ्चकराधरे वरे ।
समृद्धये शीघ्रमनङ्गदर्शिकेऽथ मादृशामत्र दशा हि हर्षिके ॥१०५
स्वङ्गीयूनां कामिकमोदामृतधारां,
यच्छन्ती यद्वद्विकलानां कमलाऽरम् ।
बन्धूकौष्ठीनामिकमापालय गर्भं,
भव्यं स्वङ्ग' यमवगोराजिरशोभं (सौराररशोभं) ॥१०६
(इत्येतच्चक्रबन्धाराचरैः स्वयंवरारम्भ इति स्वविषयःनिर्दिष्टः)
श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भु जः स सुषुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
प्रोक्ते तेन जयोदये गुणमयेऽलङ्कारसम्पन्नकौ,
सर्गः सम्व्रजति स्वयंवरविधिः श्रीपंचमश्चासकौ ॥१०७

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामल - शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये स्वयवरवर्णनो नाम पंचमः सर्गः

अथ: षष्ठः सर्गः

सासौ विदेरितारान्नृपपुत्रेषु स्म वैजयविचारा ।
सुहगमुषु हगन्तशरैर्विलसति किल तीक्ष्णकोणधरैः ॥१

कमुपैति सपदि पद्मा शिवसद्मा किन्न गुणभृद्भमां ।
इत्येवमभिनिवेशात् द्वन्द्वमतिस्तेषु परिशेषात् ॥२

विनयानतवदनायाः सुमतिसखीनामतो यथा छाया ।
क्रमतो वसुधामहितानाह नृपानत्र पार्श्वमिता ॥३

विनयानतवदनाया सौदक्षिणाबुद्धिरत्र तनयायाः ।
वरदासौन्वेसमायात् प्रतिपक्षहरा भुवि शुभाषाः ॥४

बहुलो †हतया दयितान् सखी स्वयं शुद्धभावनासहिता ।
क्रमशो ‡वसुधामहितानाहामुष्यै तु +पार्श्वमितान् ॥५

अन्ववदत् सा कञ्चुकिसूचितमपि साम्प्रतं पदैः ललितैः ।
सूत्रार्थमिव च विद्यानन्दमतिश्लोकसंकलितैः ॥६

सुनमिसुविनमिप्रभृतीन्दक्षेतरखेचरात्मजाँस्तु सती ।
सुदृशं सुदर्शयंती प्राह प्राक् पाणिनाऽवन्ती ॥७

गगनाञ्चानां कोटिर्येषामेषा प्रयक्कथा मोटी()' ।
कंचिद् वृणीष्व यश्चित्थावति ते स्वज्ञानजितविपश्चि ॥८

---

† अनेकतर्कणायुक्ततया बहुलाया स्वया च ।
‡ वसुधया महितान् वसु-धामहितान् च ।
+ समीपं स्वर्णकरपाषाणां च ।
() सविस्तरा ।

औ

नक्षीकसरचारवर्वे× पक्षद्वयशालिनः खगाः सर्वे ।
मन्त्रोक्तपदा एवं + विक्रममुपयान्ति च मुदेवः ॥६
किममीषां विषयेऽन्यत्पवित्र* कटिमण्डले च निगदामि ।
•सुरतानुसारिसमयैर्वामानवविस्मयायामीः* ॥१०
⊛वैद्योपक्रमसहितान्तत्र न भोगाधिभुव इमान्सुहिता ।
तत्याज सपदि दूरान्मधुराधरपिंडखर्जूरा ॥११
चालितवती स्थलेऽत्रामुकगुणगतवाचि तु सुनेत्रा ।
कौतुकितमेवं बलयं साङ्गुष्ठानामिकोपयोगमयं ॥१२
यानजना अनर्घन्ताम्बरचारिभ्यो धराचरकुलं तां ।
कमलेभ्यः कुमुदशिवं शशिकिरणाहासभासमिव ॥१३
अनुकूले सति चरणे विदाम्मुखाब्जानि रेजुरिह सत्याः ।
प्रतिकूले म्लानान्यपि तस्मिन् मूर्त्तेः प्रभावत्त्याः ॥१४ ॥
चक्रिसुतादींश्च रसाद्राजतुजोभूचरानमोदरसात् ।
सा स्थललक्षणसुगुणादिभिः क्रमादाह च प्रगुणा ॥१५
भरतेषतुगेष तवाभरतेः स्मरवत्किमर्ककीर्तिरयम् ।
अम्भोजमुखि ! भवेत्सुखि आस्यं पश्यन्सुहास्यमयं ॥१६
को राजावनिभाजां येन कृतोमुष्य नाधुना विनयः ।
अतुलप्रभावनोऽस्माद्भयान्वितो* भानुरपि कदयः ॥१७

× अन्यूनावयवे । + पराक्रमं, पक्षिस्वभावं च । *वज्रतुल्यमध्ये ।
•स्त्रीप्रसंग सुरभावश्च । * वामानां नविस्मयाय वा मानवानां विस्मयाय । ⊛ विद्याविलासयुक्तान्, वैद्यकृतचिकित्साधारान् वा ।
* प्रभया युक्तः भयभीतश्च ।

भुवनेन भातुश्चुम्बितं चितमस्य मरालबालवाक्सुहिते ।
तत्तुल्यनामधारिणि वारिणि सञ्चरति रतितुलिते ॥१८
अयमन्वर्थकनामा राजीव कुलप्रसादकृद्धामा ।
यद्दर्शनेन *कैरवकदम्बको म्लानिमानभवत् ॥१९
इत्येवमर्ककीर्त्तेः पल्लवमतिहृल्लवं स्म जानाति ।
स्मरचापसन्निभभ्रूः कटुकं परमर्कदलजाति ॥२०
भ्रूभङ्गमङ्गजाया लिङ्गं तदनादरेऽम्बिका साऽयात् ।
तस्मिन्पर्वणि तमसा रमसा दसितोऽभितोर्कयशाः ॥२१
गिरमपरस्मिन्निष्टे महाशये साशये न निर्दिष्टे ।
सारयति स्माभिनये शृणु इति सुकेशेशयेष्टशये ॥२२
अयमिह कलिङ्गराजः कलिङ्ग इव ते पयोधरासारं ।
पश्यति शस्यतिलांके नश्यतु तृष्णाप्यमुष्यारं ॥२३
सुन्दरि कलिङ्गजानां कलिङ्गजानां शिरःश्रियाश्रयतात् ।
पीवरपयोधरद्वयरयेण येन स्थितोदयता ॥२४
कोषापेची करजितवसुधोऽयं भूरिघाकथाधारः ।
शैलोचितकपरि च यानिह +कम्पमुपैति रिपुसारः २५
×चतुराणां चतुराणामतुच्छतुष्टिं न यन्नयन्तु समाम् ।
तनुतेऽनुतेजसा त्वां +कलिङ्गराजाभिधां सुलभाम् ॥२६

---

* वैरिवर्गः कुमुदसमूहश्च ।

+ककारं पकारमिति याति यथा कोषापेचीत्यत्र पोषापेची ।

× अन्वयकृदन्ततद्धितोणादिभेदेन चतुःप्रकारशब्दयुक्तां मधुरभाषिणीं ।

+ कलिङ्गश्चतुर इति ।

स्फुटमिह कलिङ्गतानां राजानममुं विचार्य सदधीतिः ।
पातयति स्म न दृशमपि पातयतिं तर्कयन्तीति ॥२७
सुरभिममुं यान्यजना निन्युः स्थानान्तरं तरां जवतः ।
लक्ष्मीवतः सुमनसां प्रमुखादपि मारुता हि ततः ॥२८
वागाह तदनुबाहुर्निजबाहुनिवारितारिपरिवारं ।
स्वपुषं गुणैकवपुषं स्मरवपुषं निस्तुषमुदारं ॥२६
स्मररूपाधिक एषोऽस्ति कामरूपाधिपोथ च मनोज्ञा ।
रतिमतिवर्तिन्यस्मादस्यासि च वल्लभा योग्या ॥३०
काष्ठागतपरमार्थे विभूतिमान् तेजसा दहत्यवशः ।
तेनास्याशयरूपं स्वतो भवति भस्मशुभ्रयशः ॥३१
यत्पादयोः पतित्वान्यभूपकरकुड्मलं व्रजति बाले ।
रत्नत्रयसंसूचकचित्रकरुचिमवनितलमाले ॥३२
अनुनाममुगुणममुं पुनरहोरहोवेदिनीमनीषाभिः ।
नत्वापसापदोषाप्यनङ्गरूपाधिकं× भाम्रिः ॥३३
नयति स्म स जन्यजनो भगीरथो जन्हुकन्यकां सयशाः ।
सुकुलाद् भूभृत इतरं कुलीनमपि भूभृतं सुरसां ॥३४
उक्तवती सुगुणवतीदरवलिताङ्गं तदापि मुख्येन ।
अन्यमनन्यमनोज्ञं पश्यावनिपं सुमुख्येनं ॥३५
काञ्चीपतिरयमार्ये काञ्चीमपहर्तु महंतु तवेति ।
काञ्चीफलवदिदानीं द्विवर्णतां विभ्रमादेति ॥३६

× अनङ्गरूपा गुह्यस्थानगता आधिपीडा यस्य सोऽनङ्ग-रूपाधिस्तथा स्वार्थे कप्रत्यय. ।

निर्दहति महति तेजसि भूमिपतेर्दारुणा × हितप्रान्तान् ।
अशनिशानिपितृप्रमुखान् स्फुलिंगानैमिव्रत्थाँस्तान् ॥३७
दुग्धीकृतेऽस्य मुग्धे यशसा निखिले जले मृषास्ति सता ।
पयसो द्विवाच्यतासौ हंसस्य च तद्विवेचकता ॥३८
रणरेणोर्धूसरितं क्षालितमरिदारदृग्जलेनेति ।
पद्युगमस्यान्यमुकुटमणिकिरणैश्चित्रतामेति ॥३९
गुणसंश्रवणावसरे विजृम्भणे नानुद्यचिनीं शस्तां ।
उचितं चक्र्रिलापतिमितरं जन्यानयन्तस्तां ॥४०
अंसोपरिस्थशिविकावंशैर्मितमिङ्गितं च धीरायाः ।
पुरतस्थभूपभूषामणिषु प्रतिमावतारायाः ॥४१
पुनरनुकाबिलराजं जनोकया तर्जनीकयात्र सती ।
देव्या तदावदाता जगदे जगदेकरूपवती ॥४२
अयिकाबिलराजोऽयं शस्यद्युतिमस्त्वमस्य पश्य वपुः ।
सृणिचूडामणिमेनं यथाभिधं कनिकुलानि पपुः ॥४३
द्विडकीर्तिः कालिन्दी सुरसरिदस्याथ कीर्तिरवदाता ।
सुभटास्तयोः प्रयागे सुखाशया सन्निमज्जन्ति ॥४४
कामशरैरनुविद्धान्सुगव्हरां पार्वती श्रितान् स च तान् ।
हिमनिर्मलगुण एकस्ततान तानप्रसिद्धगुणान् ॥४५
एतत्कीर्तेरग्रे तृणायितं चन्द्ररश्मिभिश्च यतः ।
जीवति किलैणशावोऽसावोजस्के तदङ्कगतः ॥४६

× भयङ्कराणां वैरिणां प्रान्तान्, दारुणा काष्ठेनाहिताः प्राप्ताश्च प्रान्तास्तान् ।

द्राक्षादिसाररसनाद्रसनाभिके सरसमेतत् ।
द्विगुणय च दशनवसनं निवसनमुपगम्य तद्देशे ॥४७
अस्यावलोक्य वदनं स्वपदाङ्गुष्ठाग्रदृक् सुजनचक्रे ।
त्रपयेव सम्भवन्ती द्रागाशयमाविरा चक्रे ॥४८
कस्य यमस्य कृते वरमविलक्षणदानवीरमिति स्मरात् ।
तत्यार्जनमिदानीमतिम्नरलदृगञ्चला बाला ॥४९
व्यसनादिव साधुजनो मतिमतिविशदार्तश्च तामङ्कुशः ।
अपकर्षति स्म शिबिकावाहकलोकश्चकोरदृशं ॥५०
अभिमुखयन्ती सुदृशं ततान सा भारतीं रतीन्द्रवरे ।
वसुधा सुधानिधाने मधुरां पदबन्धुरामपरे ॥५१
अङ्गाधिपतिः सोऽयं लावण्यासारसारपूर्णाङ्गः ।
यस्यावलोकने खलु मदनश्चानङ्ग एवाङ्गः (?) ॥५२॥
पततो नृपतीन् पदयोरुदतोलयदेव पाणियुग्मेन ।
तन्मौलिशोणमणिगणगुणितास्य करांघ्रिरुक्तेन ॥५३॥
मद्गजवमथुभिरुदिते तुषारवारेऽरिणोऽनुकम्पन्ते ।
म्लायन्ति तद्वधूनां मुखारविन्दानि जगदन्ते ॥५४॥
विनयभृदुन्नतवंशः सुलक्षणोऽसौ विलक्षणोक्तजनुः ।
बिलसति च न लसच्चास्यो लावण्याङ्कोऽपि मधुरतनुः ॥५५॥
एतन्नृपगुणवर्णनमास्वादयितुं हृदीव दृग्युगलं ।
बालान्यमीलदम्बुजमालाजयनामसम्पदलं ॥५६॥
चक्षुर्जगत्प्रदीपात्तश्च तामुदयिनीं सुवंशांसाः ।
भानोरिव सोमकलां कुमुद्वती कन्दसुकृतांशाः ॥५७॥

तद्दिशि संसक्तकरा नरान्तरं संशशंस मृदुवचसा ।
अपघनघटनातिशयैर्वागपि जितरतिपतिं किल सा ॥५८॥
सिन्धुपतिं धुरमेनं धीराणां बन्धुरं च सहजेन ।
सिन्धुमिवातिगभीरं बन्धुनिबन्धाधरे वीरं ॥५६॥
निपतन्ति रणे मुक्ताः मुक्तारिपुसम्पदः अमलवा वा ।
हरिगजकुंभेभ्यो यत् प्रतापतो हन्त भयभावात् ॥६०॥
लिखिता यशःप्रशस्तिर्विशालवक्षः शिलासुसंपश्य ।
निजनिजकराग्रटङ्कोट्टङ्कै ररियौवतैर्यस्य ॥६१॥
समरं विचिन्तयन्नाविरसादसौ कामिनीकुचं जगति ।
स्पृष्ट्वा कठिनकठोरं करतलकण्डूतिमुद्धरति ॥६२॥
इति विश्रुतगुणगणनागणनामविचारसारमग्नमनाः ।
चालयति चालयतिका शिरस्तिरः स्म अमाद्धि मनाक् ॥६३॥
बहुगुणरत्नात्तस्माद्देवा इव यानवाहकाश्च बलात् ।
पुरुषोत्तमयोग्यामपनिन्युः कमलामिवापमलां ॥६४॥
विस्मेरणा न च मनाक् नृपेषु सजपेषु रागिणी भुवि या ।
पुनरप्यभाणि तनयाऽनया नयान्निर्णयाय धिया ॥६५॥
अयमिह वंगाधिपतिर्गंगेव तरङ्गिणी यशः स्फूर्तिः ।
अवतरिता भुवि यस्याखण्डतयासंप्रसृतमूर्तिः ॥६६॥
तरल × तरीषविशिष्टोऽनुकर्णधाराशुगेन‡ सन्तरति ।
नरतिलकोरणजलधिं युक्तोऽरित्रेण* विशदमतिः ॥६७॥

× खड्ग: नौका च । ‡ बाणो वायुश्च । * परवारनिवारक: ढाल इति भाषायां, नौकाप्रवहणकाष्ठश्च ।

पाहीति न निगदन्तं दृष्ट्वाऽधरमात्मनोऽपि सरुजन्तं ।
राज्ञोऽस्य संपराये सन्तिष्ठन्ते प्रतीपाये ॥६८॥
युवतिस्तनेषु रंगे रणे च रिपुमस्तकेषु नरशस्यः ।
स्फीतिं भीतिं क्रमशः कुरुते +करवार एतस्य ॥६९॥
अधरं रसालरसिकः पीत्वा तव गुणविवेचनाकृषिकः ।
कुर्यात्कौतुकतस्तन्नामव्यत्ययमथो शस्तम् ॥७०॥
एतद्गुणानुवादादासादितसम्मदेव सा तनया ।
हसितवती तदवसरे तदवज्ञानैकहेतुतया ॥७१॥
गन्धाधिकृतावयवां सुमञ्जरीं वांघ्रिपाद्वनपजातः ।
नृवरेण स्पृहणीयां यान्यजनस्तां निनायातः ॥७२॥
पुनरवददेव तां साधिदेवतांऽसाग्रसारणेयंदोः ।
जयति रिपुततिन्तु झगिति विनिभालयमालयमकेन्दो ॥७३॥
जगतामनुरागततिस्तनावहो पीत + नाञ्चना लसति ।
अयमस्तिरति प्रतिमे काश्मीरपती रतीशमतिः ॥७४॥
असकौकलादवादः सुभागसामर्थ्यतोऽपि भागवति ।
निजतेजसाऽजसाची दुर्वर्णं वा सुवर्णयति ॥७५॥
यान्ति कृताञ्जलिभावं जीवनदं जीवदाभियाऽऽतङ्कात् ।
यद्घटितादयमर्हति स राजरुक्पूर्वरूपत्वं ॥७६॥
काश्मीरजनरभर्तुर्घनसारसमन्वयं समुद्धर्तुं ।
अपघनरुचोचिताया कथमत्र रुचिं सुदृक् साऽयात् ॥७७॥

+ हस्तसम्पातः खड्गश्च । + केशरविलेपनं ।

स्त्रीभावचालितपदां याचामिव निर्धनाञ्जनो धनिनं ।
सुदृशं निनाय शिबिका-धुर्यगणोऽतः परं गुणिनं ॥७८॥
भूयो बभाण बालां बालप्रमितोग्रदारकान्तिमसौ ।
तनये मन एतस्मिन् कुरु कुरु देशाधिपे नृपतौ ॥७९॥
पुरुषोत्तमस्य वाहनमस्य समालोक्य युक्तमिति लसति ।
भुवि दर्पमर्पयित्वा सुदूरमहितत्वमपसरति ॥८०॥
आजिषु यत्करवालैर्हयखुरक्षोदितासु सम्पतितं ।
वंशान्मुक्तावीजं पल्लवितोऽतो यशो द्रुरितः ॥८१॥
श्रेयान् गभीरहृत्वात्समुद्रवत् सज्जनक्रमकरत्वात् ।
लावण्यखचितदेहो न दीनतालम्बनस्तेऽहो ॥८२॥
श्रुत्वास्य समुद्दिष्टं खलु ताम्बूलावशिष्टमुच्छिष्टं ।
निष्ठीवति स्म सति कासारसविषमधुरदोर्लतिका ॥८३॥
तामपरं निन्युरतो विमानधुर्यास्तु नृपतिमभिरामां ।
मिथ्यात्वात् सम्यक्त्वं यथामतिं करणपरिणामाः ॥८४॥
एकैकमपूर्वगुणं हित्वा परमपरभवनिपं यान्ती ।
पुनरप्यमाणि बुद्ध्या सा यस्या अद्भुता कान्तिः ॥८५॥
त्वममुष्यापि सवर्णालमन्यया हे सुकेशि वर्णनया ।
कर्णाटाः साधूनां यस्य गुणा वर्णनीयतया ॥८६॥
तनुते तपतु मेतत् प्रतापतपनो द्विषत्स्थले सुभ्रमि ?
नयनोत्पलवारिजलैः प्रपां ददात्यरिवधूर्न तिनी ॥८७॥
न हि भवति भवति मदनः प्रवर्तमानेऽत्र कान्तिमत्जन्तुः ।
दृश्यतमोऽयं बाले कुसुमेषुरदृश्य इह किन्तु ॥८८॥

वाणीति सदानन्दा भद्रा कीर्तिश्च वीरता विजया ।
रिक्तार्थिका च लक्ष्मीः पूर्णा त्वं ज्योतिरीशस्य ॥८६॥
प्रचकार चकोराक्षीस्खलप्रवणपूरयोजनोद्भूतिं ।
तद्गुणश्रवणसम्भवदरुचितया कर्णकण्डूतिं ॥६०॥
शिवकावाहकलोकोऽपकर्षति स्माङ्गजां ततोऽप्यहितात् ।
मुनिजन इव संसारात् निजचेतोवृत्तिमिति सुहितां ॥६१
उद्दिश्यापरमूचे सदसोऽङ्क' सासुरी च कृतमुचेः ।
रसिकासि कामिकान्ते + किममुष्मिन् कान्तिभरतान्ते ॥६२
मालवरिष्टो मालवपतिरेषोऽमुष्य मञ्जुगुणवस्तु ।
मालतिकोपमिततनोपरत्र भो मालवोप्यस्तु ॥६३
न हतमेत्यपि समरी यावज्जनरञ्जनव्रती समरीन् ।
रक्तवतश्च विरक्तान् कृत्वा सत्वानुत च भक्तान् ॥६४
पश्यैतस्यैतादृक् रूपं शुचिरुचिरमग्रतो गण्यं ।
इतरस्य जनस्य पुनर्लावण्यं भवति लावण्यं ॥६५
कुन्ददती संसदि यद्वैरिमुखं भवति अपि कुमुदबन्धुः ।
शनकैः कुमर्पयित्वाऽमुष्याग्रे तदपि मुदबन्धुः ॥६६
विलसति *कर्कन्दुगणः किमिति न कुमुदाशयश्च × संकुचति ।
विनतो भवति †समुद्रो राज्ञि किलास्मिन् पुनलसति ॥६७
निभृते गुणैरगुण्यैरावन्धमिवापनैणादृक् च तथा ।
स्युर्दैवे विपरीते परुषाण्यपि पौरुषाणि वृथा ॥६८

+ रतितुल्ये । * बन्धुवर्गः कमलवृन्दं च ।
× वैरी कैरवदेशश्च । † सम्पत्तिशाली वारिधिश्च ।

ये ये तु समायाता अत्रैधराधीश्वराः परेऽप्यनया ।
सर्वेऽपि कीर्तितास्ते देवतया चतुरया तु रयात् ॥९९

सम्रुदयमायापि तु न कश्चिदेवं पार्थिवेषु तेषु पुनः ।
चपलात्मनो मनस्या मेघेश्वरवाञ्छया तस्याः ॥१००

तत्तद्विरागमुदितं शिबिकाधस्थानवाहिनो ददृशुः ।
अध्युषितनृपतिमलिनाननानुलिङ्गादतश्च कृषुः ॥१०१

अखिलानुल्लंघ्य जनान् सुलोचना जयकुमारमुपयाता ।
माकन्दधारकमिव पिकापि का सा मधौ ख्याता ॥१०२

सा देवी राजसुता चेतो यत्तदनुकूलकं लेभे ।
मेघेश्वरगुणमालां वर्णयितुं विस्तराद्रेमे ॥१०३

अवनौ ये ये वीरा नीराजनसामनन्ति ते सर्वे ।
यस्मै विक्रान्तोऽयं समुपैति च नाम तदखर्वे ॥१०४

सद्वंशसमुत्पन्नो गुणाधिकारेण भूरिशो नम्रः ।
चाप इवाश्रितरक्षक एष च परतक्षकः काम्रः ॥१०५

जलदासारनिपाते जातेऽपि च भूतले मुहुस्तरसा ।
तेजस्सारदमनुना प्लुष्टं दैवतमथास्य रसात् ॥१०६

धवलयति क्ष्मावलयं वृद्धद्वारास्य भोऽमृतपुरधरे ।
गुणगणनाङ्कनिपातः चणोति कठिनीं च कीर्तिमरेः ॥१०७

भुजगोऽस्य च करवीरो द्विषदसुपवनं निपीय पीनतया ।
दिशि दिशि मुञ्चति सुयशः कञ्चुकमिति हे सुकेशि रयात् ॥१०८

करवारवारिधारायमुनास्य+ ह्रादिनी यशःख्यातिः ।
वृद्धोदया प्रयागं सरस्वतीमं निबध्नाति ॥१०६
सुन्दर्यासक्तमनाः कोदण्डभृदेष विश्वसिद्धयशाः ।
अयमिव सहसामुष्य च शत्रुर्मुक्तादिवर्णवशात्× ॥११०
देशान्तरेऽस्ति कीर्तिः बहुवृद्धे मा गिरौ पुनर्महिला ।
नवयौवनात्वमुचिता निःशत्रोः शूरता शिथिला ॥१११
शोणोऽधरस्तु बाले सरस्वती तन्मयं मुखं चाथ ।
चित्रं जडतातिगतोऽसौ जातो वाहिनीनाथः ॥११२
वाजिनं भजति तु भजति मुञ्चति कोपं च मुञ्चति अरातिः ।
त्यजति क्षमां त्यजत्यपि वद्धे र्षोऽस्मिन् यथा ख्यातिः ११३
त्रिभुवनपतिकुसुमायुधसेनायाः स्वामिनी त्वमथ चेयान् ।
भरताधिपबलनेता तस्मात्ते स्याज्जयः श्रेयान् ॥११४
तव चैष चकोरदृशो दृश्योऽवश्यं च कौमुदाप्तिमयः ।
सोमाङ्गजो हि बाले सतां वतंसः कलानिलयः ॥११५
एतस्या खण्डमहो मयस्य बाले जयस्य बहुविभवः ।
बलमण्डो भुजदण्डो वसुधाया मानदण्ड इव ॥११६
सर्वत्र विग्रहे योऽनन्यसहायो व्यभात् स चेह रयात् ।
तव विग्रहेऽद्य मदनं सहायमिच्छत्यधीरतया ॥११७
यदि चेज्जयेषिणी त्वं दृक्शरविद्धं ततः शिथिलमेनं ।
अयि बालेऽस्मिन् काले स्रजावबन्धाविलम्बेन ॥११८

+गंगा। ×मौक्तिकादिवर्णतावान्, जय', सर्वेषु छन्दशब्देषु प्रथमस्वररहितश्च शत्रुः, यथा सुन्दर्यासक्तमना इत्यत्र दर्यासक्तमना इत्यादि।

मालां जयस्य निगले वदति क्षेप्तुं किल स्मरः स्मरर्त्ताम् ।
निषिषेधापत्रपता ह्रयोस्य साक्षाद्बुवाह समां ॥११९
हृद्गतमस्या दयितं न तु प्रयातुं शशाक तत्रापि ।
सम्यक्कृतस्तदानीं तयास्थि लज्जेति जनसाक्षी ॥१२०
भूयो विरराम करः प्रियोन्मुखस्सन् सगन्वितस्तस्याः ॥
प्रत्याययौ दृगन्तोऽप्यर्द्धपथाञ्चपलतालस्यात् ॥१२१
अभ्यर्च्यो भवति पुमानित्येव विशेषदर्शिनीं मनु मां ।
स्वीकृतवती स्थलेऽत्राप्युत्पलविजिगीषु मृदुनेत्रा ॥१२२
मोदकमिति तु जयमुखं सख्यास्यं स्वपकल्पितं तादृक् ।
रसितवती सामि पुनः क्षुधिते वसुलोचना यादृक् ॥१२३
इत्यत्र कुमुद्वत्याः कर इन्दीवरसुमालया स्फीतः ।
ननु संध्ययेव सख्या जयस्य मुखचन्द्रमनुनीतः ॥१२४
तस्योरसि कम्प्रकरा मालां बाला लिलेख नतवदना ।
आत्माङ्गीकरणाक्षरमालामिव निश्चलामधुना ॥१२५
सम्पुलकिताङ्गयष्टे रुद्गीवाणीव रेजिरे तानि ।
रोमाणि बालभावाद्वरश्रियं द्रष्टुमुत्कानि ॥१२६
वरमाल्यस्पृशि हस्ते जयस्य क्षिप्रं चकार सहृदयभूः ।
सूत्रमिव भाविकन्या-दानजलस्याविरेखदभूत् ॥१२७
हृदये जयस्य विमले प्रतिष्ठिता चानुविम्बिता माला ।
मग्नामग्नतयाभात् स्मरशरसन्ततिरिव विशाला ॥१२८
अभिनन्दिनि तदवसरे गगनं स्वगनन्दिगन्धनेऽनुसजत् ।
दुन्दुभिनिनादद‌म्भाज्जहास हा सत्वरं त्वरजः ॥१२९

जय इह सुलोचनाया एतदुदन्तं दिगङ्गना नेतुं ।
दुन्दुभिनादः सहसा समजायत समुदितो हेतुः ॥१३०
अखिलानां भूमिभुजां मुखश्रियः सोमसूनुमुखपद्मे ।
अनुकर्त्तुमिव च पद्मां सत्वरमधुना समाजग्मुः ॥१३१
प्रान्तपाति मधुलिड् मधुपानां स्वश्रियः खलु मुदश्रुनिभानां ।
वीक्ष्य मेलमनयोरिह शातमभ्रतस्तिरहो निपपात ॥१३२
अभ्याप सुस्नेहदशाविशिष्टं सुलोचना सोमकुलप्रदीपं ।
मुखे मुसत्तां सुतरां समाप सदञ्जनं चापरपार्थिवानां ॥१३३
नृव्रातोऽभिनवं मदं समचरत् धारान्तु बन्धावलिः,
पंचाश्चर्यपरंपरा समभवत्स्वर्लोकतः सद्रुचः।
पद्मावाप्तिसमाप्तमुच्चमणिभिः सम्पत्तिमर्थिष्वयं,
यच्छन्सन्नृप आप वस्त्रपगृहं रिष्टोरुचर्चो जयः (षडरं चक्रं) ॥१३४
(इति चक्राराणामग्राक्षरैः नृपपरिचय इति सर्गविषयनिर्देशः कृतो भवति)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमत्रियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
अब्येऽस्मिन्नरराजराजिभिरसौ शस्ते प्रणीतेऽमुना,
सर्गः श्रीजयभूमिपालचरिते षष्ठः समाप्तोऽधुना ॥१३५

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि—विरचिते जयोदय महाकाव्ये षष्ठः सर्गः



अथ सप्तमः सर्गः

अथ दुर्मर्षणः स्वस्य नाम कामं समर्थयन् ।
दौरात्म्यमात्मसात्कुर्वन्नाह द्रोहकरं वचः ॥१
पद्मया जयकण्ठेऽसौ मालाऽमलगुणालया ।
मुधा बुधा भ्रमन्त्यत्र प्रत्ययेपि* क्रियापदे ॥२
इदं करमिदं वेद्मि नैव किन्तु स्वयम्बरं ।
मालां किलाक्षिपद्बाला परानुज्ञानतत्परा ॥३
निजाहंकारतो व्याजोऽकम्पनेनायमूर्जितः ।
अहो मायाविनां माया मा यातु सुखतः स्फुटिं॥ ४
अङ्गजामीरयन्नेतन्नाम्ना प्रागेव धूर्तराट् ।
अद्यावमानं कृतवान् युगान्तस्थायिनन्तु नः ॥५
कुतोऽन्यथामुकस्यैवासाधारणतया गुणः ।
भूरिभूपालवर्गेऽपि वर्णितोऽस्ति विदाननात् ॥६
इत्येवं घोषयन्नुच्चैराव्हयन्नात्मदुर्विधिं ।
वचः फल्गु जजल्पेति प्राप्य चक्रितुजोऽग्रतः ॥७
चक्रवर्ति×सुतत्वेन मणि† काद्यभिमानतः ।
त्वया व्यवहर्तव्याद्य कीर्तिरेव= परं विभो ॥८

---

* प्रतिक्षिप्तेति यावत् ।
× सार्वभौमः कुम्भकारश्च । † रत्नं पातिली च ।
= यशः कर्दमं च ।

वृद्धिस्थाने गुणादेशात् सहस्रांशुककीर्तनं ।
सम्यगुल्कलितं राजन्नत्र कान्ततया + त्वया ॥६

त्वामर्ककीर्तिमुत्सृज्य सोमात्मजमुपाश्रिता ।
पद्मामिधाविधासौ तु सुधाहो प्रकृतेर्बुधा ॥१०
सौंदर्यसारसंसृष्टिं भूभूषां कन्यकामिमां ।
कः किलार्हति भूभागे त्वयि भूतिलके सति ॥११

ईदृशो भूरिशो भृत्यास्तव भो भारताङ्गभूः ।
यस्मै दत्त्वा यमाशंसी कन्यारत्नमकम्पनः ॥१२
कन्यासौ विदुषी धन्या गुणेक्षणविचक्षणा ।
कुलेन्दोच्छन्दसि च्छन्द उपेक्षां किन्तु नार्हति ॥१३

प्रत्येतुं नैनमेकोऽपि बभूव कपटं पट्टः ।
अहो धूर्तस्य धूर्तत्वं धूर्तवज्जगदश्निति ॥१४
अन्यथानुपपत्याहं गतवाँस्त्वदनुज्ञया ।
स्वातन्त्र्येण हि को रत्नं त्यक्त्वा काचं समेष्यति ॥१५

कम्पनोऽयं जराधीनो भजते दण्डनीयतां ।
अधुनाशु ततो भूमौ हे कुमार यमातिथिः ॥१६
कल्यां + समाकलय्योग्रामेनां भरतनन्दनः ।
रक्तनेत्रो जवादेव बभूव क्षीवतां गतः ॥१७

दहनस्य प्रयोगेण तस्येत्थं दारुणेङ्गितः ।
दग्धश्चक्रिसुतो व्यक्ता अङ्गारा हि ततो गिरः ॥१८

+ राजनामस्थाने रजक इति नाम स्वीकृतं । + मदिरां वारुणीं च ।

प्रत्यङ्मुखे सखे स्यन्दे रोषो मे प्राणिहोदितः ।
हन्तुं किन्तु सकं मन्तुं युक्तः स्यादिति सम्मतः ॥१९
अहो प्रत्येत्ययं मूढ आत्मनोऽकम्पनाभिधां ।
नावैति किन्तु मे कोपं भूभृतां कम्पकारणं ॥२०
गाढमुष्टिरयं खड्गः कवलोपसंहारकः ।
सम्प्रत्यर्थी × च भूभागे इयात्सत्वमितः कुतः ॥२१
राज्ञामाज्ञावशोऽवश्यं वैश्योऽयं भो पुनः स्वयं ।
नार्शं काशीप्रभोः कृत्वा कन्यां धन्यामिहानयेत् ॥२२
धारापातस्तु दूरेऽस्तु यन्मे सत्कन्धरात्मनः ।
तदेतद्राजहंसानां गर्जनं हि विसर्जनं ॥२३
निःसार इह संसारे सहसा मे सदर्चिषः ।
नाथ सोमाभिधे गोत्रे भवेतां भस्मसात्कृते ॥२४
तस्य मे पुरतस्तावत्स्थिते +षत्वेन वा जने ।
के खड्गं रेफसं* लब्ध्वा तर्षो भवतु जीवने ॥२५
वात्ययात्ययभून्मेघस्तं विजित्य जयोऽसकौ ।
मेघेश्वराभिधां लब्ध्वा गुरुणा गर्विंतां गतः ॥२६
अद्य युद्धस्थले धैर्यं दृश्यतेऽमुष्य तेजसः ।
मम वा यमवाक् सन्ध्याकारयाऽऽयुधधारया ॥२७
नार्थक्रियाकरो वीरपट्टो माणवसिंहवत् ।
गुरुणा कल्पितत्वेन युक्त एव पुनः सतां ॥२८

× सम्यक्प्रत्यर्थी वैरी, सम्प्रति अर्थीति च ।
+ गर्विष्ठत्वेन षकारत्वेन च । * भयकरं रकारं च ।

तुलाधिरोपितो यावदवमानाश्रयोऽपि सन् ।
जडोऽपि नावनौ तिष्ठेत् क पुनश्चेतनः पुमान् ॥२९

दीपस्तमोमये गेहे यावन्नोदेति भास्करः ।
स्नेहेन दीप्यतं। तावत्काँदशा स्यात् पुनः प्रगे ॥३०

सद्योपि कृतविद्योहमुद्योगेन जयश्रियं ।
मालां चोर्पैमि वाह्रां हि नीतिविद्योभिनन्दति ॥३१

अनवद्यमतिर्मन्त्री चित्तवित्त प्रबुद्धवान् ।
अत्रान्तरे ह्यपृष्ठोपि समिच्छन्स्वामिनो हितं ॥३२

सृष्टेः पितामहः स्रष्टा चक्रपाणिस्तु रक्षकः ।
संहर्तु मुद्यतः सद्यस्तामनां प्रथमाधिपः ॥३३

यासि सोमात्मजस्येष्टामर्ककीर्तिश्च शर्वरीं ।
हन्ताप्यनुचरस्य त्वं क्षत्रियाणां शिरोमणिः ॥३४

कुमाराद्य यमाराते जातु चिन्मात्र शंसयः ।
मुक्त्वा क्षमामिदानीन्तु जयं जयसि जित्वरीं ॥३५

सेवकस्य समुत्कर्षे कुतोऽनुत्कर्षता सतः ।
वसन्तस्य हि माहात्म्यं तरूणां कुसुमश्रियां ॥३६

राज्ञो राजश्रियाः श्रीमन् नाथ सोमाभिधे भुजे ।
अत्यये च तयोश्चासावकिञ्चिकरतां व्रजेत् ॥३७

प्रजायाः प्रत्युपायेऽस्मिन्नपायमुपपद्यते ।
भवादृशो प्रमादन्यः प्रत्ययः को निरत्ययः ॥३८

आत्मजः कोपवानत्र भरतस्य क्षमापतेः ।
समञ्चषि श्रीकुमार ! ‡दीपतुल्यकथां वृथा ॥३६
दरिद्रो वास्तु दीनो वा कुलीनः केवलं भवेत् ।
स्वयंवरसमायान्तु बालावाञ्छा बलीयसी ॥४०
चक्रं च कृत्रिमं चक्रे चक्रिणो दिग्जये जयं ।
जय एवायमित्यस्मात्तस्यापि स्नेहभाजनं ॥४१
पूज्यः पितुस्तवाप्येषोऽकम्पनः पुरुदेववत् ।
कृत्येऽस्मिँस्तु महानेवं गुरुद्रोहो भविष्यति ॥४२
लज्जाय जायते नैषा सती दारान्तरोत्थितिः ।
जयेतेऽप्यजयत्वेन त्वेनः कल्पान्तसंस्थितिः ॥४३
नानुमेने मनागेव तत्थ्यमित्थं †शुचेर्वचः ।
क्रूरश्चक्रिसुतो यद्वत् पयः पित्तज्वरातुरः ॥४४
आहूयमानः स्वावज्ञां ब्रुवन्कर्मानुगं मनः ।
प्रत्युवाच वचो व्यर्थमर्थशास्त्रज्ञतास्मयी ॥४५
क्षमायामस्तु विश्रामः श्रमणानान्तु भो गुण ।
सुराज्ञां राजते वंश्यः स्वयं माञ्चकमूर्धनि ॥४६
विनयो नयवत्येवातिनये तु गुरावपि ।
प्रमापणं जनः पश्येन्नीतिरेव गुरुः सतां ॥४७
स्वयंवरं वरं वर्त्म जाने नानेनमेग्रहः ।
किन्तु मन्तुमिदं प्राज्ञतया कारितवान् कुधीः ॥४८

‡ अञ्जनं । † मन्त्रिणः ।

साधारणधराधीशान् जित्वापि स जयः कुतः ।
द्विपेन्द्रो नु मृगेन्द्रस्य सुतेन तुलनामियात् ॥४६
नो सुलोचनयानोऽर्थो व्यर्थमेव न पौरुषं ।
द्व्यर्थभावविरोधार्थं कर्मशर्मवतां मतं ॥५०
श्रेयसे सेवकोत्कर्षः सदादर्शोऽस्तु नः पुनः ।
ईर्षा यत्र समाधिः सा सेव्यसेवकता कुतः ॥५१
हितेच्छुश्चेद्रणेच्छूनामग्रतो व्यग्रतोत्तरं ।
इत्येवं वाक्क्रमस्माकं साकं मा वद भावद ॥५२
मारकेशदशोविष्टोऽवमत्य श्रीमतामृतं ।
प्रत्युतोदग्रदोषोऽभूद् भुविना मरणाय सः ॥५३
यः कलग्रहसद्भावसंयुक्तोऽत्र समाहितः ।
योगवाहतयान्योऽपि बुधवत्क्रूरतां श्रितः ॥५४
प्राप्य कम्पनमकम्पनो हृदि संजगाम खलु मंत्रिसंसदि ।
विग्रहग्रहसमुत्थितव्यथः पान्थ उच्चलति किं कदा पथः ॥५५
प्रेषितश्चर इतोऽवतारणक्षणेऽर्कपदयोः सुधारणः (?) ।
मौलिशोणमणिभिः समन्तुविदश्रुकज्जलत आलिखद् भुवि ॥५६
नीरपूर इव संचरंश्चरच्छिद्रपूरणविचारतत्परः ।
प्राप भूभृदुपदेशतः पुनः सज्जवारिनिधिमित्यनुस्वनः ॥५७
कोपराध इह मङ्गलेऽभितः क्षम्यतामिति विमत्युपार्जितः ।
विश्वपालनपरो नरो यतस्त्वं कुमार जनमारणोद्यतः ॥५८
सद्दयप्रलयमानयञ्जनमद्य सद्य इव भो बृहन्मनः ।
देववादमुपशम्य तन्महादेवतामुपगतो भवानहा ॥५६

कः सदोष उपसंक्रमोऽत्र यच्चक्रवर्तिसुविमोदनोदयः।
संप्रसीद कुरु फुल्लतां यतः कम्पितास्तु स्वरदण्डमावतः ॥६०
दूतसंलपितमेवमेव तत्स्नेह उष्मकलिते अलं पतत् ।
तस्य चेतसि सुरोषखे जयत्तां चटत्कृतिमथोदपादयत् ॥६१
भारती परमसारतीरया शर्करेव तव तर्करेखया ।
चारतीर्थ (?) खलु कारतीरयाद् दर्शनेऽपि रसनेऽपि मेऽनया ॥६२
काशिकाधिकरणो महानितः सम्भवत्यपि समेत्यमानितः ।
साम्प्रतोर्मिरुचितैव हे चर त्वं पुनः परमुदासि किंकरः ॥६३
यत्यतेऽथ सदपत्यं ओजसा सार्पिताकमलमालिकाऽञ्जसा ।
मूर्च्छितास्तु न जयाननेन्दुनातावतार्ककरतः किलामुना ॥६४
साम्प्रतं सुखलताप्रयोजनात् पश्य यस्य तनुजा सुरोचना ।
त्वद्दशांवरदरंगतः प्रभु दूत रे वृषभ इत्यसावभूत् ॥६५
दुश्चिकित्स्यमवधारयन्बुधः साचिजल्पितमनल्पितक्रुधः ।
सामतः स तु विरामतः सदुत्साहपूर्वकमितः किलामृदु ॥६६
किन्तु भूरिबलतैव साधनमिष्यतेऽत्र विजयस्य सज्जन ।
स्वानुजेन भवतः पिता जितः केवलेन सरथाङ्गवानितः ॥६७
चेतसीति च गतो मदम्भवान्कच्चिदस्मि भटकोटिलम्यवान् ।
स्वानुजेन भवतः पिता जितः नैककेन किमु चक्रवानितः ॥६८
क्वचिदस्मि भटकोटिलंभवाँश्चेतसीति च गतो मदम्भवान् ।
नानुजेन भवतः पिता जितः केवलेन किमु चक्रमानितः ॥६९ पाठं
सेवकः स उदितो विभुर्भवान् किन्न वेत्ति समरेऽतिमानवान् ।
भीतिरेव च परीतिरेव वा तस्य ते च तुलना कुतोऽथवा ॥७०

अर्कतापरिणतावतर्कतासंयुतेन दधता यथार्थताम् ।
मेघमानित ऋतौ विनश्यता भातु तूलफलता त्वयोद्धृता ॥७१
शम्पया स च बलाहकस्तया युक्त एव भविता प्रशस्तया ।
हेतवार्कपरिहारहेतव इत्युदीर्य स विनिर्गतोऽभवत् ॥७२
प्रत्युपेत्य निजगौ वचोहरः प्रेरितैणपतिवद्धयङ्करः ।
दुर्निवार इति नैति नो गिरश्चक्रवर्तितनयो महीश्वर ॥७३
भूरिशोऽपि मम संप्रसारिभिरौर्ववन्नृप समुद्रवारिभिः ।
किं वदानि वचनैः स भारत भूपभूर्न खलु शान्ततां गतः ॥७४
अर्क एव तममावृतोऽधुना दर्शयन्न इह हेतुनाऽमुना ।
एत्यहो ग्रहणतां श्रियः प्रिय इत्यभूदपि शुचा सविक्रयः ॥७५
सम्वहन्नपि गभीरमाशयमित्यनेन विषमेन सज्जयः ।
केन वा प्रलयजेन सिन्धुवत्क्षोभमाप निलयाऽथ यो भुवः ॥७६
पन्नगोऽयमिह पन्नगोऽन्तरे इत्यवाप्तवहुविस्मयाः परे ।
सन्तु किन्तु सपतत्पतेरलमास्य उत्पलमृणालपेशलः ॥७७
हृच्छुचन्तु महनीय नीयते ऋक् सुधा किमिति नात्र पीयते ।
न्यायिनां यदनपायिनां प्रभुः सर्वतोऽपि भवितैव शर्मभूः ॥७८
किं फलं विमलशील शोचनाद्रच्चसाक्षिकतया सुलोचनाम् ।
तं बलीमुखबलं बलैरलं पाशबद्धमधुनेक्षतां खलं ॥७९
नीतिरेव हि बलाद्बलीयसी विक्रमोऽध्वनि मुखस्य को वशिन् ।
केशरी करियरीति कृद्रयाद्धन्यते स शवरेण हेलया ॥८०
नीतिमीतिमनयो नयत्ययं दुर्मतिः समुपकर्षति स्वयं ।
उल्मुकं शिशुवदात्मनोऽशुभं योऽन्हि वाञ्छति हि वस्तुतस्तु भं ॥८१

ज्ञातवानहमिहेतदर्थकं प्राग्धि सामकरणं निरर्थकं।
प्रस्तरेऽशनि धनोचितेऽशकिन् टङ्क एव गरराट् क्रमेत किं ॥८२
स्थीयतां भवत एव पद्मया यो जितो भवतु सद्विषन्नमया (?)।
श्रस्मि संप्रसितमां पुरोहितः संप्रणीत पृथुतेजसाञ्चितः ॥८३
संप्रयुक्तमृदुसूक्तमुक्तया पद्मयेव कुरु भूमिभुक्तया।
संवृतः श्रमभुषा रुषा रयान्धचुषि प्रकटितानुरागया ॥८४
सोमसूनुरुचितां धनुर्लतां यः पुनः प्रवर इष्यते सतां।
श्रीकरे च करबाणभूषितां शुद्धवंशजनितां गुणान्वितां ॥८५
तस्य शुद्धतरवारिसञ्चरे शौर्यसुन्दरसरोवरेतरेः।
ईक्षितुं श्रियमुदस्फुरद्भुजा शौचवर्त्मनि गुणेन नीरुजा ॥८६
राजमाष इव चारघट्टतः भेदमाप कटकोऽपि पट्टतः।
यस्ततस्तुदररूपधारकः सम्भवन्निह स सूपकारकः ॥८७
सोमजोज्ज्वलगुणोदयान्वयाः सम्भ्रमुः सपदि कौ मुदाश्रयाः।
येऽर्कतैजसवशंगताः परे भूतरे कमलतां प्रपेदिरे ॥८८
तत्र हेमसहिताङ्गदाहिमिः स्वैः सहस्रतनयैः सुराडमी।
निर्जगाम सुतरामकम्पनस्तत्सहायमरिवर्गकम्पनः ॥८९
श्रीधरार्यमसुहृत्सुकेतुकादेवकीर्तिजयवर्मकावकात्।
दूरगानयरयोरथसम्मदास्सद्बलेन जयमन्वयुस्तदा ॥९०
किञ्च मेघसहितप्रभोऽग्रणीखेचरः कतिपयैः खगाग्रणी।
मेघनाथकतयेव तं ययौ सम्बले स्वयमिहोच्चलद् ययौ ॥९१
सम्विदम्बर इहात्मिभिः किणधारिणः किल पुनीतपक्षिणः।
स्वैरमाविहरतोऽस्य दक्षतां शिक्षितुं स्वयमपूरियक्षता ॥९२

नाथवंशिन इवेन्दुवंशिनः ये कुतोऽपि परमपक्षशंसिनः ।
तैरपीह परवाहिनीधुताकृष्टकाल उदिता हि बन्धुता ॥९३
भूरिशः स्खलितदुर्हृदायुधा अस्ति नीतिरियमित्यमी बुधाः ।
मेरुवत्स्थिरतरास्तनुर्निजावर्मयन्ति च वरं स्म बाहुजाः ॥९४
स्वीयबाहुबलगर्विता भुजास्फोटनेन परिनर्तितस्वजाः ।
सम्बभूवुरधिपाः सदोजसः बद्धसन्नहनकाः किलैकशः ॥९५
सम्मदाद्व्रणपरैर्हि निर्घृणैः प्रस्फुरद्विगतसंगव्रणैः (?) ।
सुष्ठु शौर्यरससम्मितैस्तदा रेजिरे परिधृताउरश्छदाः ॥९६
हृदाप्यदङ्गमनुषङ्गतोऽङ्गना वीक्ष्य सन्नहनरोधिसन्मनाः ।
कस्य चित्खलु मनोभवोद्भवदङ्करैर्द्रुतमितस्तिरोऽभवत् ॥९७
रेजिरे रदनखण्डितौष्ठया हस्तपातकलितोरुकोष्ठया ।
निर्गलत्सघनधर्मतो यया तेऽश्चिताः खलु रुषा सरागया ॥९८
निर्गमेऽस्य पटहस्य निःस्वनः व्यावशे नभसि सत्वरं घनः ।
येन भूभृदुभयस्य भीमयः कम्पमाप खलु सत्वसञ्चयः ॥९९
सत्तरङ्गमतुरङ्गमञ्जुला निर्मलध्वजनिफेन वञ्जुलाः ।
मत्तवारणमदप्रवाहिनी निर्ययौ जयनृपस्य वाहिनी ॥१००
अश्रुनीरमधुना सकज्जलमादधौ रिपुवधूपयोधरः ।
दिक्कुलं खलु रजोऽन्वितं तदुत्पातमस्य गमनेऽरयो विदुः ॥१०१
स्यन्दनैस्तु यदकृष्यतात्र भू वाजिराजशफटङ्कणाप्यभूत् ।
दानवारिभिरपूर्यतासकृत् मत्तहस्तिभिरमुष्य हेर्थकृत् ॥१०२
स्वर्णदीपयसि पङ्कृपतश्चन्द्रमस्यपि कलङ्करूपतः ।
गीयते मदमितीन्द्रसद्गजमस्तके जयबलोद्धतं रजः ॥१०३

वस्तुतस्तु जडतापकारिणिसैन्ययानजनितातिप्रसारिणी ।
धूलिरपि खलु धूमतां दृशि व्याप्तकाष्ठमुदितेऽस्य तेजसि ॥१०४
कवचं समुवाह तावतापयशः संघटितोपदेहवत् ।
परिवार इतोऽर्ककीर्तिकः समलिश्यामलमायसोचितं ॥१०५
अपि मन्दमुखेन धारितः नृवराज्ञावशवर्तिनाशितः ।
कवचो नवचन्द्रमण्डलं विगलन्नाहुरिवावलोकितः ॥१०६
अपरः परिमोहिणा कथं कथमप्यत्र चिरादुपाहृतम् ।
भृतिकेन भटोरुषाऽपिषत् कवचं हस्ततलद्वयेन तत् ॥१०७
प्रियनर्मभृतो हटात् हृतो वनितायाः करतोवरामिराट् ।
वलयं प्रलयं नयन्नयं शुचमुत्पादयति स्म घट्टितः ॥१०८
जगराग्रनिषङ्गनेन वा सहसा त्रुट्यदुदारहारकम् ।
अवलोक्य शुशोच कामिनस्तनुसम्बर्मयनत्वणोऽङ्गना ॥१०९
बलसंबलसंग्रहं मयोऽनयदेवं जयदेव विद्विषः ।
द्रुतमुत्पतनं स्वपृष्ठगं पटहादुद्विजितोऽतिभैरवात् ॥११०
संमूर्च्छितां हयशफा हतिभिर्भवन्ती,—
मुर्वीं दिशो ध्वजपटैरुत वीजयन्ति ।
इत्यश्विनीसुतसमानयनाय नाम,
धूलिर्जगाम सहसैव सुधाशिधाम ॥१११
अनुकूलमरुत्प्रसारितैरुपहूताः किल केतनाञ्चलैः ।
अतिवेगत उद्यदायुधा अभिभूपानरयः प्रपेदिरे ॥११२
परकीयबलं प्रतिप्रभोः कटको निष्कपटस्य विद्विषन् ।
अधिकत्वरयातिसाहसी गतवानोतुरिवाभिमूषकं ॥११३

मदान्धो गौरवाढ्यः सम्पर्कस्तस्थौ ततोऽमुतः ।
लाघवेन स्फुरत्तेजा हरिवत्करिपूष्यतिः ॥११४

सम्राजस्तुक् खलु चक्राभं बलवासं,
मकराकारं रचयन् श्रीमद्मुमाधीट् च ।
रणभूमावभ्रे च खगस्तार्क्ष्यप्रायं,
यत्नं संग्रामकरं स्मांसति च प्रायः ॥११५

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
स्वाङ्मिथ्याभिनिवेशिनां विवरणप्रोद्धारणे हृत्तमः,
सर्च्छेदिन्ययमेति सर्ग उदिते षिष्ठोऽधुना सप्तमः ॥११६

इति श्री वाणीभूषण—ब्रह्मचारि—भूरामल-शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये सप्तम सर्ग. ।



अथ अष्टमः सर्गः

चमूसमूहावथ मूर्तिमन्तौ परापराब्धी हि पुरः स्फुरन्तौ
निलेतुमत्र समीहमानौ सञ्जग्मतुर्गर्जनया प्रधानौ ॥१

साध्ये किलालस्य कलां निहन्तुं निशम्य सेनापतिशासनन्तु ।
अताडयत्तत्पटहं विपश्चित्कृतागसश्चित्तमिवाशु कश्चित् ॥२

यूनोरमूनोरपि तावताशु बभूव सा तुल्यतयैव काष्ठ ।
करे नरस्याप्यधरे परस्यासौ केवलं तत्र भिदानि दृश्या ॥३

दूरात्समुत्क्षिप्तभुजध्वजानां रेजुः पताका इव पद्गतानां ।
क्रुधायुधर्थं सरतां रणे खात् तिर्यग्गता या ततयासि लेखा ॥४

य एकचक्रस्य सुतोऽत्र वक्रः स्यान्नश्चतुश्चक्रतयैव शक्र ।
जयो जयस्येति समुन्नताङ्काश्चीच्चक्रुरित्यत्र जवाच्छताङ्काः ॥५

नमोऽत्र भो त्रस्तमुदीरणाभिर्भवद्भटानामतिदारुणाभिः ।
सुभैरवैः सैन्यरवैः करालवाचालवक्त्रैरिव पूत्रकाल ॥६

आयोधनं धीरबुधाधिवासं विभीषणं चेति भयातुराशः ।
रजोऽन्धकारे जलजाधिनाथश्छन्नो न किं गोपतिरेष चाथ ॥७

उद्धूतसद्धूलिघनान्धकारे शम्पा सकम्पा स्म लसत्युदारे ।
रणाङ्गणे पाणिकृपाणमाला चुकूजुरेवन्तु शिखण्डिवालाः ॥८

रविं च विच्छाद्य रजोऽन्धकारः नभस्यभूत्प्राप्ततमाधिकारः ।
युद्धयत्प्रवीरक्षतजप्रचारः सायं श्रियस्तत्र बभूव सारः ॥९

सवेगमाक्रान्ततमाश्च वीरैर्निषेधिकामाहुरिवाथ धीरैः ।
भेरीप्रतिध्वानविधानजन्यां रजस्वलाः सम्प्रति दक्षकन्याः ॥१०

समुद्ययौ संगजगं गजस्थः पत्तिः पदातिं रथिनं रथस्थः ।
अश्वस्थितोऽश्वाधिगतं समिद्धं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धं ॥११

द्वयोः पुनश्चाहतिमुज्जगाद प्रवत्तयोरायुधसन्निनादः ।
प्रोल्लासयन्सङ्गमरुप्रसिद्ध-सूत्राङ्कवद्वीरनटान्समिद्धः ॥ ॥१२

अप्यत्स्फुटित्वोल्लसनेन वर्मनाज्ञातमज्ञातरणेत्थशर्म ।
प्रयुद्धयता केनचिदादरेण रोमाञ्चितायां च तनौ नरेण ॥१३
नियोधिनां दर्पभृदर्पणालैर्यद्व्युत्थितं व्योम्नि रजोंघ्रिचालैः ।
सुधाकशिम्बे खलु चन्दबिम्बे गत्वा द्विरुक्ताङ्कतयाललम्बे ॥१४
एके तु खड्गाद्रणसिद्धिशिङ्गा परे स्म शूलॉस्तु गदाः समूलाः ।
केचिच्च शक्तीर्निजनाथभक्तियुक्ता जयन्ती प्रतिनर्तयन्ति ॥१५
सदश्वराजा शफसन्निपातैः फणामणिप्रोतधरोऽधुना तैः ।
फणीश्वरस्त्यक्तमनीश्वरोऽस्ति किमत्र सुश्रान्तशिरः प्रशस्तिः ।१६
युद्धातिचार त्वरमाणसादिवरैरधीता द्विरदास्तदादि ।
प्रवभ्रमुः स्वैरितयोज्झितैलाः कल्पान्तवातैरिव गण्डशैलाः ॥१७
जंघामथाक्रम्य पदेन दार्नधरस्तदन्यां तरसाऽऽददानः ।
विदारयामास करेण पत्तिं सुदारुणो दारुवदेव दन्तीं॥१८
उत्क्षिप्य वेगेन तु तं जघन्यद्विपं रदाभ्यामपि दन्तुरोन्यः ।
भृङ्गाग्रलग्नाम्बुधरस्य शोभां गिरेर्दधानः खलु तेन सोऽभात् ॥१६
शिलीमुखश्यामगुणैरगण्यैः शिलीमुखैर्विद्धतमोऽग्रगण्यैः ।
व्यलोकि लोकैः समरे स धन्यः प्रहृष्टरोमेव मतङ्गजोऽन्यः ॥२०
इतोऽयमर्कः स च सौम्य एष शुक्रः समन्ताद्ध्वजवस्त्रवेशः ।
रक्तः स्म कौ जायत आयतस्तु गुरुर्भटानां विरवः समस्तु ॥२१

केतुः कबन्धोच्चलनैकहेतुस्समो मृतानां मुखमण्डले तु ।
सोमो वरासिप्रसरः स ताभिः शनैश्चरोऽभूत्कटको घटाभिः ॥२२
मितिर्यतः पञ्चदशत्वमाख्यमत्रलोकोऽपि नवम्रिकाख्यः ।
कच्चित्परागो ग्रहणं च कुत्र खगोलतामूत् समरे तु तत्र ॥२३
मतङ्गजानां गुरुगर्जितेन जातं ग्रहष्यद्धृयहेषितेन ।
अथो रथानामपि चीत्कृतेन छन्नः प्रणादः पटहस्य केन ॥२४
वीरश्रियं तावदितो वरीतुं भर्तुर्व्यपायादथवा तरीतुं ।
भटाग्रणी प्रागपि चन्द्रहासयष्टिं गलालङ्कृतिमाप्तवान् सः॥२५
निपातयामास भटं धरायामेकः पुनः साहसितामथायात् ।
स तं गृहीत्वा पदयोश्च जोषं प्रोच्चिक्षवान्वायुपथे सरोषं ॥२६
दृढप्रहारः प्रतिपद्य मूर्च्छामिभस्य हस्ताम्बुकणा अतुच्छाः ।
जगर्ज कश्चित्स्वनुबद्धवैरः सिक्तः समुत्थाय तकैः सखैरः ॥२७
निम्नानि गंधर्वशफैः कृतानि यत्राथ कौसुम्भकभाजनानि ।
भृतानि रक्तैर्यमराग्निशान्तसम्ध्यानरागार्थमिव स्म भान्ति ॥२८
इतस्ततो वातविधूतकेतुवान्तांशुकैर्व्याप्ततमेऽम्बरे तु ।
संज्ञातमे तच्च विभिन्नमस्तु रवैर्भटानामिह भैरवैस्तु ॥२९
पराजितो भूवलये पपात परो नरो मर्मणि लब्धघातः ।
आच्छादये तावदुपेत्य वक्त्रं ह्रीसम्भवश्चिध्वजवस्त्रमत्र ॥३०
वक्षःस्थलेभ्यो मृदुहारचारा भिन्नेभ्य आरात्पतिता विचारात् ।
सरक्तवान्ता दशना इवाभूः परेतराजोऽथ यकैस्तताभूः ॥३१
पुरो गतस्य द्विषतो वरस्य चिच्छेद यावत्तु शिरो नरस्य ।
कश्चित्तदानीं जिनपश्चिमेन विलूनमूर्धा निपपात तेन ॥३२

धर्मेण सम्यग्गुणसंयुतेन समीरितावाणततिस्तु तेन ।
विशुद्धिवत्नीतवती भटेशान् निर्वाणमेषा हृदि सन्निवेशा ॥३३
स्रगावली रागनिवाहिनीहाथस्पर्शमात्रेण नृणां मदीहा ।
हृदि प्रविष्टा गणिकेव दिष्टान्यमीलयन्नेत्रनिकोणमिष्टा ॥३४
विलूनिमन्यस्य शिरः सुजोषं पतत्किलोत्पत्य ततोऽधिपौषं ।
वक्रोडुपे किंपुरुषाङ्गनाभिः क्लृप्ता भवित्री भुवि राहुणाभीः ॥३५
वज्रं त्वजस्रं प्रतिपातिजिष्णोः शैलानुकर्तुः करिणः सहिष्णोः।
मुक्ता निकम्भान्निरगुर्विशेषादरिश्रियः साम्प्रतमश्रुलेशाः ॥३६
लोलाञ्चलास्रक्समितासियष्टिर्यमस्य जिह्वा द्विषते प्रणष्टिः ।
बभूव वीरस्य हृदुन्नयन्ती सौभाग्यसाम्राज्यसुवैजयन्ती ॥३७
अप्राणकैः प्राणभृतां प्रतीकैरमानि आजिप्रततासतीकैः ।
अमीष्टसम्वारवतीविशालासौ विश्वसृष्टुः खलु शिल्पशाला ॥३८
प्रणष्टदण्डानि शितातपत्रच्छत्राणि रेजुः पतितानि तत्र ।
सम्भोजना योजनभाजनानि परेतराजा विनियोजितानि ॥३९
चराश्च पूत्कारपराः शवानां प्राणा इवाभूः परितः प्रतानाः ।
पित्सन्सपक्षाः पिशिताशनायायान्तस्तदानीं समरोवरायां ॥४०
मृताङ्गनानेत्रपय.प्रवाहो मदाम्भसा वा करिणामथाहो ।
प्रवर्ततेऽदस्तु ममानुमानमुद्गीयतेऽसौ यमुनाभिधानः ॥४१
रणश्रियः केलिसरः सवर्णोकरीशकर्णात्ततया सपर्णा ।
वक्रैर्भटानां कमलावकीर्णा श्रीकुन्तलैः शैवलसावतीर्णा ॥४२
अजस्रमाजिस्त्वसृजा प्रपूर्णा किलोल्लसत्कुङ्कुमवारिपूर्णा ।
यशःसमारब्धपरागचूर्णा स्म राजते सा समुदङ्गघूर्णा ॥४३ युग्मं

दृष्ट्वा स्वसेनामरिवर्गजेनाऽऽयुधक्रमेणास्तमितामनेनाः ।
रोद्धुं च योद्धुं जय ओजसोभूः श्रीवज्रकाण्डाख्यधनुर्धरोऽभूत् ॥४४
विद्याधरेषु प्रतिपत्तिमाप सुवंशजः सद्गुणवान् सचापः ।
शरास्ततोधीतिपरा भवन्ति स्वर्लोकमेवर्जु तया व्रजन्ति ॥४५
विद्याधृतां कम्पवतां हृदन्तः किरीटकोटेर्मणयः पतन्तः ।
देवैर्द्विरुक्ता रभसात्समन्तयशोनिषेवैर्जयमाश्रयन्तः ॥४६
जयेच्छुरादूषितवान्विपक्षं प्रमापणैकप्रवणैः सदक्षः ।
हेतावुपात्तप्रतिपत्तिरत्र शस्त्रैश्च शास्त्रैरपि सोमपुत्रः ॥४७
यदाशुगस्थानमितः स धीरः प्राणप्रणेता जयदेव वीरः ।
अरातिवर्गस्तृणतां बभार तदाथ काष्ठाधिगतप्रकारः ॥४८
सोमाङ्गजग्रामवमुद्विजेतुं सपीतयोऽर्कस्य तदाऽऽनिपेतुः ।
स एष सूर्येन्दुसमागमोऽपि चिन्त्यः कुतः कस्य यशो व्यलोपि ॥४९
द्वयं स नामानमयं जयश्चारुह्य प्रतिद्वन्द्वितयात्र पश्चात् ।
आदिष्टवानेव नियोद्धुमश्वारोहान्निजीयानरमिष्टदृश्वा ॥५०
प्रवतमानन्तु निरन्तरायं निरीक्ष्य सोमोदयकारि सायं ।
अच्छायमर्कोदधदेव कायं छन्नीभवत्त्वं गतवाँस्तदायं ॥५१
धनुर्लताया गुणिनस्तु खिन्नः सुलोचकाग्र्यैकशरेण भिन्नः ।
अपत्रपः सन्नपरस्तु वीरसम्भोगमन्तः स्मृतवानधीरः ॥५२
तेजोनिधौ सोमसुते प्रतीपा वर्द्धिष्णुके मृत्युमुखे समीपात् ।
अशक्नुवन्तो युगपत्पतङ्गा इवानिपेतुर्दहनेऽनुषङ्गात् ॥५३
परं रणारम्भपरा न यावद् बभुश्च काशीशसुता यथावत् ।
निष्कण्टकमागत्यतरामितोऽघं हेमाङ्गदाद्या बवृषुः शरौघं ॥५४

संस्थापनार्थं प्रवरस्य यावत्प्रपत्पतिप्रासनमुद्दधार ।
प्रत्यर्थिनोलङ्करणाय कण्ठे तस्यार्पयामास शरं सचारं ॥५५
पाणौ कृपाणोऽस्य तु क्लेशपाश आसीत्प्रशस्यो विजयश्रियाः सः ।
भुजङ्गतो भीषण एतदीयद्विषद्हृदो वा कुटिलोऽद्वितीयः ॥५६
लब्ध्वामुना शास्त्रपथामथाङ्कं विभूषयन्वा कृपणो नृणाङ्कं ।
दिगम्बरेषु स्वमपास्य कोषं मध्यस्थमाकारमगाददोषं ॥५७
भिन्नारिसन्नाहकुलात्स्फुलिंगानसिप्रहारैरुदितान्कलिङ्गाः ।
स्फुरत्प्रतापाग्निकणान्विवाहुर्जयस्य यः सम्प्रबलत्सुबाहुः ॥५८
यशस्तरोरङ्कुरका समन्ताद् बभुः स्फुटन्तोऽरिकरीन्द्रदन्ताः ।
रक्तैर्निषक्तेचरथांगकष्टे रणाङ्गणेऽस्मिन्नपि जिष्णुसृष्टेः ॥५९
बभूव भूयोप्यबलाधिकारी परम्परा वृद्धिमयस्तथारिः ।
एवं स जातः कमलानुसारी जयस्तदानीमपि हर्षधारी ॥६०
अप्रेक्षमाणः प्रहतं स्वसैन्यमन्तर्गतं किञ्चिदवाप्य दैन्यं ।
तमःसमूहेन निरुक्तमूर्तिमिभं तदाङ्गीचकरार्ककीर्तिः ॥६१
द्विपं द्विपत्रायतघण्टिकाभिः सुघोषमुत्तोषवतां सनाभिः ।
बलादलंकृत्य बभूव भूपः जयः प्रतिस्पर्द्धिनयस्वरूपः ॥६२
बकाः पताकाः करिणोऽम्बुवाहाः शरा मयूरास्तडितोऽसिका हा ।
दक्कानिनादस्तनितानुवादः सुधीरणं वर्षणमुज्जगाद ॥६३
जयश्रियं श्रीधरपुत्रिकाया विधातुमानन्दपरः सपत्नीं ।
जयोऽभवच्चक्रिसुतेऽथ सद्यो गजं निजं प्रेरयितुं प्रयत्नीः ॥६४
हिमे तमश्छेत्तुमिवोद्यतस्य रवेस्तुषारा इव ते जयस्य ।
आक्रामत(संगच्छत)श्चक्रपतेस्तुजं द्रागग्रे निपेतुः पुनरष्टचन्द्राः॥६५

मिथोऽपि सम्मेलनकं समूर्जमस्मै जनो वाजिनमुत्ससर्ज ।
अहो पुनः प्रत्युपकर्तुमेव मुदा ददौ वारणमेष देवः ॥६६
सुवर्णरेखाङ्कितमेव वाणं ततो जये मुञ्चति सप्रमाणं ।
मध्ये शरं रीतिधरं विसर्ग्यस्तत्याज मत्याजवनोऽरिवर्ग्यः ॥६७
शुण्डावता तस्य सता हता वा नवद्विपास्ते चपलस्वभावाः ।
यथाकथंचित्पदकाश्रयेण नयाः परेषां जिनवाग्भयेन ॥६८
कारांप्रकारायितमारुरोहा न संपुनश्चक्रपतेः सुतोहा ।
स्वयं सखीकृत्य तथाष्टचन्द्रान्प्रस्पष्टतन्द्रान्युधिकष्टचन्द्रान् ॥६९
उरीचकाराध्वकलङ्कलोपि अरिंजयं नाम रथं जयोऽपि ।
खरोध्वना गच्छति येन सूर्यस्तेनैव सोमोऽपि सुधौघधूर्यः ॥७०
तेजोप्यपूर्वं समवाप दीप इव क्षणेऽन्तेऽत्र जयप्रतीपः ।
निस्नेहतामात्मनि सम्ब्रुवाणस्तथापदे संकलितप्रयाणः ॥७१
उत्तेजयामास स वा समस्तविद्याधृतामीशमितो वचस्तः ।
तवालसत्वं स्विदनन्यभासः क्षमेनमेहोसु न मेऽवकाशः ॥७२
जयाज्ञयाक्रम्य तदैव मेघप्रभेण विद्याधिपतिं न येऽघः ।
प्रवर्तमानस्सहसामृणारिवरेण मत्तभमिव न्यवारि ॥७३
समुत्स्फुरद्विक्रमयोरखण्ड-वृत्या तथाश्चर्यकरः प्रचण्डः ।
रणोऽनणीयाननयोरभाद् वै स दीव्यशस्त्रप्रतिशस्त्रभावैः ॥७४
तौ पृष्ठतो द्रष्टुमशक्नुवानौ जयानुजानन्तपदाग्रसेनौ ।
परस्परं सिंहसुतौ नियोद्धुं उग्रं रमाते स्म यशः प्रबोद्धुं ॥७५
हेमाङ्गदः किञ्च वली भुजेन परस्परं वज्रजतुस्तु तेन ।
उभाविभेन्द्राविव वाहुमूलबलेन नद्धौ समरं सतूलं ॥७६

परेण विद्यावलयोः स्वपक्षमभूज्जयः सन्तु लयन्विलक्षः ।
स्थानं चकम्पेऽह्रिचरस्य तावद् भव्यस्य दैवं लभते प्रभावः ॥७७
सुरः समागत्य तमांसभद्रं स नागपाशं शरमर्द्धचन्द्रं ।
ददौ यतश्चावसरेऽङ्कवत्ता निगद्यते सा सहकारिसत्ता ॥७८
शरोऽपि नाम्नावसरोऽथ जीत्या बभूव भूत्या प्रसरः प्रतीत्या ।
मन्दादिकेभ्यः सुविधाविधानः कुतो ग्रहत्वेऽपि रविः समानः ॥७६
आसीत्तदेतद्बलिसम्प्रयोगेऽपि स्फीतिमाप्तो ग्रहणानुयोगे ।
जयश्रियो देवतया प्रणीतहेतिप्रसङ्गोऽथ जयस्य हीतः ॥८०
सन्धानकाले तु शरस्य तस्य स्वीचक्र एव स्वहृदा स वश्यः ।
जयेति वाचा कथितं च देवैर्जगुस्तदेव क्रियया परे वै ॥८१
रथसादथसारसाचिरव्यपतिना सम्प्रति नागपाशबद्धः ।
शुशुभेऽप्यशुभेन चक्रितुक्तत्तमसासन्तमसारिरेव भुक्तः ॥८२
विषयादेव जयोऽस्मात्प्रससादन जातु विजयतो यस्मात् ।
स्वास्थ्यं लभतां चित्तं ह्यादायायोग्यमिह च किमु वित्तम् ॥८३
अर्कस्तूदर्कचिच्चिन्तो जयश्च विजयान्वितः ।
जनोऽभिजनसम्प्राप्तो वर्द्धमानाभिधानतः ॥८४
अश्वसन्तन्तुसंस्कृत्य निःश्वसन्तमुपाचरत् ।
आगत्य सोमसत्पुत्रश्चकारानाथमात्मसात् ॥८५
नीतिं नीतिविदो विदुः कुरुपतेः स्फीतिं तु शूरा नराः,
वीतिं गोचरवेदिनः सुसमये भाग्यप्रतीतिं प्रजाः ।
नानारीतिरभूत्तमां मतिरिति श्रीजीतिहेतः पुन,–
रर्हत्सद्गुणगीतिरेव सुदृशा क्लृप्ता प्रतीतिस्तु मे ॥८६

ईशं संगरसञ्चिताघहतये सम्यक्समर्च्यादरात्,
पुत्रीं प्रेषितवान् पुनर्मृदुदृशा काशीविशामीश्वरः ।
आहारेण विना विनायकपदप्रान्तस्थितां भक्तितो,
जल्पन्तीमपराजितं हृदि मुदा मन्त्रं मृघान्तार्थतः ॥८७
वीराणां वरदेव एव वरदे नेता विजेताऽभवत्,
श्री अर्हच्चरणारविन्दकृपयाभीष्टेन जातं तव ।
मौनं मुञ्च मनीषि मानिनि मुधा धामात्मनस्सम्ब्रज,
तामित्थं समुदीर्य धाम गतवान् साकं तयाकम्पनः ॥८८
सकलः सकलज्ञमाप्तवानपि सम्प्रार्थयितुं जनः स वा ।
भगवान्भगवानभिष्टुतः विपदामप्युत सम्पदामुत ॥८९
सपदि विभातो जातो भ्रातो भवभयहरणविभामूर्तेः
शिवसदनं मृदुवदनं स्पष्टं विश्वपितुर्जिनसवितुस्ते
गता निशाथ दिशा उद्घटिता भान्ति निपूतनयनभूते
कोऽस्तु कौशिकादिह विद्वेषी परो नरो विशदीभूते
मङ्गलमण्डलमस्तु समस्तं जिनदेवे स्वयमनुभूते
हीरायाहि कुतः प्रतिपाद्याश्चिन्तारत्ने सति पूते
कलिते सति जिनदर्शने पुनश्चिन्ता कान्यकार्यपूर्ते–
र्भोन भवन्ति तृणानि किमात्मञ्जगति झगिति हि कणस्फूर्तेः
निःसाधनस्य चार्हति गोप्तरि सत्यं निर्व्यसनाभूस्ते
तमसि च किं दीपैरुदयश्चेच्छान्तिकरस्य सुधास्यूतेः
अर्हन्तमागोहरमगादधुना समर्थयितुं तरां
कुम्भलादाजिमवाज्जयोदरमावहन्स्मरसन्निभं

पश्चात्तपन्नपकृत्यमादरतो जिनस्य कृताहवं
वन्दना अर्कश्चकर च परम्पराध्वशभवाश्रवं ॥६०

(इत्यर्कपराभवचक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजस्स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमाश्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
स्वोदाराद्धरधारयाऽमुककृतिः श्रीदुहृदां मूर्धनि,
सर्गं कम्पकरी व्यतीत्य जयते सा चाष्टमं ह्रादिनि ॥६१

इति श्री वाणीभूषण-महाकवि-ब्रह्मचारि-भूरामल-शास्त्रि-रचिते
जयोदयापरनामसुलोचनास्वयम्वरमहाकाव्ये
चित्राङ्कितेऽर्ककीर्तिपराभववर्णनो
नामाष्टम' सर्ग ॥



अथ नवमः सर्गः

मनसि साम्प्रतमेवमकम्पनः समुपलब्धयथोदितचिन्तनः ।
विजयनाज्जयनाममहीभुजः सममवत्समरेऽपि महीरुजः ॥१

परिणता विपदेकतमा यदि पदमभून्मम भो इतरा पदि ।
पतितुजोऽनुचितं तु पराभवं श्रणति सोमसुतस्य जयो भवन् ॥२

जगति राजतुजः प्रतियोगिता न गतिवर्त्मनि मेऽन्नतर्ति सुतं ।
झगिति सम्वितरेयमदो मुदे न गतिरस्त्यपरा मम सम्मुदे ॥३

परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसह इति समेत्य समेऽत्ययनं रहः ।
किमुपधामुपधास्यति नात्र वा किमिति कर्मणि तर्कणतोऽथवा ॥४

प्रतिपदं विपदन्तकृदित्यदः प्रभृतिकं भृतिकत्वगुणास्पदः ।
निकटकं कटकप्रतिघातिनः समभवद् भवगर्तनिपातिनः ॥५

मम पराजयकृत्तु पुरारणं किमधुनाद्रियते मृतमारणं ।
किमित आगत आगतदुर्विधेर्मम समीपमहो सुमहोनिधेः ॥६

किमधुना न चरन्त्यसवाचराः स्वयमिताः किमु कीलनमित्वराः ।
रुदति मे हृदयं सदयं भवत्तुदति आत्मविघातकथाश्रवः ॥७

निजनिगर्हणनीरनिधाविति निपतते हततेजस आश्रितिः ।
गुणवतीव तती वचसां नराधिपमुखादियमाविरभूत्तरां ॥८

जयरवे वरवेशवतस्तव चरणयोरणयोघनयोस्तवः ।
बलवतां हृदयाय समुत्सवः स्तुतिकृतां रसनाभिनयो नवः ॥९

चरितमादरि तत्त्वविरोधि यत्प्रभवते भवते धृतसत्क्रियः ।
परिवदामि सदामितशासन न हि कदापि कदादरि मन्मनः ॥१०
युवनृपात्र कृपात्र प्रमाणके भवतु मय्युपयुक्तकृपाणके ।
भुवि भवान्विभविष्यति भो भवान्विपदगा पदगास्तु वयं न वा ॥११
यदपि चापलमाप ललाम ते जय इहास्तु स एव महामतेः ।
उरसि सन्निहतापि पयोऽर्पयत्यथ निजाय तुजे सुरभिः स्वयं ॥१२
यदपि पातयतीति तुरंगमस्तरलतावशतो विचलत्क्रमः ।
तदपि हन्ति हयं किमुदारदृक् भवति वृत्तमिदं चलतः सदृक् ॥१३
त्वमिह जीवनमप्यनुजीविनामिह कुतस्त्वदनुग्रहणं विना ।
मम समस्तु महीवलयेऽमृत सफरतापृथुरोमकतामृतः ॥१४
अपि हठात् परिषज्जनुषां मुदः स्थलमतिव्रजतीति विधुन्तुदः ।
जनतया नतया स समर्च्यते किमु न किन्तु तमः परिवर्ज्यते ॥१५
भवति विघ्नवतां प्रतिभासिता भवति वन्हिवदाश्रयनाशिता ।
अवनिमण्डन नः सुतरां तता जगति संभवताच्छितवर्त्मता ॥१६
शिरसि हन्ति रसन्नपि बालकः विगतबुद्धिबलेन नृपालकः ।
किमिति कुप्यति किन्तु समोदकं परिददातितमामुत सोदकं ॥१७
न खलु देवतुजोऽभिरुचिर्वशिन्स्फुरति सानुचराङ्गभुवीदृशी ।
इति मयानुमितं कथमन्यथा प्रथितवानभवं च विधे तथा ॥१८
मयि दयिन्नपि चेत्त्वदनुग्रहः शृणु मदीयहृदीयदहोरहः ।
त्वरितमत्त्वलतामुररीकुरु दिशतु भद्रमिदं भगवान् पुरुः ॥१९
हृदि तमोपगमात्प्रतिभाऽविशदिति तदालपितेन जयद्विषः ।
यदिव कौ कुरुते न दिनश्रियः समुदयः कृत नक्तलयक्रियः ॥२०

अपजितस्य ममेदमुपायनग्रहणमस्त्वुचितं किमुतायनं ।
न हि भुवि क्रमविक्रमलक्षणं भवति केशरिणो मृतभक्षणं ॥२१
यमथ जेतुमितः प्रविचार्यते स जय आश्वपि दुर्जय आर्य ते ।
तरुणिमाक्षयदो यदि जायते जरसि किं पुनरत्र सुखायते ॥२२
युवतिरत्नमपत्नमवाप्यते तदधिकन्तु शमाय समाप्यते ।
सुखरैरपि सा ह्यनुमानिता यदि रमाभिगमाय विमानिता ॥२३
भरतभूमिपतेः कुलदीपक इति समङ्कितत्तैलसमीपकः ।
यदसमुद्रितशुद्धशिखाश्रयः समभवत्सहसाप्रतिभामयः ॥२४
ननु मनोविशिखं दिशि खल्विदं निदधदन्धकता मम संविदः ।
अहिततां हिततानवति श्रयत्यपि भवादृशि धिक् महिताशय ॥२५
मम समर्थनकृत्समभूत् तु सः किमु वदानि वदाभ्युदयद्रुषः ।
निपतते हृदयाय विमर्षणः किल तरोः कुसुमाय मरुद्गणः ॥२६
किमु न नाकिभिरेव निषेधितं यदि तर्कैः क्रियतेऽत्र जगद्धितं ।
कटकपद्धतिसुत्थरजः कृताऽभवदहोविनिमेषतयान्धता ॥२७
ननु मनुष्यवरेण निवेदितं मयि निवेदमनर्थमवेहितं ।
कथा मिवान्धकलोष्ठमपि क्रमः कनकमित्युपकल्पयितुं क्षमः ॥२८
स्तुतमता स्तुतदैवशं तु तन्मम मनो हि जनो हितकृत् कुतः ।
सुरवरः प्रतिकर्तुमपीश्वरः किमु भवेद्भुवि भावि यदीश्वरः ॥२९
मम पितामहतुल्यवया मयातिचलितस्त्वमधीश दुराशया ।
प्रतिधृतो जय आप्तनयस्तथा जनविनाशकृदेवमहं वृथा ॥३०
अनयनश्च जनः श्रुतमिच्छति परिकृतः परितोऽप्यधिगच्छति ।
अहह मूढतया नमया हितं सुमतिभाषितमप्यवगाहितम् ॥३१

अयि महाशय काशयशःश्रिया परिकृतोरिकृतोऽपि विश्वश्रिया ।
कुशलतातिशयेन समर्थितः स्विदहकं त्वकयास्मिकदर्थितः ॥३२
पथसमुद्द्युतये यतितं मया परिवदिष्यति तत्सुदगाशया ।
मम हृदेतदुदन्तमहोभिनत्ययिविभो करपत्रवदिन्धनम् ॥३३
इति बलाहकमश्रुततोदरं विनतमुन्नमयन्नपि सत्वरम् ।
निभृतमाकलितुं किल मानसे क्षितिभृदात्महृदात्र समानशे ॥३४
क्षितिभृतो वदनादिदमुद्ययावमुकवारिमुचः प्रतिवाक्तया ।
क युवराज वराजगतां मता शुगिति येन सता भवता तता ॥३५
अलमनेन हृदाऽरमनेनसः स्वयमनागतवस्तुलसद्दृशः ।
कृतपरिक्रमिणो गतचिन्तिनः क कुशलं कुशलं कुरुताज्जिनः ॥३६
जठरवह्निधरं ह्युदरं वदत्यपि च तैजसमङ्गुगन्वदः ।
जनमुखे करकृत्कृतमोऽधुना हृदयशुद्धिमुदेतु मुदे तुना ॥३७
ननु भवान् शुभवानदयः पुनः स दुरितोदय एव समस्तु नः ।
विधुरुदेति मुदेऽतिवियुज्यते तदथ कोकवयस्यभियुज्यते ॥३८
यदपि राशिरिहासि सुतेजसामपि कलानिधिरस्ति जयोऽञ्जसा ।
भवतुतावदमानवधारणाद्भुतमनैक्य कुदङ्कनिवारणात् ॥३६
जयमहीपतुजोविलिसत्त्रपः सपदि वाच्यविपश्चिदसौ नृपः ।
कलितवानिनरेतरमेकतां मृदुगिरा ह्यपरानसमार्द्रता ॥४०
त्वदपरो जलबिन्दुरहं जनः जलनिधे ! मिलनाय पुनर्मनः ।
यदगमं भवतो भुवि भिन्नतां तदुपयामि सदैव हि खिन्नतां ॥४१
तव ममापि समस्ति समानता त्वमुदधिर्मयि बिन्दुकताऽऽगता ।
पुनरमीह सदा सदृशा वृथा भवति शक्तिरहो मयि किन्न सा ॥४२

हृदनुतप्तमहो तव चेद्यदि किमुनतापमहो मयि सम्पदिन् ।
तदनुतापि ममाप्यपजल्पनं भवितुमेति नमः सुमकल्पनं ॥४३
किमनुतापरमेख तवोदये स यदि ते वडवोऽपि न हानये ।
समयतां समतां निखिलं दरमतिगभीरतया त्वयि सागरः ॥४४
अपि समीररयादि मया सदा विनिपतन्ति ममोपरि आपदाः ।
समुपकर्तु मये किमु कस्यचित् तृडपसंहृतये किमहं सरित् ॥४५
विनतिरस्ति समागमनाय मे समुपधामुपयामि तव क्रमे ।
न मनसीति भजेः किमु विन्दुनाप्यवयवा वयवित्वमिहाधुना ॥४६
त्वमपरोप्यपरोऽहमियं मिदा व्रजतु बुद्धिमदैक्ययुजा विदा ।
भवति सम्मिलने बहुसम्पदा विरहिता जगतामपि कम्पदा ॥४७
विघटनं न हि संघटनं च नः प्रतिनिभालयता सकलो जनः ।
भवतु संस्मृतयेप्यसकौ दिवा स्म जयदेव गिरेति निरेति वा ॥४८
अवसरोऽचितमित्यनुवादिना करिपुरप्रभुणा मृदुनादि वा ।
निशमतीत्य विकाशिनि भृंगवत् रविहृदब्जदृहापि पदं नवं ॥४९
हृदनयोरथ पारदसारदं सुजनयो द्रुतमैक्यमुपासदत् ।
मिलनमर्हति कर्हि न यत्पुनः स्फुटितकुम्भवदत्र धिगस्तु नः ॥५०
भरतबाहुवलिस्मरयोर्यथा रवियशः सुद्दगीश्वरयोस्तथा ।
मिलनमेतदभूत्किल नन्दनं कुलभृतां परिकर्मनिबन्धनं ॥५१
भरतपुत्रममुत्र सुखाशया स पुनरश्रुमुवल्लभके रयात् ।
प्रगतवानधिकृत्य नरैः समं यतिचरित्रपवित्रजिनाश्रमं ॥५२
यदिह लोकजितो गुणतो धृतौ खलु नृणां करकौ च समाहृतौ ।
जय जयेति गिरा न विलम्बितं पदयुगं शिरसा त्ववलम्बितं ॥५३

न हि तकौर्जितकैतव एव स स्नपनमापवितः प्रभुरेकशः ।
मुदुदिताश्रुजलैरनुभावितं वपुरपीह निजं शुचिताश्रितं ॥५४
चरितमष्टदिनावधिपूजनं भगवतोऽखिलकर्मनिसूदनं ।
हृदयदृक्श्रवसामभिनन्दनं स्वशिरसोष्टजिनांघ्रिजचन्दनं ॥५५
अयमयच्छदधीत्य हृदा जिनं तदनुजा तनुजाय रथाङ्गिनः ।
सुनयना जनकोऽयनकोविदः परहिताय तनुश्च सतामिदं ॥५६
मनसि तेन सुकार्यमधार्यतः प्रतिनिवृत्य यथोदितकार्यतः ।
हृदनुकम्पनमीशतुजः सता क्रमविचारकरी खलु वृद्धता ॥५७
हृदयवद्गुणदोषविचारकं प्रवरवद् विपदां प्रतिहारकं ।
सुमुखनामचरं निदिदेश स भुवि निसर्गत एव सतां दृशः ॥५८
निगदनस्तु नमोऽर्कयशः पितुस्त्वरितमन्तिकमेत्य महीशितुः ।
भवितुमर्हति भूवलयेऽपरः सुमुख कार्यचणः कतमो नरः ॥५९
मम मनोरथकल्पलताफलं वदति शुक्तिजलक्ष्म स वोपलं ।
समभिपश्य नृपस्य मनीषितं वृवर साधय तस्य मयीहितं ॥६०
रविपराजयतः सरुषः स्थलं यदि तथा भुविनः क्व कलादलं ।
मकरतोऽवरतस्य सरस्वति भवितुमर्हति नासुमतो मतिः ॥६१
सफलयत्नमनेन निजं तदा तरुरिवोच्चमपत्रकसम्पदा ।
इति स लेखहरः समुपेत्य ना विनतवागमवत्प्रभवेऽमनाक् ॥६२
जयतमां नृपु राजसुराज ! ते यशसि नो शशिनो मधु राजते ।
चरणयो मणयोऽरितिरीटजाः प्रतिवदन्तु रुजां पुरुजात्मजां ॥६३
चरमुखे मृतगाविति भूभृतः किल चकोररमा दृगगादतः ।
वदनतो निरगाच्छशिकान्ततः शुचितमापि च
वाक्सरिता ततः ॥६४

परिचयोऽरिचयोदयहारिणे शुभवतो भवतोऽस्तु सुधारिणे ।
क निलयोऽनिलयोग्यविहारिणः किमथ नामसमर्थविचारिणः ।६५

हृदयसिन्धुरभूदुपलालित इति सदीश गवा प्रतिपालितः ।
रयमयः सुतरामुदगादयं चरनरस्य च वारिसमुन्नयः ॥६६

लसति काशि उदारतरङ्गिणी वसतिरप्सरसामुत रङ्गिणी ।
भवति तत्र निवासकृदेष कः स शकुलार्भक ईशविशेषकः ॥६७

विनयतो विहरञ्जगदीक्षण ! तव भवन्नगरक्षणवीक्षणः ।
क्षणमिहाश्रमितोऽस्मि यदृच्छया न हि पुरेक्षितमीदृगहो मया ।६८

अवनिनाथ ! तमां त्वयि वीक्षिते क दृगुदेति पुनर्वलये क्षितेः ।
सुरभिताखिलदिग्युपकानने द्युतिरुताम्रतरुस्थपिकानने ॥६९

जगति तेऽलमुदेति तु साधुता स्तुतिषु मे चिदपेति च साधुता ।
परिहिताय जयेज्जनता नवं विरम भो विरमेति सुमानव ! ॥७०

मृदुलदुग्धकलाक्षरिणी स्वतः किमिति गोपति गोरुदितायतः ।
सममवत्खलु वत्सक वत्सकश्चरवरोप्युपकल्पधरोऽनकः ॥७१

असुखितास्तु न यूयमिह क्षिता-वपि च काशिनरेशनिरीक्षताः ।
नृवर ! कच्चिदसौ जरसाञ्चित इतरकार्यकथास्वथ वञ्चितः ।७२

शुचिरिहास्मदधीट्धरणीधर ! सति पुनस्त्वयि कोऽयमुपद्रवः ।
तपति भूमितले तपने तमः परिहृतौ किमु दीपपरिश्रमः ॥७३

दुहितरं परिणामयितुं स्वयम्बरसमाख्यनयं कृतवानयं ।
भवतु यत्र वरः स जगत्पितः स्वयमलज्जतया सुतयाश्रितः ॥७४

तदिदमश्रुतपूर्वमथ स्त्रियां स्ववशतां ददवेवमपह्रियां ।
इतरनुस्त्वितरो हि समस्यते मनसि मे जनशीर्ष वशस्यते ।।७५

अनुचितं प्रतिपद्य भवत्तुजापरिकृताप्रतिरोद्धुमहो भुजा ।
स्मयवतानवतानवताहृता तदपि तेन कुतो धिषणा हृता ।।७६

जयमुपैति सुभीरुमतल्लिकाखिलजनीजनमत्तकमल्लिका ।
बहुषु भूपवरेषु महीपते मणिरहो चरणे प्रतिबध्यते ।।७७

भरतभूमिपतेरपि भारती सपदि दूतवराय तरामिति ।
श्रवणपूरमुपेत्य विलासिनी हृदयमाशु ददावकनाशिनी ।।७८

जयकुमारमुपैत्य सुलक्षणसुदगतः प्रतिभाति विचक्षणा ।
मम महीवलयेऽपि वदापरः सपदि तत्सदृशः कतमो नरः ।।७९

रवियशा दुरितेन मुरीकृतः स भवता वत शीघ्रमुरीकृतः ।
सदरिरप्यसदादरिवन्नरः भवतु सम्भवतुष्टिव्रतां परः ।।८०

अहमहो हृदयाश्रयवत्प्रजः स्वजनवैरकरः पुनरङ्गजः ।
भवति दीपकतोऽञ्जनवत्कृति न नियमा खलु कार्यकपद्धतिः ।।८१

वृषधरेषु महानृषभो गणी यदिव चक्रधरेषु सतामृणी ।
जयपितृव्यजनः श्रणने नृणी सुनयनाजनकः प्रकृतेऽग्रणी ।।८२

सुमुख मर्त्यशिरोमणिनाधुना सुगुणवंशवयोगुरुणामुना ।
बहुकृतं प्रकृतं गुणराशिना पुरुनिभेन धरातलवासिनां ।।८३

भुवि सुवस्तु समस्तु सुलोचना जनक एष जयश्च महामनाः ।
अयि विचक्षण लक्षणतः परं कडकमर्कमिमं समुदाहर ।।८४

समयनानि अमूनि किल धु वाग्वुपहितान्यपि भोगभुवा तु वा ।
प्रकटयन्ति जयन्ति नरोत्तमाः स्वपरयोः प्रतिबोधविधौ क्षमाः ।।८५

पवनवद् भविना मयि सज्जन प्रचलितं धु ररीकुरुते मनः ।
स्फटिकवत्परिशुद्धहृदाशयः स विरलो लभतेऽन्तरितं चयः ।।८६

इति कौ शरधरवाचमुत्तमां विनिशम्याथ समेत्यमुत्तमां ।
इह जवनाशनविप्रियस्य वागपि सहसाभ्युदियाय सुश्रवाः ।।८७

तेजस्ते जयतादपि मित्रान्महिमा तव महिमानविचित्रा ।
यद्यपि चक्रसमाहृय वस्तुर्भवति सतां प्रतिपाल इतस्तु ।।८८

वीरत्वमानंदभुवामवीरः मीरो गुणानां जगताममीरः ।
एकोऽपि सम्पातितमामनेकलोकाननेकान्तमतेन नेक ।।८९

समन्तभद्रो गुणिसंस्तवाद्य किलाकलंको यशसीति वा यः ।
त्वमिन्द्रनंदी भुवि संहितार्थः प्रसत्तये संभवसीति नाथ ! ।।९०

मानसस्थितिमुपेयुषः पदपद्मयुग्ममधिगत्यतेऽप्यदः ।
ईश्वरान्तरलिरेष मे सतः सौरभावगमनेन सन्धृतः ।।९१

कार्तिकेति हिमयात्रया दशा मत्कुलस्य परिवेद्यते च सा ।
तेन किश्च न लतान्तमिच्चतः श्रीसमतु कममात्ययोवतः ।।९२

इत्युपेत्य पदपद्मयोरजः लिम्पितुं हि निजधामसत्प्रजः ।
तस्य पार्थिवशिरोमणेरगादेष सोऽप्यनुचरन्ति यं खगाः ।।९३

अत्रान्तरमितमुपेत्य वारि भरं समुद्रात् स्वघटे हारि ।
स्वामिकर्णदेशेऽप्यपूरयद् गत्वा लघिममयस्तरामयं ।।९४

भर्तुश्चित्तमवेत्य सुन्दरतमं काशीविशामीश्वरः,
रङ्गत्तुङ्ग तरङ्गवारि रचिताम्भोराशि तुल्यस्तवः ।
तत्रासीच्छशलाञ्छनस्य रसनात्प्रारब्धपूर्णात्मनः,
नर्मारम्भविचारणे तत इतो लक्ष्यं बबन्धात्मनः ॥६५

वैरस्यापचयप्रकारकरणः सर्गोऽष्टमाग्रे तनः,
पूर्ति तद्गदिते समादधदितः श्रीसज्जनानां मनः ।

इति श्रीवाणीभूषण-महाकवि-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-रचिते
जयोदयापरनाम सुलोचनास्वयम्बरमहाकाव्ये
नवम सर्ग समाप्त

अथ दशमः सर्ग

नृपधाम्नि सुदाम्नि सुन्दरप्रतिसारः* खलु कार्यविस्तरः ।
+शयसग्रहणोचितोक्तिभृत् रचितोऽथान्तमितोऽपि तोषकृत् ॥१

समवेत्य तदात्ययान्तकं मृदुमौहूर्तिकसंसदोऽशकम् ।
रसनारसनालिकात्र मे स सुतां दातुमथ प्रचक्रमे ॥२

×अवरोधमितोऽवदत् परं स तु जामातरमुज्ज्वलान्तरं ।
स्वयमाप्त न यं रूचामयं दयिते सोदयमीक्षतां जयं ॥३

चतुराः प्रचरन्तु भो श्रिया प्रचुराः स्त्रीसमयप्रियाः क्रियाः ।
† ग्रहणग्रहमंगलोचितावयमातुन्म इतः श्रुताश्रिताः ॥४

समयात्समयाशयाः स्थितिं करसंयोजनकालिकीमिति ।
उपयुज्य पुनर्नृपासनं मुनिरन्तःपुरतो यथा वनं ॥५

जयमाह स दूतवाग्गुरुर्मम बालां कुलमप्यलङ्कुरु ।
स च पल्लवतान्मनोरथाङ्कुरकस्त्वच्चरणोदकैस्तथा ॥६

स निशम्य च तत्प्रतिध्वनिं मृदुदूताननगह्वराद् गुणी ।
प्रजिघाय तमादराद् वदन् समये दास्यमये गुरोरदः ॥७

श्रुतदूतवचाः स चाप्यतः प्रभुरत्रागमयाम्बभूव तं ।
श्रुतकुक्कुटवाक् ‡प्रगेतरां शकटाङ्गस्तरणिं यथादरात् ॥८

---

* कार्यसरम्भः । + पाणिग्रहणोचितः । × अन्तःपुर ।
† हस्तः । ‡ प्रभाते ।

नगरी न गरीयसा सुधासुरसेनैवमलङ्कृता बुधाः ।
शिशिरांशुसितेन वाससा समिताभूदधुना मृदीसा(?) ॥६
चरितैरिव भाविभिस्तदाश्रमभित्तिः शुचिचित्रकैस्तदा ।
उचिता खचिता विदग्धया वरवध्वोरनुभाविभिस्तया ॥१०
मणिपूर्णसुतोरणोत्थितैः किरणैः कर्बुरिताम्बरैर्हितैः ।
धनुरैन्द्रमियं पुरी यदेन्द्रपुरीं जेतुमहो उपाददे ॥११
अपरापरमादरेण तान् समपूपान् तनुते स्म तावता ।
बिबुधैरपि खाद्यतामितानमृतप्रायतया प्रसाधितान् ॥१२
अवदत् ‡सवदर्शने पुरः सदनानां च मुखानि भूसुर !
अवलम्बितमौक्तकस्रजां रचिमिर्हास्यमयानि स प्रजा ॥१३
प्रसरन्मृदुपल्लवेष्टयाथ लताङ्गीकृतचित्रचेष्टया ।
बहुविभ्रमपूरिताशया नृप सद्मोपवनोपमं तया ॥१४
मृदुमोदमहोदधिश्रिया नवनीतोत्तमभावमन्वयात् ।
अमृतस्थितिगीतमावृते सुरभिस्थानमिदं स्म राजते ॥१५
स घनं घनमेतदास्वनत्सुषिरं चाशु शिरोऽकरोत्स्वनं ।
सततेन ततः कृतो ध्वनिः स ममानद्धममानमध्वनीत् ॥१६
प्रभवन्मृदुलाङ्कुरोदयं स्वयमित्यत्र तदानको ह्ययम् ।
सरसं धरणीतलं यदप्यकरोच्छब्दमयं जगद्वदन् ॥१७
तदुदात्तनिनादतो भयादपि सा सम्प्रति वल्लकीत्ययात् ।
विनिलेतुमिवाशुता दशि प्रथुले श्रीयुवतेरिहोरसि ॥१८

‡ उत्सवः ।

प्रणनाद यदानकः तरामपि वीणा ललति स्म सापरा ।
प्रसरद्रससारनिर्झरः स निसस्वानवरं हि झर्झरः ॥१६
युवतेरुरसीति रागतः स तु कोलम्बकमेवमागतम् ।
समुदीक्ष्य तदेर्षयाऽधरं खलु वेणुः सुचुचुम्ब सत्वरं ॥२०
शुचिवंशभवच्च वेणुकं बहुसम्मानया करेऽणुकं ।
विवरैः किमु नाङ्कितं विदुर्डुडकश्चेति चुकूज सन्मृदुः ॥२१
परिचारिजनास्यनिःस्वनः पटहादीच्छितनादतोऽघनः ।
अभवत्प्रतिनादमेदुरः स्विदमेयो गगनोदरे चरन् ॥२२
स्मरतैरयिपीलनस्य मे सुहृदोऽनन्यतमे गुणत्तमे ।
मुहुरेव लगत्तदाप्यदः खलु तैलं हृदि सुभ्रुवोऽवदत् ॥२३
उपयुज्य वियोजितं नमत्तममुहूर्तनमिष्टसङ्गमम् ।
पदयोः सदयोपयोगयोर्निपपातापि नतभ्रुस्तयोः ॥२४
कलशीकलशीलाम्भसाभिषिषेचाथ धरामिहाशिषां ।
सुकृतांशुकृताशयेन वाकुलकान्ताकुलमाप्तसंस्तवां ॥२५
तदुरोजयुगेन निर्जिता इव नीता भुवि वारिहारिताम् ।
त्रपयेव न तैर्मुखैर्नवाभिदधुस्ताः सहकारपल्लवान् ॥२६
जरती जरतीतीष्टिहेतुना छिदिभृच्चामरमेव चाधुना ।
सुयशोर्हसति स्म संकचः पतदम्भःकणशृङ्खलद्रुचः ॥२७
सुतनुः समभाच्छ्रियाश्रिता मृदुना प्रोञ्छनकेन मार्जिता ।
कनकप्रतिमेव साऽशिताप्यनुशाणोत्कशनप्रकाशिता ॥२८
मुहुराप्तजलाभिषेचना प्रथमं प्रावृडभूत्सुलोचना ।
तदनन्तरमुज्ज्वलाम्बरा समवापापि शरच्छ्रियं तराम् ॥२६

किमिहास्तु विभूषया सुता यदि भूषा जगतामसौ स्तुता ।
अपि तत्र तदायतां हितादियमालीभिरितीव भूषिता ॥३०
प्रतिमाविषयेऽनुयोगकृत्सुतनोर्भ्रू युगमत्वरं सकृत् ।
इति कापि नकारमुत्तरं तिलकस्यच्छलतो ददौ परम् ॥३१
सकलासु कलासु पण्डिताः सुतनोरालय इत्यखण्डिताः ।
न मनागपि तत्र शश्रमुः प्रतिदेशं प्रतिकर्म निर्ममुः ॥३२
अलिकोचितसीम्नि कुन्तलाविबभुवुः सुतनोरनाकुलाः ।
सुविशेषकदीपसम्भवा विलसन्त्योऽञ्जनराजयो न वा ॥३३
निबबन्ध मृगीदृशः कचाञ्जगतो यौवतकीर्तये रुचा ।
विधत्वविधानवाससः समयान्कापि गुणनिवेदृशः ॥३४
स्फुटहाटकपट्टिकाश्रिया दिनरात्र्यन्तरसायसत्क्रिया ।
अलिकालकयोरिहान्तरा सममेवेति समद्युतत्तराम् ॥३५
न दृगन्तसमर्थिनीरसादिह लेखा खलु कज्जलस्य सा ।
समपूरि तु सूत्रणक्रियानयने वर्द्धयितुं वयःश्रिया ॥३६
भुवि वंशमसौ चमो गलः स्वरमात्रेण विजेतुमुज्ज्वलः ।
ननु तेन हि सन्धयेऽर्पिता कुवलालीस्वकुलक्रमेहिता ॥३७
तकयोः प्रतिमल्लताहिते नयनाभ्यामतिमात्रपीडिते ।
अपि तत्समरूपणौ श्रुती व्रजतः स्मोत्पलकद्वयीं सतीं ॥३८
सुषमाप महर्घतां परैर्भुवि भाग्यैरिव नीतिरुज्ज्वलैः ।
सुतनोस्तु विभूषणैर्यका खलु लोकैरवलोकनीयका ॥३९
मुकुरेच्छविदर्शिनी रसान्मुखमिन्दोः सविधं विधाय सा ।
कियदन्तरमेतयोश्च तद्विचरन्तीव तरामराजत ॥४०

सुतनोर्निदधत्तु चारुतां स्वयमेवावयवेषु विभुताम् ।
उचितां बहुशस्त्वदूषितामधुनालङ्करणान्यपुर्हितां ॥४१

गुरुमभ्युपगम्य पादयोः प्रणमन्त्याः सुषमाशये श्रिया ।
शिरसः खलु नागसम्भवं मणमत्राप तु यावकाख्यया ॥४२

तरुणस्य च तद्दुरुच्छ्रिता भुवि पाणिग्रहणक्षणोचिता ।
अनुजीविजनैः प्रसाधनाभिजनै(जनकै)स्तावदमण्डिमण्डना ॥४३

त्रिजगत्तिलकायतामिति कृतवान् मन्त्रिकमङ्गमङ्कृतिः ।
मिषतो स न भो भ्रु वोर्न्नतिन्तिलकेनाचरितं तदोमिति ॥४४

समवाप मनोभुवः स्तुतां रथसञ्चारुचतुष्कचक्रतां ।
ननु गण्डगतावतारयोर्द्वितयं कुण्डलयोस्तदीययोः ॥४५

जगती जयवान्भुजोरसी समवर्त्तस्तुयशःसुवेषसी ।
सितशोणमखिलित्विषां मिषात्स्वविभूषाग्रजुषां प्रभोर्विशां ॥४६

श्रियभति यथोऽर्थिसार्थकः खलु शंखादिकमानयाम् सकः ।
स्विदपांशु चिराशयः शशी वरराजस्य समुद्रतां ययौ ॥४७

स्वसदोदयतामनाकुलामिह नक्षत्रकमालिकाऽमला ।
उपकण्ठमिवार्थिनोहिता वदनेन्दोः पदसीमनि स्थिता ॥४८

प्रतिदेशमवाप्तिनामलङ्करणानां मणिमण्डलेश्वरं ।
निजरूपनिरूपिते घृणाकरि अस्मै खलु दर्पणार्पणा ॥४९

ननु तस्य तनुर्विभूषणैः सहजश्रेयपूरदूषणैः ।
लसति स्म गुणैरिवोज्ज्वलैरधुनाऽसौ परिणामकोमलैः ॥५०

रथमेकमथोपवीतिकः किमु मनाङ्गुदेन सोऽङ्कितः ।
रविवच्च विभासुरुच्छ्रितिर्मदनीयं विषयाश्रयः कविः ॥५१

स पवित्र इतीव सत्क्रियासहितः सम्महितो वरश्रिया ।
शुचिवेशधरैः पुरस्सरैश्च सुनासीर इहाभवन्नरैः ॥५२
नरपोऽनुचराननुत्तमं समयासन्नतरत्वशिक्षणं ।
निदिदेश समुल्लसन्मतः पथि सार्थं पृथु चक्रिरेऽस्यते ॥५३
अमुकस्य सुवर्गमागता नृपदूताः स्म लसन्ति तावता ।
पुलकावलिफुल्लिताननास्तटलग्ना इव वारिधेर्घनाः ॥५४
इति भृङ्गलिताह्वकारकैरवकुष्टो वरसन्नयस्तकैः ।
किल कण्टकिताङ्गको जनैः पृथुले पथ्यपि सोऽव्रजच्छनैः ॥५५
गुणकृष्ट इवाधिकारकः सुदृशः कण्टकिताङ्गधारकः ।
स न कैः शनकैव्रजन् क्षिताविह दृष्टो नितरां महीक्षिता ॥५६
अयि रूपममुष्य भूषिणः सुषमाभिश्च सुधांशुदूषिणः ।
द्रुतमेत च पश्यतेति वामृतकुल्येव ससारसारवाक् ॥५७
अथ राजपथान् जनीजनः स विभूषोऽरमभूषयद् घनः ।
सदनान्मदनात्मकः वरमागत्य निरीक्षितुं सकः ॥५८
दृशि एणमदः कपोलनेऽञ्जनकं हारलतावलग्नके ।
रसना तु गलेऽवलास्विति रयसम्बोधकरी परिस्थितिः ॥५९
अयने जनसंकुले रयादुपयान्त्याः कथमप्यहन्तया ।
सहसा दयितोपसङ्गतात् परिपुष्टं वपुराह विघ्नताम् ॥६०
निषिषेच पृथुस्तनी स्तनन्धयमुत्तार्य समागता पुनः ।
वलभीतलमेत्र भूयसा पयसा संश्रवता स्फुरद्यशा ॥६१
उरसः स्फुरणेन सम्मदात्स्तनकाभ्यां गलितेंऽशुके तदा ।
मृदुमङ्गलकुम्भसम्मतिमतनोत्तत्क्षणमागता सखी ॥६२

मृदुमालुदलभ्रमान्मुखे दधती केलिकुशेशयन्तु खे।
वरवीचणदविखेऽप्यदात्तदमूयाफलमस्य सद्रदा ॥६३
परयोपपतिं समीच्य तत्परिरम्भाभिगमोत्कयातयोः।
समियद् वरसन्दिदृचया स्फुटमेकैकमदायि नेत्रयोः ॥६४
वरसान्नयने तु तन्निभेनवतंसोत्पलके पुनः शुभे।
भवतां सुदृशां विचित्पणमिति नो शुश्रुवतुः श्रुतीचणं ॥६५
त्वरितार्पितयावशादयोरभियान्त्या द्वितयेन पादयोः।
रचितानि पदानि रामयाऽथ तदतिथ्यकृतेऽभिरामया ॥६६
असमाप्तविभूषणं सतीरधिभित्तिस्खलदम्बरंयतीः।
पटहप्रतिनादसम्वशा खलु हर्म्यावलिरुज्जहास सा ॥ ६७
अभिवाञ्छितमग्रतो रयादभिवीच्याशयसूचनाशया।
निदधावधरेऽथ तर्जनीं वररूपस्मयिनीव साजनी ॥६८
गुणगौरसुवर्णसूत्रकं कलयन्ती करती नरं तकं।
नयनान्तशरेण साप्टषत् परकोदण्डधरापराऽस्पृशत् ॥६९
श्वशुरालयवर्तिनो निजे पतितां दृग्भ्रमरी मुखाम्बुजे।
अवरोद्धुमिवावगुण्ठतः सुदृगाच्छादयदप्यकुण्ठतः ॥७०
प्रतिदेशमशेषवेशिनः स्वयमत्युज्वलसन्निवेशिनः।
प्रवरस्य वरस्य वीचणात् पुरनार्यः स्म भणन्त्यतः चणात् ॥७१
सुदृशो भुवि वृत्तसत्तमैर्नृपवृत्तैः कविवृत्तकैः समैः।
जगतां त्रितयस्य सत्कृतं चित्तमूहेऽमुकमालिके सितं ॥७२
सुमनस्सुमनोहरैँस्तरामिह मानुष्यकमेव देवराट्।
परमो परमो हि विग्रहादयते कौतुकतोऽप्यनुग्रहात् ॥७३

परमङ्गमनङ्ग एति तत्सुदृशा योगवशादसावितः ।
भुवि नान्वभिधातुमीश्वरः खलु रूपं परमीदृशं नरः ॥७४
सखि एनमतीत्य सुन्दरं जगदाह्लादकरं कलाधरं ।
स्पृहयालुरहो कुमुद्वती स्वयमकार्यं भवेत्सतीत्यति ॥७५
मखभस्मधृताङ्गलाच्छनः पतिरार्ये किमु यज्वनांसन ।
मखमस्य समाञ्चितुं सतः प्रभवेदाशु सुवृत्ततां गतः ॥७६
निलयः किल यः श्रियः प्रियस्तुरगास्यस्तु कुतोस्त्वविक्रियः ।
मदनश्च न दृश्य एषक यदनन्यो नतदाश्विनेयकः ॥७७
समुपात्तमुदश्रुभिः पुनर्दृशि मुक्ताफलता किमस्तु न ।
इममङ्ग जगत्त्रयोदरेऽमृतरूपं परिपीय सोदरे ! ॥७८
प्रथमं परिभूष्य काशिकामियमेतस्य सतो हृदाशिका ।
पृथुपुण्यविधेरुपासिकास्ति यतः श्रीश्च यदङ्घ्रिदासिका ॥ ७९
घटकन्तु विधातरं सतोरनुजानामि विचारकारिणं ।
जडमित्यनुजानतो वचः शुचि तावद् धरणौ विरागिणः ॥८०
अथ सोमजवाहिनीत्यतः खलु पद्मालयमालिनी ततः ॥
अनयोर्मिलनं श्रियं श्रयज्जनता सिद्धवरं व्यभावयत् ॥८१
सद्भिराशसितः प्राप भूमिभृद् भुवनं पुनः ।
एधयन्मोदपाथोधिं स राजा विशदांशुकः ॥८२
स वरोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं समाचक्राम तोरणं ।
तत्त्वार्थाभिमुखो ज्ञानी यथा दृङ्मोहकर्म तत् ॥८३
सम्यग्दगञ्चितस्तावद्राजद्वारं समेत्य सः ।
प्राप्तश्चरणचारित्वं सिद्धिमिच्छन्निजोचितां ॥८४

बन्धुभिर्बहुधादृत्य मृदुमङ्गलमण्डपम् ।
उपनीतः पुनर्भव्यो गुलस्थानमिवालिभिः ॥८५
विशालं शिखरप्रोतवसुसञ्चयशोचिषां ।
निचयैस्तु शुनासीरव्योमयानं जहास यद् ॥८६
वाहिनीव यतो रेजे सुगन्धिनलिनान्तरा ।
उर्मिकाङ्कितसन्ताना मत्तवारणराजिका ॥८७
हीरवीरचितास्तम्भा अदम्भास्तत्र मण्डपे ।
बभुः कन्दा इवामन्दाः पुण्यपादपसम्भवा ॥ ८८
अर्कसंस्कृतकुड्येषु संक्रान्तप्रतिमा नराः ।
विलोक्यन्ते स्फुटं यत्र चित्राङ्का इव मञ्जुलाः ॥८९
बिम्बितानि तु नेत्राणि जनानां स्फटिकाङ्गणे ।
प्रीत्यार्पितानि निःस्वापैः पुष्पाणीव पुनर्बभुः ॥९०
स्थण्डिलं मण्डपस्यास्या सङ्कटस्यान्तरुज्वलं ।
बभूव भूषणं वारांराशेरासैकतं यथा ॥९१
रम्भोचितोरुकस्तम्भा पयोधरघटोच्छ्रिता ।
गोमयोपहितास्या च वेदीनेदीयसीस्त्रियाः ॥९२
वेदीं मनोहरतमां समगान्नवीना-
आलोकितुं दशसुकस्य मुदामधीना ।
तावद् विचारचतुरापि सुवाक्कवाटं
स्मोद्घाटयत्ययिपविस्त्रितचक्रवाट् (?) ॥९३
विश्वम्भरस्य तव विश्वसनेन लोकः,
संशर्म नर्म भुवि भर्म समेत्यशोकः ।

विघ्नश्च निघ्न इह भाति पुनर्विमोहः,
काहंकरो जिनदिनङ्कर शम्वरोह ॥६३
हे छिन्नमोह जनमौदनमोदनाय,
तुभ्यं नमोऽशमनशंसमनोऽदनाय।
निर्वृत्यपेक्षितनिवेदनवेदनाय,
सूर्याय मे हृदरविन्दविनोदनाय ॥६४
मातः स्तवस्तु पदयोस्तव मे स एष,
यस्या अपाङ्गशरसङ्कलितो जिनेशः।
लक्ष्मीहते यदि हते वरदर्शनश्रा,
मय्यप्यहो विभवकृत् भव सुप्रसन्ना ॥६५
हे धर्मचक्र तव संस्तव एष पातु,
पश्चाद् भुवि क परचक्रकथा तु जातु।
दुष्कर्मचक्रमपि यत्प्रलयं प्रयातु,
सिद्धिः समृद्धिसहिता स्वयमेव भातु ॥६६
नित्यातपत्र परमत्र तव प्रतिष्ठा-
सत्यागमाश्रयभृतामसकौ सुनिष्ठा।
छायां सुशीतलतलां भवतो घनिष्ठा,
मय्याश्रितस्य किमु तन्निरिहास्त्वरिष्टात् ॥६७
हे शारदे सपदि संस्तवनं वदामः,
सज्जाङ्गलाय जगतां तव वारिनाम।
नैकान्तनिष्ठवचनाय तु सम्पदासि,
धीर्नः पुनर्भवति तेऽपि पदान्तदासी ॥ ६८

निर्यान्तमित्थमुदितेन किलावरोद्धं,
हस्तौ नितान्तमुदितौ जगदेकयोद्धं ।
संयोजनामुपगतौ हृदयैकधाम,
कोशात्कृतोऽपि दुरितौघमहो निकामं ॥९९
सम्भूततामतति तां वरराजपादै-
स्तस्मिन्सदम्बरवितान इतः प्रसादैः ।
तत्कालकार्यपरदारतरङ्गचारः,
‡शुद्धान्तसिन्धुरभवत्समुदीर्णसारः ॥१००

का चन स्मितसमन्वितवक्रतुल्यतामनुभवत्स्वयमत्र ।
लाजभाजनमदोऽप्युपयोक्त्रीसम्भमौ तरुणिमोदयभोक्त्री ॥१०१
शातकुंभकृतकुम्भमनल्प—दुग्धमुग्धकमुरोरुहकल्पम् ।
जानती तमपि चाञ्चलकेनाच्छादयत्समुपपद्य निरेनाः ॥१०२
कुङ्कुमिरोपितकफोणितयाऽरं प्राप्यसादधिशरावमुदारं ।
गण्डमण्डलमतोलयदेवा-नेन पिच्छलतमेन सुरेवा ॥१०३
सर्पिरर्पितमुखप्रतिमानं सेन्दुकेन्दुदयितप्रणिधानं ।
पाणिपद्ममृदुसद्मसुवेशाऽपूर्वमाप्य कुमुदे मुमुदे सा ॥१०४
उद्धृता न कदली लसदूर्वा पाणिनैव खलु सम्प्रति दूर्वाः ।
किन्तु मङ्गलमुदञ्चपदेन गात्रतोऽपि चिदियन्तु हृदेनः ॥१०५
शर्करां तदपि काचिदिहाली प्रोद्धार मधुराधरदाली ।
पश्यताधरमिदं न मदीयमौष्ठमित्थमधुनोक्तवती यत् ॥१०६

---

‡ अन्तःपुरं ।

संचकार समिधोप्यबलाका संगुणीचगणनाय शलाकाः ।
ताः सुयज्ञसदसो हयविलम्बादङ्गुलीरिव निजा बहुलम्बाः ॥१०७
ताम्रतीं द्रुतमनङ्गमयेऽन्तुं सम्बभूव सुसमप्रनये तु ।
श्रीपुरोहितवरस्य च देहीत्युक्तिमुक्तिहृदयद् विभवे ह्री ॥१०८
स्नक्करीत्यनुचरी स्मरसायाख्यातिजातिदरमादरदायाः ।
सूचिसूचितशिखां विनिखाया शोभयत्सुमनसां समुदायात् ॥१०९
प्रावृषेव संरसावयस्यया नियर्यौ घनघटासुहृत्कतया ।
चातकेन च वरेण केकितापव्रजन्यमनुना प्रतीक्षिता ॥११०
कुसुमगुणितदामनिर्मलं सा मधुकररावनिपूरितं सदंसा ।
गुणमिव धनुषः स्मरस्य हस्त-कलितं संदधती तदा प्रशस्तं ॥१११
तरलायतवर्तिरागता सा पुनरस्मिन्स्मरदीपिका स्वभासा ।
अभिभूततमाः समाजनानां किमिव स्नेहमिति स्वयं दधाना ॥११२
पुरतः पुरुषोत्तमस्य सेवाथ सुता भूभृत उग्रतेजसे वा ।
सुकलाशुकलाधराय शर्मनिधये प्रीतिजनन्यनन्यधर्म ॥११३
विलसत्सु महत्सु सत्सु तत्र दृगगाधारुदृशो जयोऽस्ति यत्र ।
कति सन्ति न पादपा मुदे नः पिकवध्वाः पुनराम्र एव ते न ॥११४
सरसेऽपघने घनेश्वरस्य न करालम्बनकृत्समागमिष्यत् ।
निमिषो यदि तत्र सन्निमग्ना दृगमुष्या अभविष्यदेव लग्ना ॥११५
अधिकं निममज्जसा पुरश्चावतरन्ती पुनराममज्ज पश्चात् ।
प्रसवाशुगसाधितापि शस्याप्यमृतस्रोतसि तत्र दृष्टिरस्याः ॥११६
दृक् तस्य चायात्स्मरदीपिकायां समन्ततः सम्प्रति भासुरायां ।
द्रुतं पतङ्गावलिवत्तदङ्गानुयोगिनी नूनमनङ्गसंगात् ॥११७

अभवदपि परस्परप्रसादः पुनरुभयोरिह तोषपोषवादः ।
उषसि दिगनुरागिणीति पूर्वा रविरपि हृष्टवपुर्विदो विदुर्वा ॥११८

नन्दीश्वरं सम्प्रति देवतेव पिकाङ्गना चूतकसूतमेव ।
वस्त्वौकसारा किमिवात्र साक्षीकृत्याशु सन्तं मुमुदे मृगाक्षी ॥११९

अध्यात्मविद्यामिव भव्यवृन्दः सरोजराजिं मधुरां मिलिन्दः ।
प्रीत्या पपौ सोऽपि तकां सुगौरगात्रीं यथा चन्द्रकलां चकोरः॥१२०

कमलामुखीमयमचिररश्मिभिः श्रीपरिफुल्लद्हां,
रसति स्मेयमिमं खलु रमणीधामनिधिं स्वाधारं ।
ग्रहणग्रहणस्यादौ परमो भविनोरभिविश्रम्भं,
भवतु कवीश्वरलोकाग्रहतो ह्यावपरश्चारम्भः ॥१२१

(कराग्रहारम्भश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
तस्योक्तिः प्रतिपर्वसद्रसमयी यं चेत्तुयष्टिर्यथा-
मुं सम्व्येति मनोहरं च दशमं सर्गोत्तमं संकथा ॥१२२

इति श्रीवाणीभूषण-महाकवि-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-रचिते
जयोदयापरनामसुलोचनास्वयम्बरमहाकाव्ये
दशमः सर्ग. समाप्त.



अथ एकादशः सर्गः

रूपामृतस्रोतु स एव कुल्यामिमामतुल्यामनुबन्धमूल्यां ।
लब्ध्वाद्विमीनद्वितयी नृपस्य स लालसा खेलति सा स्म तस्य ॥१

प्रेम्णास्य पीयूषमयूखवन्तं समुज्ज्वलं कौमुदमेधयन्तं ।
पुरा तु राजीव दृशः किलोरीचकार राज्ञो दृगियं चकोरी ॥२

दृशे नृपस्यान्ततृषेऽथवाराग्रमात्रतोया सहसाऽसुधारा ।
सारात्पुनः स्फीतमुखेन्दुसारासुरीति कर्त्री समभूत्सुधारा ॥३

विलोकनेनास्य निशीथनेतुः समुल्वणे सन्द्रससागरे तु ।
द्रुतं पुनः सेति पदं वदोऽह्यमुच्चैस्तनं पर्वतमारुरोह ॥४

हृद्यागता मानवतां नृपस्य समुन्नतं वृत्तमिहाप्यपश्यन् ।
सामोदभावेन पुनर्निरापत्सतीति मुक्ताफलतामवाप ॥५

कालागुरोर्लेपनपङ्किलत्वाद् दृष्टिः स्खलन्तीव च सस्पृहत्वात् ।
तनौ चरिष्णुः सुदृशोऽप्यपूर्वा उरोरुहाभोगमगान्मुहुर्वा ॥६

पुनश्च निश्रेणिमिवैणशावदृशोऽवलम्ब्य त्रिवलिं यथावत् ।
स तृष्णया नाभिसरस्यवापि किलावतारः शनकैस्तयापि ॥७

या पद्मिणी मञ्जुलतासु नाभिव्यक्त्या मुदालम्बितरङ्गमाभिः ।
दृष्टिः सदाचारसमष्टिनावमधिष्ठितागादनिमेषभावं ॥८

सुवर्णसूत्राभ्युपलम्बनेन समारुरोहाथ ततः सुखेन ।
तुङ्गं पुनः सा परिधाय कायमहार्यमार्यप्रकृतेः समार्यं ॥९

कलत्रचक्रे गुरुवर्तुले दृक् भ्रान्त्वा स्खलन्तीति परिश्रमस्पृक् ।
स्थिरा बभूवाथ किलोरुहेमस्तम्भन्तु धृत्वा स्वकरेण सेमं ॥१०
भृङ्गीव दृक्हस्तिपुराधिपस्यावगाह्य सद्गात्रलतां च तस्याः ।
प्रसन्नयोः पादसरोजयोस्सा गत्वा स्थिराभूदधुना सुतोषा ॥११
समागतां वामपरम्परायाः पीत्वा स्तुतिं कोमलरूपकार्यां ।
तरङ्गभङ्गीतरलाभिनेतुर्जगाम जन्माथ च मानसे तु ॥१२
सुवर्णमूर्तौ रचितापि यावत्समेति सैषा निरवद्यभावं ।
तेजस्तरैः संगुणिता प्रदृश्या न संस्पृहं कस्य मनोऽत्र च स्यात् ॥१३
अन्यत्र वाञ्छाविरहादिदानीं चेत्रेऽत्र वै शान्तिकसन्निधानी ।
श्रीमाननुष्ठानपरः स्मरो हि समस्ति नित्यामरताभिरोही ॥१४
नतभ्रुवो भोगभुजावभूतः समेत्यसौ श्रीवयसा निपूतः ।
अथोरगोगूढपदोऽपि सत्याः पयोधरत्वं युवतेर्भवत्याः ॥१५
प्रजापतेर्यः शिशुतामवाप्तोऽस्याविग्रहात्तः प्रथमोऽपि भावः ।
पलायते पुष्पशरस्य कर्मकरेण लब्धो वयसापि यावत् ॥१६
पादैकदेशच्छविभाक् प्रसक्तिभृतः स्वतः पल्लवतां व्यनक्ति ।
समस्ति यः स्वस्य तु वाच्यतातत्पर. प्रवालोऽपि स चाभिजातः ॥१७
पादारविन्दद्वितयाग्रदेशेऽनुरञ्जितः श्रीसुदृशः सुवेशे ।
विधेर्वशात्साधुदशत्वशंसः सोमः समस्त्वेष सतां वतंसः ॥१८
हैमं तुलाकोटियुगं च कस्मान्ममाप्यमूल्यस्य निबद्धमस्मात् ।
रुषारुणं श्रीचरणारविन्दद्वयं सुदत्या विभवन्तु विन्दत् ॥१९
शिरस्तु धत्तौ सुषुमाभिमान—जुषां रुषा सम्वपुषां धिया नः ।
तत्रत्यसिन्दूरकलासमस्यावशेन पादावरुणौ स्विदस्याः ॥२०

विशुद्धपार्ष्णी जयतः प्रयाते श्रीराजहंसाब्जतुल्यपाणेः ।
पादाब्जराजौ न हि चित्रमेतत्सेव्यावहो भूमिभृतोऽपि मे तत् ॥२१
जंघे सुवृत्ते अपि बुद्धिमत्याः स्वयं सुवर्णानुगते च सत्याः ।
मनोजनानां हरतो यदीमे विलोमतैवात्र तु सेमुषी मे ॥२२

मृगीदृशोऽस्याः प्रसृताच्छलेन प्रेङ्खाभरुस्तम्भमयीत्यनेन ।
रतेर्विधात्रा घटिता यदन्तः स्फुरत्पदाङ्गुष्ठनखांशुराजिः ॥२३
जाड्यात्तु गुर्वङ्कमधोविधायासकौ तपोभिः स्विदनिष्टतायाः ।
सहेत निस्सारतया समस्यां मोचोरुचारुर्भवितुं तु यस्याः ॥२४

मृगीदृशो जानुयुगे स्वयम्भाजिता यतः श्रीतरुणी च रम्भा ।
रम्भा पुनस्तिष्ठतु दूरमेव जातामुदेव स्तुतयाऽत्र देव ॥२५
अन्यातिशायी रथ एकचक्रः रवेरविश्रान्त इतीभशक्र* ।
तमेकचक्रं च नितम्बमेनं जगज्जयी संलभते मुदे नः ॥२६
स्मरार्थमेकः परदर्पलोपी दुर्गः पुनर्दुर्लभदर्शनोऽपि ।
नितम्बनामा रसनाकलापच्छलेन शालः परितस्तमाप ॥२७
नौद्धत्ययुक् चापि कुतो जघन्यः पुरो नितम्बस्य गुरोर्भवत्यः ।
सदोरुवृत्ताभ्युदयीत्यशेषे विलोमता किन्तु पुनः कुदेशे ॥२८
सुखेक्षणप्रांगणतो हि तस्य नन्दीश्वरस्यात्र समागतस्य ।
सुपर्वधाम्नो वसुधाप्रशस्तिः श्रीसिद्धचक्रन्तु नितम्बमस्ति ॥२९
वक्रं विनिर्माय च शीतभासोऽमुष्मिन्भ्रमात्कुड्मलतामियाणोः ।
निजासनादाकुलतां प्रयाता न निर्ममे मध्यमितीव धाता ॥३०

---

* काम एवेंद्रः ।

गुरुर्नितम्बः स्विदुरोजबिम्ब उरुः कृशीयांस्त्वयमत्र डिम्बः ।
माभूत्त्वमाभूर्लमतेऽवलग्नं सैषा सुकाश्ची गुणतो ह्यविघ्नं ॥३१
गुरोर्नितम्बाद्वलिपर्वणां तत् त्रयीमधीत्याखिलकर्मजातः ।
जुहोति यूनां च मनांसि मध्यस्तारुण्यतेजस्यथ सन्निवध्य ॥३२
जगज्जिगीषाभृदनंगजिष्णुरथस्तथैतस्य वरं चरिष्णुः ।
परिस्फुरन्ती पथपद्धतिर्वास्मिन्विग्रहेऽतस्त्रिवलीति गीर्वा ॥३३
एनां विधायानुपमां भविष्यत्स्तनस्मरोऽस्याविधिरप्यशिष्यः ।
मध्यादतोऽप्यात्तसदंशभागस्तदङ्गुलीनां त्रिवलीति भागः ॥३४
सरस्वती या प्रथमा द्वितीया लक्ष्मी च सृष्टौ सुदृशां सती वा ।
सर्गस्तृतीयोऽयमितीव सृष्टा चकार लेखास्त्रिवलीति कृष्टाः ॥३५
अस्या विनिर्माणविधावहुएडं रसस्थलं यत्तदकारिकुण्डं ।
सुचक्षुषः कल्पितवान्विधाता तदेव नाभिच्छलतोऽस्ति ताताः ॥३६
सुदक्षिणावर्तकनाभिकूप-पदावृवदाम्युत्तमकुण्डरूपं ।
स्मरस्य सन्तर्पणभृत्तदीय-धूमोच्छ्रितिर्लोमततिः सतीयं ॥३७
लोमोत्थितिः सौष्ठववैजयन्त्यां सुमेषु साम्राज्यपदं लिखन्त्याः ।
तारुण्यलक्ष्म्या गलिताथ नाभिगोलान्मषेः सन्ततिरेव भामिः ॥३८
पयोधरोऽभ्युन्नमतीह वृष्टिः रसस्य भूयादिति लोमसृष्टिः ।
पिपीलिकालीक्रमकृत्प्रशस्तिः विनिर्गता नाभिविलात्समस्ति ॥३९
बृहत्स्तनाभोगवशाद् विलग्नः कश्चिद्विभग्नोस्त्विति भावमग्नः ।
विधिर्ददावेनमिहोदरे तु लोमालिदण्डं तदुदाचहेतुं ॥४०
साधुः स्मरः सजघनासनेऽतोनुतिष्ठति श्रीपरलोकहेतोः ।
कमण्डलुर्नाभिमिषेण भातु लोमावली सम्प्रति पिच्छिका नु ॥४१

विलान्तरं श्रीमदुरोजभाजः गन्तुर्विलाद्वा स्मरसर्पराजः ।
समस्त्वसौ पद्धतिरेव शस्ता रोमावलीनाभिपदादधस्तात् ॥४२
अस्याः स्फुरद्यौवनभानुतेजः शुष्यन्महद्वाल्यजलान्तरायाः ।
विभात एतावधुनान्तरीपौ स्तनच्छलेनापि तु †नर्मदायाः ॥४३
यद्वावशिष्टं तदिहास्ति निष्टं स्फुटस्तनाभोगमिषादभीष्टं ।
संग्रह्य सारं जगतोऽङ्गसृष्टावस्या यदारम्भपरस्तु सृष्टा ॥४४
अस्याः स्तनस्पर्द्धितया घटस्य शिल्पादिवाल्पादिह पश्य तस्य ।
स चक्रभर्ता मखिकादिभारकर्तापि देवाकथिकुम्भकारः ॥४५
ह्रुवाप वैदग्ध्यमभूतपूर्वममान्तमस्मत्प्रणयं च तेन ।
समुत्सहाहारवर ‡ प्रभाविन्युच्छ्रुभतामेति कुचच्छलेन ॥४६
अस्याः किमूचे कुचगौरवन्तु श्रियोप्यपूर्वा इह सञ्जयन्तु ।
करं परं दास्यति मादृशोऽपि यत्राखिलक्ष्मापतिदर्पलोपी ॥४७
हारावलीयं तरलाऽवलाया उत्तुङ्गयोः श्रीस्तनयोश्च भायात् ।
मध्यादिदानी + यमकस्तुभाजोः सीतेव सम्यक्परिपूरिताऽजौ ॥४८
सुदृश्विर्ण चेत्रमिदं ×कुमार्या नितम्बतो वार्षधरादिहार्या ।
लावण्यगङ्गाभिसरत्यभङ्गाभिनाभिकुण्डं किमुत प्रसङ्गात् ॥४९
दधत्प्रवालोऽपि तु पत्रतां यः विज्ञैरभीष्टः कुपलाख्यया यः ।
निर्भीकलोकस्य गिरेति तु स्याच्छयस्य सोऽप्यस्तु समोऽप्यमुष्याः

† आनन्ददायाः, नर्मदाया नाम नद्याश्च ।

‡, हारवरस्य मुक्तावल्याख्यस्य हारवरस्य नाम, सवर्द्धनशील पदार्थस्य च ।

+ यमकगिर्योः ।

× अविवाहितायाः, जम्बूद्वीपस्य च ।

विम्बो न पद्मोऽर्हति यत्र पाणेस्तुलान्तु लावण्यगुणार्णवायाः ।
वृत्तिं पुनर्वाञ्छति पल्लवस्तु तत्रेति वान्यं परमस्तु वस्तु ॥५१

सरोजसारं करमब्जयोनिः समर्पयामास स राजधानीं ।
इमामनुस्मृत्य जगद्विजेतुः स्मरस्य सद्‌दक्षिणतैकहेतुं ॥५२

अस्यैव सर्गाय कृतः प्रयासः पुरा सरोजेषु मयेत्युपाश ।
विधिश्च सौन्दर्यनिधेरुदारः करे च रेखात्रितयं चकार । ५३

स्फुरन्नखस्याङ्गुलिपञ्चकस्यापदेशतोऽस्याश्च करे प्रदृश्या ।
स हेमपुङ्खाबहुपर्वसत्त्वाऽनङ्गस्य वै पञ्चशरीति कृत्वा ॥ ५४

करः स्मरैरावतहस्तिनस्तु शेषावतारो जगते समस्तु ।
सौन्दर्यसिन्धोः कमलैककन्दोपमो भुजोऽसौ विशदाननेन्दोः ॥५५

पराजितास्यागलकन्दलेन मन्ये मुहुः पूत्करणस्यरीणा ।
मिषान्मिषादर्पभमात्रगम्या मता विपञ्चीति जनैस्तु वीणा ॥५६

गानं कवित्वं मृदुता च सत्यमेतच्चतुष्कं सुदृशोऽधिकृत्य ।
गलेऽथ लेखात्रितयेण चागः प्रहाणये किन्तु कृतो विभागः ॥५७

लावण्यसिन्धोरुदितः कबन्धोदयी न कण्ठः सुदृगाख्यबन्धोः ।
कम्बुश्च सम्बुद्धिमथोपहर्तुं जगज्जिगीषोः स्मरभूमिभर्तुः ॥५८

मन्ये मृगाङ्कं मुखमुल्लसत्वान्मृगैकदेशोत्तणलक्षितत्वाम् ।
छन्ना किलोच्चैस्तनशैलमूले छाया तु लोमावलिकानुकूले ॥५६

कुशेशयं वेद्मि निशासु मौनं दधानमेकं सुतरामघोनं ।
मुखस्य यत्साम्यमवाप्तुमस्या विशुद्धदृष्टेः कुरुते तपस्यां ॥६०

मुखं तु सौन्दर्यसुधासमष्टेः मुखं पुनर्विश्वजनैकदृष्टेः ।
‡स्त्वं श्रियः सम्भवति ह्रियश्चाशु खं च मे स्याद्विरसो न यस्मात् ॥६१

*नबालकेनाधरताम्रवाले मुखेन याऽमानि सुदन्तपालेः ।
सुपा(धा)किनेमेमधुलेन साऽलेख्यथा सुधालेन विधौ सुधाले ॥६२

स्मितामृताशोरपि कौमुदीयं रुचिः शुचिर्वाक्यमिदं मदीयं ।
वेलातिगानन्दपयोधिवृद्धिर्लोकस्य नो कस्य पुनः समृद्धिः ॥६३

पिकस्वनाया वदनाग्रजन्मा नवोदयं याति सदैव तन्मा ।
रदच्छदाभोगमिषादवन्ध्या समग्रतोऽसौ समुदेति सन्ध्या ॥६४

खण्डं गिरः पौडविजितपदायाश्चेदाश्रयिष्यन्कथमप्युपायात् ।
सुपर्वधामाभिभवामकान्ता✽ किमग्रहिष्यत्सुमनाः सुधां तां ॥६५

मन्येऽमुकं रागसुभागसत्वं बिम्बन्तु बिम्बस्य किलाधरत्वं ।
हेतुस्तु सम्वादपथीह देव मिथोऽस्तु ×नामव्यतिहार एव ॥६६

अव्यक्तलेखांकितमेति शस्तं नतभ्रुवश्चाधरपल्लवस्तं ।
यन्त्रं जगन्मोहकरं स्वभावात्समङ्कितं मन्मथमन्दिरं वा ॥६७

उच्चैस्तनाहार्यविहायुमायाः श्रीविद्रुमच्छायतया स भायात् ।
मरोस्तुलामेत्यधरोऽथवास्या यतः पिपासाकुलितश्च नास्यात् ॥६८

विराजमाना †अमुना मुखेन सुधाकरेणापि तथा नखेन ।
अवर्णनीयोत्तमभास्करावानिशा यथा +शस्ततमस्वभावा ॥६९

---

‡ आनुकूल्यं । * नवीनालकयुक्तेन, बालावस्थारहितेन च ।
✽ दुःखहन्त्री, अमनोहरा च ।
× परिवर्तनं ।
† मुकाररहितेन मुखेन खेन स्वर्गेणाकाशेन च ।
+ न विद्यते खं नाशो यस्य । + अतिश्लाघनीया, बहुतमोमयी च ।

तान्ताममास्थाप्यमुना मुखेन विधोर्विधारस्यालसता नखेन ।
कलं ददाना भवतात्स्वकीयं सुधाकरोऽहं खलु कौमुदीयं ॥७०
सुनासिका चञ्चुवृहच्छरीरः यदीप्यते सम्प्रति मारकीरः ।
दन्तावली दाडिमबीजशुक्तिः प्रवालशुक्तिः प्रथिताधरोक्तिः ॥७१
जित्वा त्रिलोकीं स्विदमोघबाणस्तूर्णीं द्विबाणीं विफलान्तु जानन् ।
तत्याज लात्वाथ सुगन्धगम्या नासेति धात्रा रचितास्ति रम्या ॥
अपूर्वरूपाममुकां विधातुं श्रीमङ्गलोक्ती रुचिरैव धातुः ।
अवत्य × विस्मापनदैवतायार्पितापि नासा खलु *गुल्गुलाया ॥७३
सारं सुधांशोस्समवाप्य मध्यात्कृतौ कपोलौ सुषुमैकसिद्धयाः ।
तज्जम्भपीयूषलवोपलम्भाद् रत्नं पुनस्तत्र कलङ्कदम्भात् ॥७४
जगन्ति जित्वा त्रिभिरेव शेषावुपायनीकृत्य पुनर्विशेषात् ।
दृग्भ्यामितः पञ्चशरः स्मरोऽतिशेते विधिं तौ सफलीकरोति ॥७५
कृत्वा ललाटेऽर्द्धमिहोडुशक्रं घनीभवत्सौधरसौघनक्रं ।
स्फुरद्रदव्याजसुधांशयोः सत्पादावथादात्तु कपोलयोः सः ॥७६
सकज्जले एव दृशी तु तत्वावलोचिके अप्यति चञ्चलत्वात् ।
सुदूरदर्शित्वमिवोपहर्तुं श्रुतीतदन्ते निहिते चकर्तुः ॥७७
संस्कर्तुमुच्चैस्तनहेमकुम्भौ भ्रातर्विधाता यतते स्वयम्भो ।
तेजांसि तूत्तेजयितुं हि नासामिषेण भस्त्रा रचिता तया सा ॥७८
दग्धं क्रुधाकामधनुर्हरेण पुनर्जनिं तद्विधिनाऽदरेण ।
प्राप्य भ्रुवोर्युग्ममिषेण सत्याः सुबालभावं लभते सुदत्याः ॥७९

× कामदेवः । * नैवेद्यविशेषः ।

कोदण्डवान्तायतलोचकान्तादपाङ्गवाणान्त्यजतीति कान्ता ।
अस्माकमत्रैव मनोहरन्ती +वैरस्य सत्वं *परमुच्चरन्ती ॥८०
मृगीदृशः कुन्तलसंग्रहेण परास्तपक्षः शिखिराड् रयेण ।
बिभर्ति युक्तं ~कक्कुबन्तरन्तु प्रवर्तकाडम्बरभृत् समन्तु ॥८१
शेषो नतभ्रुवोऽनेन वेणिबन्धेन निर्जितः ।
वृतः शुचा रुचा पाण्डुरन्यथा समभूत्कुतः ॥८२
समं शिरोजैः सुरभिर्नतभ्रुवः स्वचामरस्यात्र तुलैषिणो भवत् ।
अनागसेवालतयापि चापलं वदत्यदः पुच्छविलोलनादलं ॥८३
मायापि माया न समर्थिता या कायाप्यकायात्र(न्य)जनीचितायां ।
सुरीतिकर्त्री च सुवर्णभावाद्भुवीत्यहोऽसौ प्रवराऽवरा वा ॥८४
अस्या हि सर्गाय पुरा प्रयासः परः प्रणामाय विधेर्विलासः ।
स्त्रीमात्रसृष्टावियमेव गुर्वी गुर्वीत्यतोऽसौ पदसम्पदूर्वी ॥८५
इतः परा सम्प्रति मेनकापि समुद्विधानामतिलोत्तमापि ।
सदापरम्भादरमित्यतस्तु जानेऽप्सरस्नेहविधानवस्तु ॥८६
सदुष्मणान्तस्थसदंशुकेन स्तनेन कृत्वा मुकुलोपमेन ।
चेतश्चुरायापटुता तुला वा स्वरङ्गनामानमिता रुचा वा ॥८७
असौ कुलीनापि पुनीतभावाच्चेतश्चुरा वा पटुता तुला वा ।
श्रीव्यञ्जनस्फीतिमतीव देहान्तस्थोष्मवृत्तेति पुनर्ममेहा ॥८८

~ शत्रुत्वस्य सद्भाव, पक्षे वै रस्य सत्वं सरसत्व ।

* परमत् चरन्ती, परं उच्चरन्ती वा ।

\+ सरस्वती दिशा च ।

कायादितो भान्ततया च मे काविस्येव कृष्णस्य सतां विवेकात् ।
जगुः स्त्रयं राजमणस्त्वपूर्वामिमांलसन्मङ्गलमञ्जु दूर्वां ॥८६
वामामिमां वेद्मि तथाभिरामां नामापि यस्यः किल मातु सा मा ।
यद्वापदोरेव मदोज्झिता साम्रुष्यास्स्थितैवश्च ममाभिलासा ॥६०
पुन्नागपुत्रीयमहो पवित्री कृतावनिः कात्र तुला भवित्री ।
सा नागकन्यापि यतो जघन्या क किन्नरीणान्तु नु नैव धन्या ॥६१
ये येऽनिमेषा विचरन्तु ते तेऽप्सरस्सु नो मे तु मनोऽधिशेते ।
इमामिदानीं मम सौमनस्यं सुधाधुनीमेतितरामवश्यम् ॥६२
निर्माणकाले पदयोरुतात्राम्रुष्या यदुच्छिष्टमहो विधात्रा ।
प्रयत्नतः प्राप्य ततः कृतानि ख्यातानि पद्मानि तु पङ्कजानि ॥६३
सुवेषु शुम्भत्सरकैकदेव्याः कादम्बरीमुज्ज्वलवर्णसेव्यां ।
स्तवीमि या कर्णपुटेन गत्वा मदप्रदा मन्मनसीष्टसत्वा ॥६४
अद्वैतवाग्यद्विजराजतश्चाधिकप्रभाव्यास्य मदोऽस्त्यपश्चात् ।
दिदेश वाणान्मदनस्य शुद्धया पिकद्विजोऽभ्यस्यतु तान्सुबुद्धयाः॥
चारुर्विधोः कारुरुता मृतात्मा स्त्ररुक् सदारूपनिधेरुतात्मा ।
पद्मोदरादात्ततनुः शुभाभ्यां विभ्राजते मार्दवसौरभाभ्यां ॥६६
गौरीदृशीयं वृषशर्मवास्तु कृष्णश्रियः किं महिषी ममास्तु ।
प्रसक्तयेऽनङ्गमयप्रभावा या रोहिताद्येषु वरस्य सा वा ॥६७
करौ विधेः स्तस्त्ववरौधियापि सवेदनस्येयमहो कदापि ।
नमोस्त्वनङ्गाय रतेस्तु भर्त्रे स्मृतमैव लोकोत्तररूपकर्त्रे ॥६८
यदेतदङ्गं नवनीतमस्ति श्रीकामधेनोरमृतप्रशस्तिः ।
कुतोन्यथा स्वेदपदाद्द्रवत्वं प्रयाति लब्ध्वा खलु घर्मसत्वं ॥६६

श्रियः स्वकीया सुधियश्च गुर्वी पद्माय सद्मान्तरियं स्विदुर्वी ।
कलांशमात्रग्रहणेन योग्या भोग्या समन्तादिह सा मनोज्ञ्या ॥१००
स्फुरत्कराग्रा मृदुपल्लावा चाधरश्रिया नाधिकलम्बवाचा ।
समस्तु सद्यः स्मितपुष्पिताऽऽभ्यां नवालतेयं फलिता स्तनाभ्यां ॥
कर्णोर्मिभिर्नां कुसुमेषु मान्यां समन्ततः कौतुतभृक् सुमान्यां ।
नखाच्छिखान्तं सुमनोभिरेतु चक्रेऽतिशस्ते स्तनकुड्मले तु ॥१०२
स्वच्छदलक्षणवतीयं सती उरोजश्रिया फलोदयवती ।
सत्सु लताख्यातास्विति जाने सौरभार्थमपि सुमनः स्थाने ॥१०३
शशिनस्त्वास्ये रदेषु भानां कचनिचयेऽपि च तमसोभानां ।
समुदितभावं गता शर्वरीयं समस्ति मदनैकवल्लरी (मञ्जरी) ॥१०४
मृदुत्वं मृदिमलक्षणे रणे काद्रवेयमपि वक्रिमक्षणे ।
अञ्जनं जयति रूपसम्पदि एतदीयकवरीति नामदिक् ॥१०५
ईदृशीमपि तु पूतभारतामाप्य मे किमु न पूतभारता ।
यामि नीतिविदियामसारतां यामि नीतिविदियामसारतां ॥१०६
साम्प्रतं मम तु कामदारताञ्जीयमप्यततु कामदारतां ।
प्राप्य यामपि तु तामसारतां संसृतिस्त्यजति तामसारतां ॥१०७
अतो यौवनारामसिद्धिस्ततः श्रीफलाभ्यामिदानीमिहोद्भूयते ।
महाबाहुवल्लीमतल्लीतले यद्विलोक्यैव लोकोऽपि मोमूह्यते ॥१०८
इयं नाभिवापी रसोत्सारिणी लोमलाजीजलाजीव चञ्चयते ।
स्मरः शिश्वकस्तत्पदन्यासहेतोर्वलिन्याजतः पद्धतिः स्तूयते ॥१०९
कर्मकरीति नाम्नास्यास्तुण्डिकेरी महौजसः ।
समाख्याता फलं लब्धुं बिभ्रन्तु रदवाससः ॥११०

प्रीतिप्रः परमेषा हि गुणालङ्करणा सती ।
कुतोऽनङ्गाङ्गना तु स्याद्रतिरेवन्तु मे मतिः ॥१११
त्रिवर्गसर्गसम्पत्तिरनया प्रतिभासते ।
अस्माकमिति सम्भाति भर्येति महतां मते ॥११२
सारभूतामिमां सम्यक् प्रतिपद्य यवीयसीं ।
संसारः सार्थनामासावधुना मादृशां दृशि ॥११३
यच्चेतनाचरितमस्ति तदेव चेतः—
श्चेत्केवलं कलयतीत्थमनङ्गरेतः ।
श्रीरूपमम्बुजदृशो विशदं स्वयन्तु,
तत्केवलं सपदि वर्णयितुं वहन्तु ॥११४
सुष्ठु श्रीसुदृशः स्वरूपकलनं कः ख्यातुमीशोऽनकं;
दृष्टोऽनङ्गमवं सुचारुकरणोऽप्यङ्गस्फुरत्संकथः ।
शस्तेनापि किमायुधेन कलितं व्योम्नः पुनः खण्डनं,
नर्मोक्तौ सुगुणादतिर्विशमये कल्योऽरथत्वार्थनः ॥११५
(सुदृशः कथनं नाम चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
तस्येयं कृतिरात्मसौष्ठववतया श्रीमन्मनोरञ्जनी,
सर्गः साधु दृशोत्तरं विदधती जीयादिवेत्थं जनी ॥११६

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये एकादशः सर्गः समाप्त.



अथ द्वादशः सर्गः

शिवमों शिवमों नमोर्हमद्य शिवमों ह्रीं ऋषिवन्दितं तु सद्यः
वशिवं शिवरैरूपासितं च वृषिवोध्यश्च सुधाशिवोध्यमश्वत्
शशिवन्निशि वर्तते महस्ते दिशि बन्धुर्मषिवर्तिनां नमस्ते
तृषिवारिशिवारिधारिणेवा शिवमेव सिवचोधिदेवतेऽम्बा
ऋषयोऽस्मिशयोभयोपयोक्त्री शिवमुर्वीमयिवः पदोपमोक्त्री
वरदं वरदर्शनश्च येषां चरदन्तश्चरदम्भदुष्टलेशान्
वृषचक्रमपक्रमप्रभाव प्रतियोगि प्रतियोगि च प्रभावत्
प्रवलेऽत्र कर्लेर्दले खलेनः शिवमेवासिवदस्तु मेत्तुमेनः
कलशः कलशर्मवागनूनदलसंकल्पलसन्फलप्रसूनः
वसुधामसुधावशात्समुद्रः शिवतातिं कुरुताच्चरामरुद्रः
शशिवद्दृशि बल्लभं प्रजायाः शिशिरच्छयतयाध्वनीह भायात्
गणनैकसमाश्रयात्समतं त्रितयं चातपवारणोक्तमेतात्
परमेष्टिरसेष्टि तत्पराणीति सतां श्रोरसतारतम्यकाणिः
किल सन्ति लसन्ति मङ्गलानि सुतरां स्वस्तिकमञ्जुवाग्मुखानि
दृशि वः शिवमस्तु हे सुरंशा मृदुवेशा कुलदेवतापि मे सा
शिवमाशिषियर्तते च येषां गुरवः श्रीपुरवर्तिनोऽपि शेषाः
शिवपौरुषदोरुशर्मशक्तिमनुगन्तुं मनुभिस्त्रिवर्गभक्तिः
कथितापथितावदस्मि गौरी शिवमारुता भगवान् जयोक्तिमौलिः
सुचिराच्छुचिरागतोऽधुनाथ न वियुज्येत पुनर्ममात्मनाथः

बलिनं नलिनस्त्रजानुबन्धवशगेत्थं दयितन्तु सा बबन्ध
स्रगहो सुदृशः शयोपचिघा द्विषते स्तम्भकरीव भाति विद्या
जयवद्धसि सा पुनः प्रगत्याऽजनि वेणीव तदाश्रियो जरत्याः
सुममाल्यमिदं वितीर्य चेहातुलसम्मोदभरातिपीनदेहा
उपनीतवतीप्रसादमेषा स्वयमन्तः शयमीशितुर्विशेषात्
सुखतो हृदि गिःश्रियोः प्रणेतुरियमास्थातुमथान्तराघनेतु
प्रमुमोच सुमोच्चयोत्थमालामिषसीमोचितसूत्रमेव बाला
सुमदाममरेण कण्ठकम्बुश्रितमस्याधरजेयराजजम्बू
विनताननवारिजा जवेन स्वयमासीदियभव किन्तु तेन
किमसौ ममसौ हृदाय भायादिति काकुत्थमनङ्गमर्गलायाः
अतिलम्बितनायकप्रसूनस्तवकं माल्यमुदीक्ष्य सोऽथ नूनं
नृप आह स साहसन्तु मे या तनया साम्प्रतमस्ति चेत्प्रदेया
भवताद्भवतां प्रसन्नपादपरिणेत्रीति वरं ममानुवादः
किमु सोस्ति विचारकृत् पयोदः परियच्छन्निह चातकापनोदं
अभिलाषभृतेथ पर्वताय प्रतिनिष्काशयतो ददाति वा यः
हृदयेन दयेन धारकोऽसि त्वममुष्यायदनुग्रहैकपोषी
असंमञ्जसवार्धिराशु भावात् परितीर्येत किलेति बुद्धिनावा
सुमदामसमङ्कितैकनम्ना किमिवाधारिरुचिर्मदीयधाम्ना
वरवागिति निर्जगाम द्रष्टुं फलवत्तामथवोत्सवस्य स्रष्टुं
मम धीर्यदुपेयसारिणी वा भवतोऽस्मद्भवतोपकारिणी वाक्
श्वशुराश्वसुराजिरेषु कामे मनसे किन्न भवेद्भसद्य वामे
अहहाग्रहहावभावधात्री मम च प्रेमनिबन्धनैकपात्री

भवतां भुवि लब्धशुद्धजन्मावर आहेति समेतु माम तन्मां
इयमभ्यधिका ममास्त्य सुम्यस्तुलनीयापि न साम्प्रतं वसुम्यः
भवते नवतेजसे प्रसाद इति वाक्यं खलु सुप्रभा जगाद
सुरभिर्नु रभीष्टदर्शना मे मनसीयं सुमनस्यथास्त्ववामे
परितश्चरितं मयैतदर्थं मम सर्वस्वमिहैतया समर्थम्
किल कामितदायिनी च यागावनिरित्यत्र पवित्रमध्यभागा
तिलकायितमञ्जुदीपकासावथ रम्भारुचितोरुशर्मभासा
वनितेव विभातु निष्कलङ्कासफलोच्चैस्तनकुम्भशुम्भदङ्का
विलसत्त्रिवलीष्टिनाभिकुण्डा शुचिपुष्पाभिमतप्रसन्नतुण्डा
द्विजराजतिरप्क्रियार्थमेतल्लपनश्रीरिति शिक्षणाय वेतः
द्रुतमद्यतमुष्टिनाथ यागगुरुराडेनमताडयद् विरागः
यदभूद्वचसात्रिपूरत्नीति भुवि रत्नत्रयवच्छ्रियः प्रतीतिः
द्वयतः स्थितिकारणैकरीतिर्मृदुनि श्रेयसके यशःप्रणीतिः
गुणिनो गुणिने त्रयीधराय मृदुवंशाय तु दीयते वराय
त्रिविशुद्धिमता मया जयाय ह्यसकौ कर्मकरी शरीव यायत्
सुजनात्तु मनाक् समर्थनं च रवये दीप इवात्र नार्थमश्वत्
उररीक्रियते न किं पिकाय कलिकाम्रस्य शुचिस्तु संप्रदायः
मृदुषट्पदसम्मताय मान्या विलसत्सौरभविग्रहाय काऽन्या
शुचिवारिभुवसमुद्भवायाः परमस्या स्विदमुष्मकैतु भायात्
समभूत्क्रमभूमिरेकधा चाखिलकानीनजनो मनोज्ञवाचा
कुशलैः समवर्षिसम्यगेवास्मदमीष्टं परिवारिसम्पदे वा
किमु धीवरतोऽमुतोऽपरस्य वशगा वारिचरी ह्यसौ नरस्य

भवता दवलादमीष्टमेव सुजनेभ्यो भुवि भाविदिष्टदेवः
कुसुमानि सुमानिनीभिरेतत्फलवद्वक्तुमिव चणं तदेतत्
रदरश्मिमिषाद्विसृष्टितानि सुतरां सूक्तिपराभिरुज्वलानि
यदपि त्वमिह प्रमाणभूरित्यभिवृद्धैरनुमानितोऽसि भूरि
इयमाश्रयणेन वर्णशाला जयतेनामपि भाविकास्तु बाला
वर एव भवानि यन्तु वाराऽस्त्युभयोर्विग्रहलक्षणं सदारात्
जय एषा तु इमां पराजये स्यादथवेयं वरमेव सन्निधे स्यात्
इयमाश्रितलक्षणास्ति बाला जायते नाम परिग्रहप्रकाला
भवतात्वबलाबलेन वार्याप्यमुकव्यञ्जनसम्भृजैव कार्या
हृदयं सदयं दधाति विद्धं स्मरवाणैरनयानयान्सुसिद्धं
समभूदिति साक्षिणीव तस्य सुममाल्येन करद्वयी वरस्य
वरदोर्द्वितयेन तद् हृदाजावुदिते नार्पयितुं सुमाल्यभाजा
ग्रहणाग्रगतस्त्रगंशकेन रुचिरोमित्युदयादि किन्न तेन
सुमदाममिषात्सतां पतिर्यः सुकुड्म्वं हृदयाम्बुजं वितीर्य
निजमम्बुजचक्षुषोऽधिकारं हृदये सप्रतिपत्तिकं चकार
करपल्लवयोस्ततोर्विभान्तीसुममाला पुनरुत्सवेन यान्ती
सुतनोस्तनविल्वयोस्सुमित्रात्र सुसाफल्यमगादियं पवित्रा
जयहस्तगतापि या परेषां कथितान्तःकरणप्रयोगवेशा
स्मरसौधसुभासिकामसेतु हृदि माला किल तोरणश्रिये तु
जगदेकविलोकनीयसाराद्रमणं दृष्टुमिवात्तसद्विचारा
निरियाय बहिर्गुणालुमानिन्नरनाथस्य सरस्वती तदानीं
भवता भवता प्रणायकेन तनयासौ विनयान्विता मुदे नः

शुभलक्षणरक्षणक्रियाया रसतोऽरं वृषतोधिकात्र भायात्
शुचिसूत्रमुपेत्य ना कृतार्थः वरितत्वाचरितस्य मापनार्थं
शुशुभे सुशुभेऽङ्गकेऽत्र वस्तुत्रिगुणीकृत्य समर्पयन्नदस्तु
मम दोहृदि वाचि कर्मणीव किमु धर्मे हि च नर्मशर्मणीवः
लभतामियमङ्गजा जगन्ति पुरुपर्वाभिनयात्स्वयं जयन्ती
मुदिरस्य हि गर्जनं गभीरमुदियायोचितमेव यत्सुवीर
धरणीधरवक्त्रतः पुनस्तत्प्रतिशब्दायितनित्यभूत्प्रशस्तम्
नयतो जयतोषयेरुपेतां प्रणयाधीनतया नितान्तमेतां
तनयां विनयाश्रयां ममाथानुनयाख्यानकरीति रीतिगाथा
नरपेन समीरितः कुमारः शिखिसम्प्रार्थितमेघवत्तथारं
समुदङ्करधारणाय वारिमुगभूद्भूवलये विचारकारी
नयनेषु विमोहिनी स्वभावात्प्रणयप्रायतयात्तयानुभावात्
अयि मामकलाधरोचितास्या किमुपायेन न मानिनीमया स्यात्
परिवर्द्धनमुत्तमाविदुर्वा ददतुस्तौ जिनपादयोस्सुदुर्वाः
सुषमा समजायताप्यपूर्वा समभूदंकुरितेव तत्र भूर्वा
द्रुतमेव वधूवरौ समेतौ घृतधारां जिनपादयोर्द्वये तौ
ननु योजयतस्स्म किन्ननीतां स्वहृदोः स्नेहनवृत्तिवत्पुनीतां
निजवंशविशुद्धिकामधेनुः पृथितेयं भगवत्पदद्वयेऽनु
इति दुग्धततिः सतीह ताभ्यां प्रतिक्लृप्ता सुतरां वधूवराभ्यां
परितर्पित एतयोर्जिनेश पदयोस्तद्युगलेन संयुगे सः
सुयशःस्थितये दधाष्ठविन्दुः समभूद्येन च लज्जितोऽयमिन्दुः
मधुरत्वमुदेतु यस्य दिक्षु जिनपाद्योर्दधतुश्च तौ तमिक्षुं

मदनं प्रतिलब्धुमेव भिचुरिति लोकस्य हि पश्यति स्म चक्षुः
समदात्समदानदस्तु वारिजयपाणौ सुदृशः करेऽधिकारी
स च सा जगदीशमासिसेच जगदीशाच्चदवातरत्तरे च
संतडिज्जलदेन वा जयेन प्रभुरासेत्वि सुलोचनान्वयेन
सुरशैल इवाप्रकम्प एषः मुदमेति स्म यतोऽखिलोऽपि देशः
समयं शुचिनामकं समेतः सघनान्दतया ववर्ष चेतः
जलमत्र सकाशिकाधिदेवः वरराजस्य करः समुद्र एव
प्रदधार स दानवारिमावमथवा मास्य सुलोचनापि यावत्
स्मरसाधिकसाधनप्रशंसा नरद्वारावति एव पूरणं सा
निपपात हि पातकातिगाया हृदि पुष्पस्रगनङ्गमङ्गलायाः
सकरः सकरङ्कभावतस्तां फलवत्तां नृपतेः समाह शास्तां
धरति श्रियमेष एव मुक्तः सुतरां सोऽद्य बभूव सार्थसूक्तः
उदितोदकवर्तनादरुद्रतनया रत्नसमर्पकः समुद्रः
खलु पल्लवितोऽभितोऽयमत्र फलतात्प्रेमलताङ्कुरः पवित्रः
करवारिरुहेऽम्यसिञ्चदारादिति वारां नृपतिर्जयस्य धारां
जलमाप्य समुद्रतो नरेशात् घनवत्प्रीतकरोऽभवत् मुदे सा
उदियाय तडिद्वदुज्ज्वलाऽऽरादनलार्चिश्च पुरोहिताधिकाराम्
कुसमाञ्जलिमिर्धराय वारैरुभयोर्मस्तकचूलिकाभ्युदारैः
जनता च मुदश्चनैस्तताल‌मिति सम्यक् स करोपलब्धिकालः
सुदृशः करमद्य वीरपाणेरुपरिस्थं खलु भाविनः प्रमाणे
पुरुषायति कस्य सूत्रमेनमनुमन्यस्मितमालिसत्कुलेन
परिपुष्टगुणक्रमोऽयमास्तामनुयोगः स्फुटमेवमेव शास्ता

प्रददौ वरपाणये सुमायाः करमक्लृप्तनिगूढमञ्जुमायाः
उपघातमहो करस्य सोढुं क समर्थोऽसि परिग्रहस्य वोढुः
नलकोमल एष मश्विरस्या अनवद्यद्रव एवमर्पितः स्यात्
सहसोदितसिप्रसारतान्ताकरसम्पर्कमुपेत्य चन्द्रकान्ता
तरुणस्य कलाधरस्य योगे स्वयमासीत्कुमुदाश्रयोपभोगे
उभयोः शुभयोगकृतप्रबन्धः समभूदञ्चलवान्तभागबन्धः
न परं दृढ एव वानुबन्धो मनसोः श्रियां स बन्धो
परघातकरः करोऽस्य चास्या नलिनश्रीहर एवमेतदास्या
द्वयमप्यतिकर्कशैः किलेतः किमु कार्पासकुशैः स्म बध्यतेऽतः
स्वकुले सति नाकुलेन्दशेन सुखतः सम्मुखतत्त्वशिक्षणेन
अनयोस्त्रयमाणयोः पयोऽपि स्मरजं शान्तिकवारिभिर्व्यलोपि
वसुसारमुदारधारयाऽऽरादुपकाराय मुमोच काशिकाराट्
तमुदीच्यमुदीरिते जने तु सतयोः सात्त्विकरो महर्षहेतुः .
हुतधूपजधूमधन्यधाम्नानुतते धामनि मण्डपेऽपि नाम्ना
मनुजा अनुमेनिरेतदान्तमनयोः सात्त्विकमेतदश्रुतजातं
ककुभामगुरुस्थलेपनानि शिखिनामम्बुदभांसि धूपजानि
खतमालतमांसि खे स्म भान्ति भविनां त्र्यब्दबच्छवीनि यान्ति
हविषा कविसाक्षिणा समर्चीरनुरागोऽप्यनयोर्गभ्रदर्ची
क्षणसादधिकधिकं जजृम्भे जननायामुदुपायनोपलम्भे
न सुधावसुधालयैस्तु पीतोत्तममस्यास्तु हविकवीन्द्रणीतौ
मखवन्हिविदग्धगन्धिनेऽस्मायनुयान्तो हि सुधान्धसोपि तस्मात्
ननु तत्करपल्लवेसु मर्त्वं पथि ते व्योमनि तारकोक्तिमत्त्वम्

जनयन्ति तदुज्झिताः स्म लाजानिपतन्तोऽग्निमुखे तु ‡जम्भराजाः
नम एतदमङ्गमङ्गलार्थमभवद् होमरवश्च तृप्तिसार्थः
मुहुरेव मखे सकाम्यनादः यजमानाय जिनेशिना प्रसादः
विशदानि पदानि गेहिसानौ परमस्थानसमर्हणानि वानौ
गतवत्स्युरनागतानि ताभ्यां कलिताः सप्तपरिक्रमाः क्रमाभ्यां
परितः परितर्पितानलं तं कनकाद्रीन्द्रमिवाधुनोल्लसन्तं
मिथुनं दिनरात्रिवज्जगाम सुखतोन्योन्यसमीक्षया वदामः
प्रथमं भुवि सज्जनैर्वृ त इति वामोऽपि सदक्षिणीकृतः
स्वयमाशु पुनः प्रदक्षिणीकृत आभ्यामधुना शुशुक्षिणी
हिमसारविलिप्तहस्तसङ्गे मिथुने वेपथुमञ्चतीह रङ्गे
मुररीमुररीचकार काऽऽरान्मदनाग्नेरुतफूत्कृतेर्विचारात्
स्फुटरागवशङ्गतोऽधरं स सुतनोः सम्प्रति चुम्बतीह वंशः
स्तनमण्डलमीर्षयेति वाऽलङ्कृतवान्मञ्जुलवागसौ *प्रवालः
पटहोऽवददेवमङ्कशायी मुरजोऽसौ तु जडः सदाभ्यधायि
सदसीह च वंशजो हरेणुरदवासः परिचम्बको नु वेणुः
बहिरेव गुणैर्य एष तान्तस्त्वनुरागस्थितिलाल्यते किलान्तः
पुनरस्ति विरिक्तको मृदङ्गः स्फुटमाहेति स झर्झरोऽपि चङ्गः
निवहन्तमदाद्धरीयसे तु दशनौ जम्पति कीर्तिपूर्तिहेतू
मदविन्दुपदेन कारणनिद्धिषतां दुर्यशसे करेणुजानि
सुहृदां भुवि शर्मलेखिनी वा द्विषदग्रे पुनरन्तकस्य जिह्वा
कवरीव जयश्रियोऽर्पितासि लतिकापाणिपरिग्रहे चिताऽसीत्

‡ दन्ताः । * वीणादण्डः ।

इयमाह यमात्मवानरं यान्विषमानुत्तरदक्षिणाध्वगम्यान्
गमिताङ्कमिताखिलप्रदेशोऽरुणदम्याञ्जितवान्ध्वरातलेऽसौ
समदायि जनेश्वरेण मह्यामपि पद्मा प्रणयेश्वराय शय्या
यदहीनगणैर्नरोत्तमाय विषदैः संघटितेति सम्प्रदायः
न हि किं किमहो प्रदत्तमस्मै ददता तां तनुजामपीश्वरेण
मनुजातिसुजाति नात्रिवर्गप्रतिसर्गोऽस्य कृतो नरोत्तमेन
मनुजैरनुविस्मयं तदानीमिह राजन्वति पत्तनेऽप्यमानि
करमुञ्चनमित्यनङ्गरम्यं वचनं स्पष्टतयाऽऽदराभिशम्य
नरपार्पितमादरात् ग्रहीतमतिना श्रीपतिनापि संग्रहीतं
जगतां तृडुपायनोऽपि कूपः किमु नो वारिदवारिदस्वरूपः
प्रणताप्रणतारिणापि जातुमखमार्गे न हुता दरिद्रताः तु
वसुधैककुटुम्बिनाथ साऽऽरादुत चिन्तामणिमाश्रिता विचारात्
करपीडनमेष बालिकायाः कृतवानुद्धृतवाञ्छनोऽत्र भायात्
परमस्थितिसाधनैकबुद्धिश्चरणाङ्गुष्ठगृहीतिरेव शुद्धिः
पुरवो ननु पृष्ठरक्षिणो वास्त्यरिहन्ताभुज एष दक्षिणो वा
प्रजया परिपूर्यते पुरस्तादिति वामे क्रियते स्म सा तु शस्ता
मिथुनस्य मिथो हृदर्पणस्य किमहो यच्च पदं न तर्पणस्य
प्रणयोत्तममन्दिराग्रवस्तुवदभूत्स्वस्थलपूरणे पणस्तु
छदिवत्सरलाम्बुमुक्तलक्षणेऽसि जडतायाः प्रतिकारिणी सुकेशि
गृहमात्रजते सतेऽथ वामा क्रियते नाम मया सदाभिरामा
प्रतिकूलविधानकाय वामां वृद्धेभ्योऽतिथये तुङ्गेऽथ वामां
गृहकर्मणि भाषणेन वामामनुकर्त्रीमनुभावयामि वा मां

सरलामनुमन्यवंशजां मां कुरुषे कान्तनितान्तमेव वामां
इह चापलतेव सम्वदामि सुगुण त्वं तव कर्मणेऽर्हयामि
यदभून्मृदुमन्द्रवाद्यनाद इतरस्यास्तु यथारुचिप्रवादः
समदीयहृदीप्सितोऽनुवादः प्रभवेदित्यपि शारदाप्रसादः
सुलभीकृतदुर्लभेयमेका जगतां वर्णविशोधिनीनिषेकात्
प्रवरोऽयमियानिमां कुमाली कृतवानेव वधूं सुपुण्यशाली
गलकन्दलकम्बुराट् समुक्तविलसद्वारिधियाततत्वयुक्तः
अथ तद्वितसम्बिरोधजित्सन्नधुना धर्म्यनिवेदिनोध्वनीत्सः
रतिवृत्तकुलोन्नतिस्त्वतिर्यङ्मतिरित्यत्र करग्रहेऽवतीर्य
अपवर्गसमुद्दतिश्च यस्मादिममाशंसति सज्जनोऽपि तस्मात्
अशनिर्व्यसनाद्रये विवाह इति देवः पुरुराट् स्वयं समाह
तमुपेत्य चयः सुदुष्प्रवाहपतितः सोऽथ निगद्यतां विवाहः
अपि विश्रमसम्प्रदानशस्याव्रजतो ब्रह्मपथि प्रभोः समस्या
गृहितेत्यनुयोगिनः किलास्यां कथमास्या दुरतौघकारिका स्यात्
महतां पदसम्पदिष्टवारार्थिजनेभ्यः सुतरां समुत्ससारा
सुकृताङ्कुरशालिनी प्रतोली न किमित्यत्र सुशास्यशर्ममौलिः
न करः किल शौचकृद्विभाति किमु चक्रेण रथोऽथवा प्रयाति
वचनन्तु समर्थ्यतामितीयन्मिथुनेनैव तथाश्रमो द्वितीयः
महिमासहिमारजिच्छ्रियस्तु नियताङ्गोऽपि जितेन्द्रियः समस्तु
गुरवोभिवधूवरं ददुर्वा शुभसम्वादकरी पवित्रदूर्वा
ललितास्स्म लसन्ति हृश्विंशा वचसा निम्नसमङ्कितेन येषां
असि जीवननायकस्त्वमस्या असकौ ते हृद्खण्डमण्डनं स्यात्

सरसः सुततामृते कुतश्रीः कमलिन्यै किल यत्पुनः सदस्त्रि
सुपुलोमजयेव देवराजः सुदृशा ते जयदेव नामभाजः
विबुधैः समितस्य जैनधर्मकृपया सम्भवताच्च नर्मशर्म
पठितं तु पुरोधसा निशम्य शिरसोद्धर्तुमिवेदमत्र सम्यक्
नमतः स्म गुरूनुदारभावैर्विनयाश्रास्त्यपरा गुणज्ञता वै
अनयोः करकुड्मलेऽलिमालायितमेतन्मखधूमसन्भृदिम्ना
अलिके तिलकायितं प्रतीष्टे विनयेनाभिनिबद्धतन्महिम्ना
मम शान्तिविवृद्धिरहसान्तु प्रलय. सत्कृतसेमुषीति भान्तु
हृदये सुदये समस्तु जैनमथवा शासनमर्हतां स्तवेन
उचितामिति कमनां प्रपन्नौ खलु तौ सम्प्रति जम्पती प्रसन्नौ
कुसुमाञ्जलिमादरेण ताभ्यः सुतरामर्पयतः स्म देवताभ्यः
अनयोः करकञ्जराजिसेवामिव कर्तुं सुकृतांशसम्यदेवा
मृदुपादभुवीष्टदेवतानां समभूत्साकुसुमाञ्जलिः सुमाना
प्रिययोः श्रिय ईक्षणक्षणेन शुचिनीराजनभाजनप्रणेन
मृदुलाञ्जनसंयुजाहितेन दिनरात्रीश्रमिमाश्रिते हितेन
पिप्पलकुपलाकुलौ मृदुलाणी विलसत एतौ सुदृशः पाणी
सहजस्नेहवशादिह साक्षाद्वलयच्छतः प्रमिलतिलाक्षा
अरिकरिकुलपरिहरणपराभ्यां नयरयमयजयनृपतिकराभ्याम्
योद्धुमिवास्यानवलरुचाभ्यां कञ्चकमञ्चितमपि च कुचाभ्याम्
स्नेहनमुच्चारितमवतार्य त्रिवर्गवर्त्मनि गत्वोद्धार्यम्
अपवर्गप्रतिवददिव ताभिः सुदृशः सुवासिनीमहिलाभिः
कुचिरमुष्या फलतु सुनाभिः पुरुवरपुण्यकथाभिरथाभी

मङ्गलकम्बुजगानपराभिरित्येवमिहाभ्युदितं वाग्भिः
अथ कश्चन नाथनामवंशस्यवयस्यापि समीप्यतेवर्तंसः
परिहासवचोभिरेव धन्याभिजदासीभिरभोजयत् सजन्यान्
स क्रमप्यद आह काश्चनाडरं रचयन्त्वत्र हिते मनोपहारं
सतुषः खलु सर्वतोमुखं च प्रतियञ्छन्त्वथ काममोदकञ्च
अपि कोत्रिगुणाश्च गोपधाम्नि वृषसंयोजनकारणैकदाम्नि
सति वः समिताः सुपात्रनाम्नीति ददे भाजनकानि काप्यकामी
अनुमायि तदर्हदङ्गसृष्टेः सुविधाता निखिले जनेऽपि हृष्टे
अभवत् परिवेषिकासमाजः क्रमशो भोजनभाजनेषु राजन्
अनुबिम्बति सुन्दरे नवीनां दररूपोच्चकुचामितः प्रवीणा
स्वमुरोऽम्बरमाददे श्रियेऽवच्युतमाराव् पृथुलस्तनी ह्रियेव
अयि चेतसि जेमनोतिचारः सकलव्यञ्जनमोदनाधिकारं
शुचिपात्रमिदं कयेत्थमुक्ताः सहसा जग्धि विधौ तु ते नियुक्ताः
स्फटिकोचितभाजने जनेन फलितायाः युवतेः समादरेण
उरसि प्रणिधाय मोदकोक्तद्वितीयं निर्दयमर्दितं करेण
पदमत्र गतं बुभुत्सुराज्यं प्रतिबिम्बेऽत्र गतेऽपि सम्बिमाज्यं
अनुनीविनि वेशयन्स्वहस्तं चकरेदं च मुदाश्रितं ततस्तं
समुवाच सखीं युवेङ्गितज्ञा क्रमशोऽयं चमते न दित्सतान्ते
वरमस्य सुखाय तद्विलोमश्रणताद्व्यञ्जनमेवमिन्दुकान्ते
तव सन्मुखमस्म्यहं पिपासुः सुदतीत्थं गदितापि मुग्धिकासु
कलशीं समुपाहरत्तु यावत्स्मितपुष्पैरियमाश्रितापि तावत्
निपपौ चषकार्पितं न नीरं जलदाया प्रतिबिम्बितं शरीरं

समुदीक्ष्यमुदीरितश्चकम्पे बहुशैत्यप्रतिवाक् ततो ललम्बे
जलदापरिरब्धपूतवेशा च कियच्चारुकुचेति पश्यते सा
स्फुटमाह करद्वयी समस्यामिह भृङ्गारधृतेर्मिषेण तस्याः
अपि सात्विकसिप्रभागुदीक्ष्य व्यजनं कोऽपि विधुन्वतीं सहर्षः
कलितोष्ममिषोऽभ्युदस्तव वक्त्रे ह्रियमुज्झित्य तदाननं ददर्श
रसवत्यपि पायसस्मिता वा घृतवद्व्यञ्जनशालिनी स्वभावात्
मृदुलड्डुकुचाप्रिये वशस्तैरुपभुक्ता बहुवारयात्रिकैस्तैः
मम मण्डकमेहि तावदालेऽस्ति कलाकन्दमपि प्रदेहि बाले
वटकं घटकल्पसुस्तनीतः कटकं संकटकृद्दधामि पीत
मसुरोचितमाह्वयामि बाले सरसं व्यञ्जनमत्र भुक्तिकाले
मधुरं रसतात् पयोधराङ्कमधुना हारमिमं न किं कलाङ्क
उपपीडनतोस्मि तन्वि भावादनुभूष्णुस्तवकाम्रकाम्रतां वा
वत वीक्षत चूषणेन भागिन्निति सा प्राह चचूतदाशु भाङ्गी
किं पश्यस्यपि संरसेरपि न किं नो रोचकं व्यञ्जनम्,
तन्वीदं लवणाधिकं खलु तृषाकारीति नो रञ्जनम्।
तस्मात्सम्प्रति सर्वतो मुखमहं याचे पिपासाकुलः,
सात्राभूत्स्मितवारिमुक् पुनरितः स्वेदेन स व्याकुलः ॥
व्यवस्यतास्तं रसितुं जलत्यजः कृतावनत्या अपि संवयोभुजः ।
पृतञ्जले मन्दकलेन भूतलेऽपप्तुचिराप्तान्यदृशः किलामले ॥
इङ्गितेषु विफलीकृतो युवान्ते पुनः करनिगालने तु वा ।
सत्वरं सकलिताञ्जलिस्तयाऽसेचि साचिविधुताम्बुधारया ॥
परमोदकगीलकावली बहुशोऽमाण्डपिकैर्घनैस्तकैः ।
समवर्षिचलत्करस्फुरन्मणिभूषांशुकृतेन्द्रचापकैः ॥

सुखादिरसमाराध्यं सौधसम्पद्दलं कया ।
आत्महस्तोपमं प्रीत्या जन्महस्तेऽर्पितं स्यात् ॥
सुधारसमयं भूयो रागाद्यास्वादितं तु यत् ।
प्रियाधरमिव प्रीत्या श्रयन्ति स्माधुना जनाः ॥
आतिथ्ये वस्त्रुटिरेव तु नः स्पष्टपयोधरमप्यस्ति पुनः ।
सुखपुरमिदमिति जन्यजनेभ्यः पथपथ्यवदासीद्गुणितेभ्यः ॥
मृदुतमपल्लवगुणसमवेतैरवनेः कल्पांघ्रिपैरिवेतैः ।
शाखाचरणालम्बनभूतैः सहजायतविभवपरिपूतैः ॥
जनुषः सफलत्वं निगदद्भिः कुसुमानीव मुहुश्च बृहद्भिः ।
उभयोरितरेतरमुक्तानि प्रसभभावादथ मुक्तानि ॥
सुरभितसदनादुपेत्य सद्भिर्भुवि गीतास्वजडाशया महद्भिः ।
आश्विनसमये वयं मरुद्भिरिव नीताश्च कृतार्थतां भवद्भिः ॥
निशेन्दुना श्रीतिलकेन भालं सरोऽब्जवृन्देन विभात्यथालं ।
महोदया अस्ति सुसम्पदैवं युष्माभिरस्माकमहो सदैव ॥
द्रागकिञ्चनगुणान्वयाद्वतेदृग् न किञ्चिदिह सम्प्रतीयते ।
सत्कृतौ तु भवतां महामते कन्यका च कलशश्च दीयते ॥
सत्कन्यकां प्रददता भवता प्रपञ्चे,
दत्तं त्रिवर्गसहितं सदनाश्रमं चेत् ।
किं वावशिष्टमिह शिष्टसमीचणीयं,
श्रीमद्भिचेष्टितमहो महतां महीयः ॥
स्वागतमिह भवतां खलु भाग्याचिःस्वागतगणना अपि चाज्ञाः ।
किं कर्तुं सुशका अपि राज्ञां निवहामश्शिरसा वयमाज्ञां ॥

यच्छन्ति कल्पफलिना अपि याचनाभि—
रावश्यकं प्रणयिभिस्तु विनापि ताभिः ।
नीता वयं सपदि तर्पणमुत्सृजद्भिः,
हर्षत्तया तदधिकं बहुलं भवद्भिः ॥
अस्मत्पदस्य परिवादहरो विभाति,
युष्मत्पदाग्रमगुणो हि सदङ्कपाती ।
अन्यार्थसाधकतया विचरन्सुवंशो,
सम्यग्मिथस्त्रिपुरुषीमधुना प्रशंसेत् ॥
सम्पक्त्वयाभिहितमस्मदुपक्रियार्थं,
युष्माभिरिङ्गितमिदं न पुनर्व्यपार्थे ।
यत्कानि कानि न भवद्भिरिहार्पितानि,
हर्षत्तयाशु मुहुरस्मदभीप्सितानि ॥
कर्तुं लगनाः सस्तवं च तावदुदारं,
लोकाः श्रीजिनदेवविभोस्ते स्पष्टार्थं ।
पवित्रेण वै भावना समाख्यानेन,
नन्दककलोक्तिपः सोऽरं संभर्तुर्नः ॥

(करोपलम्भश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
कार्ये तस्य निरेति सुन्दरतमः सर्गोऽसकौ द्वादश—
संख्याकः प्रणयप्रयोगविषयोऽस्मिन् सुप्रबन्धे च सः ॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामल-शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये द्वादशः सर्गः समाप्तः

अथ त्रयोदशः सर्गः

स्वजनानुविधानुबुद्धिमाननुगन्तुं जगपत्तनं पुनः ।
सपयोदपतिः प्रियापितुः रुचया याचितवान् नयच्चिजं ॥१
न वदन्नपि काशिकापतिर्वलनेतुर्गुणिनो महामतिः ।
शिरसि स्फुटमक्षतान्ददौ ह्युपकुर्वन्नयनोदकैः पदौ ॥२
नगरी च वरीयसो विनिर्गमभेरीविरवस्य दम्मतः ।
भवतो भवतो वियोगतः खलु दूनेव तदाशु चुक्षुभे ॥३
समुपेत्य नियानडिण्डिमं कृतसत्वः स्वजनः प्रचक्रमे ।
गमनस्य कृते कृतेक्षणः कृतवानास्तरणं तु वारणे ॥४
ध्रुवमेव धुरं रथाग्रणीर्धृतवान् चक्रयुगे सुसंस्कृतां ।
कविकामविकारगामिनां लपने सम्प्रति वाजिनामपि ॥५
विकशान्ति कशन्ति मध्यकं स्म तदानीं विनिशर्म्य मेरिकां ।
पथिकाः पथिकामनामया न हि कार्येऽस्तु मनाग्विलम्बनं ॥६
सुवधूमियमस्ति सत्सती न परः स्पृष्टुमिमामिहार्हति ।
सुरथे स्वयमभ्यरूरुहन्निति सप्रांशुतरे सुखाशयः ॥७
न हि पीडनभीरुदोर्युगात्स्खलतात्स्निग्धतनुः प्रियादियं ।
स्मर आशुमतिश्चकार ताविति रोमाञ्चभरेण कर्कशौ ॥८
तनये मन एतदातुरं तव निर्योगविसर्जने परं ।
ललना कलवाग्मि किन्त्वसौ व्यवहारोऽव्यवहार एव यो ॥९
अयि याहि च पूज्यपूजया स्वयमस्मानपि च प्रकाशय ।
जननीति परिश्रुताशुभिर्मुहुराजौँस्तनुते स्म यो जितान् ॥१०

रथिनां पथि नायको जयस्स विभावानिव तेजसाश्रयः ।
निजया प्रियया समन्वितः पुरतो निर्गतवाञ्जनैः श्रितः ॥११
किमु वर्त्मविरोधिनो जना अधुना चापसरेत चैकतः ।
गजपत्तननायको मत्तस्त्वरमायाति परिच्छदान्वितः ॥१२
अपि निर्भयमास्थिताः कथं व्रजतीतः खलु वाजिनां व्रजः ।
गजराजिरितः समाव्रजत्यथवा स्यन्दनसञ्चयस्त्वितः ॥१३
किमु पश्यसि दृश्यते न किं जनसंघट्टनमेतदित्यतः ।
निजमङ्गजमङ्गजङ्गमं सहसोत्थपयधृष्टवर्त्मतः ॥१४
अपि पाणिपरीतयष्टिस्त्वयमग्रे तनमर्त्यसार्थकः ।
निजगाम यमं समुत्तरन् समुदारध्वनिमित्थमुच्चरन् ॥१५
विरहाविरहाशया बभुरनुकुर्वन् स च तान्ययौ प्रभुः ।
उपकण्ठमकम्पनादयः प्रवरस्याश्रुतचारुवारयः ॥१६
अनुगम्य जयं धृताननतिः प्रतियाति स्म समण्डलावधेः ।
अनिलं हि निजाचटात्सरोवरमङ्गश्रडलापतां गतः ॥१७
सुदृशा सहितस्ततोहितोऽनुगतोऽसौ नृपतेः सुतैः पुनः ।
अनुवासनयान्वितोऽनिलेस्सरस. सम्प्रति शीकरैरिव ॥१८
धवसम्भवसंश्रवादितो गुरुवर्गाश्रितमोहतस्ततः ।
नरराजवशाद्दशात्मसादपि दोलाचरणं कृतं तदा ॥१९
चिरतः प्रियचारुकारिभिः सुदृशस्सम्वरितापितुः स्मृतिः ।
प्रियनर्ममहाम्बुधावपि स्थितवान् मातृवियोगवाडवः ॥२०
पितरौ तु विषेदतुः सुतां न तथा जन्मनिजाङ्कवर्द्धितां ।
प्रविसृज्य विसृज्य तौ यथा दुहितुर्नावकमुल्लसद्गुणं ॥२१

विमवादिभवाजिराजिवाञ्जनतायां वनतां श्रितो भवान् ।
महितो दयितो भुवः प्रिया-सहितो वा सहितो ययौ श्रिया ॥२२
कियती जगतीयतीगतिर्नियतिर्नो वियति स्विदित्यतः ।
वियदङ्गणरिङ्खणेन ते सुगमा जग्मुरितस्तुरंगमाः ॥२३
रजसि प्रवले बलोद्धते मदवारा गजराजसन्ततेः ।
शमिते गमितेच्छुभिस्सुखादवबुद्धापदवी पदातिभिः ॥२४
खुरयातविदारिताङ्गणोर्जविवाहैर्विषमीकृतेध्वनि ।
चलितं वलितं समुच्चलच्चरणत्वेन शतांगमालया ॥२५
इतरस्य न वीरकुञ्जरस्सहतेऽयं करपातमित्यसौ ।
रविराशु तिरोहितोऽभवत् व्यनपाथिध्वजचीवरान्तरे ॥२६
यदसंख्यकरा नृपस्त्रपां भुवि नीता विभुनाऽमुना पुनः ।
क महस्तवतत्सहस्रिणो रविमश्वा ह्युदधूलयन् खुरैः ॥२७
द्विषतं हि मनांसि शितशोणोज्वललोलतां ययुः ।
त्रपया कृपयाथ वल्लभाविरहेणाविभयेन भूपतेः ॥२८
किमनर्गलसर्पिणे स्थितिं चमतादातुमहोबलाय मे ।
त्रपयेव रजस्ययोद्धते मुखमेवं नभसा निगोपितं ॥२९
अवरोधनभाञ्जि राजितो नरयानानि चलन्ति विस्तृते ।
अतिमात्रमनीकनीरधौ निदधुस्सत्तरणिश्रियं तदा ॥३०
प्रसृते खलु सैन्यसागरे मकराकारधरा हि सिन्धुराः ।
समुदञ्चितहस्तवन्धुराः क्रमशश्चेलुरुदीर्णवार्दरे ॥३१
अयनं कियदेतदिष्यते यदि दीर्घाध्वगत्राच्यतास्ति नः ।
इति गर्जनयान्वितस्त्वतो मयपर्गो व्रजति स्म वेगतः ॥३२

अपि कण्टककण्टकादिकं दलयन्तस्तमुपानदङ्घ्रिभिः ।
त्वरितं स्म चलन्ति पत्तयस्तुरगेभ्योऽपि रथेभ्य एव वा ॥३३
अनसां घनसारशालिनां जलयानोपमिनां समुच्चयः ।
बलवाजनिधौ सुविस्तृते स च वव्राज जवेन राजितः ॥३४
रथमण्डलनिस्स्वनैस्समं करिणां बृंहितमानि जुह्रुवे ।
पुलरेषु तुरंगहेषितान्यतिताराणि तरामराजतः ॥३५
दधता सुसृणि त्वरावता शिर उद्धायतदन्तमण्डलं ।
चलितोऽन्यगजं प्रतीभराट् बहु धुन्वन् कथमप्यरोधिसः ॥३६
गगनाङ्गणमाशु चञ्चलैर्ध्वजिनी सम्प्रति केतनाञ्चलैः ।
सरजो विरजो विभावितुं सहसा सा स्म विमार्ष्टि धावितुं ॥३७
डयनं नयनं प्रसार्यतां स्खलतीतः पतदङ्गनाकुलं ।
समुदीक्ष्य जवेन सौविदो भवति स्तम्भयितुं प्रविक्लवः ॥३८
अपि पश्यत दश्यमद्भुतं भरमुत्क्षिप्यमयोऽदयो द्रुतं ।
अभिधावति चायताधरः स्विदितोऽयं नितरां भयङ्करः ॥३९
अवलोक्य ललामलञ्जिकालपनं विस्मयमाप्तवान्युवा ।
न हि वेत्ति निजं स्मरादरस्तुरगाक्रान्तमपीत इत्यसौ ॥४०
इति वर्त्मविवर्त्तवार्त्तया सहसाप्तानि पदानि सेनया ।
पदवीह दवीयसी च या समभूत्सापि कनीयसी तया ॥४१
वनभूमिरुपागतागता जनभूमिर्ननु जानता नता ।
फलितैः फलिनैर्गताङ्गताप्युचितेन प्रभुणा सता सता ॥४२
ननु यस्य गुणैषणा मतिस्सहसा छादयितुं महीपतिः ।
विवराणि भुवोऽनुचिन्तयन्निव दृष्टिं तनुते स्म स स्वयं ॥४३

दशामाशु द्विपराट् वीक्ष्य तं विसरन्तं नृपमाह सारथी ।
विषयातिशयं महाशयोऽप्यनुगृह्णन्ननुषङ्गसम्भवं ॥४४
अपि बालवयस्का अमी समवेता अवमान्ति भूपते ।
विपिनस्य परीतवल्कला इव वृद्धस्य विनिर्गता इतः ॥४५
स्फुटयोत्कटया समुच्छ्वसन्नपि षट्खण्डिवलाधिराडितः ।
अतुला भवतां महीरुहामनुगच्छन्निव याति पन्नगः ॥४६
दरिणो हरिणा बलादमी तव धावन्ति मुधा महीपते !
करुणासु परायणादपि क पशूनान्तु विचारणा अपि ॥४७
द्विपवृन्दपदादिगम्बरः* सघनीभूय वने चरत्ययं ।
निकटे विकटेऽत्र भो विभो ननु भानोरपि निर्भयस्स्वयं ॥४८
विततानि वनस्य भो प्रभोः शिखिपत्राणि मनोहराण्यदः ।
भवतो विभवं विलोकितुं नयनानीव भवन्ति भूयशः ॥४९
विजरत्तरुकोटरान्तराद्दवबह्निर्विपिनस्य बृंहिणः ।
रसनेव निरेति भूपतेः रविपादाभिहतस्य नित्यशः ॥५०
×पृषदेष विषाणडम्बरं शिरसा नीरसदारुसम्भरं ।
निवहन्नुपयाति कातरः शनकैस्सम्प्रति हे महीश्वर ! ॥५१
सुफलस्तनशालिनी मुहुर्मुहुरङ्गानि तु विक्षिपन्त्यपि ।
ननु +सुनवतीव राजते द्रुममाला खलु विप्रलापिनी ॥५२
पलितेव पुनः प्रवेणिका विजरत्या गहनावनेरतः ।
समवाप सुपर्ववाहिनी भरतानीकविनेतुरग्रतः ॥५३

---

* अन्धकारः ।
× सरभः साम्भर इति भाषाया ।
+ गर्भिणीव ।

विधुदीधितिबन्धुराधरावलये व्याप्तिमती मनोहरा ।
नृपतेस्तु मुदे नदीकिणस्थिरतेवाग्रिमवर्षपत्रिणः ॥५४
गलितं निजतेजसा जयो हिमवत्सारमिव स्म मन्यते ।
अमुकं प्रवहन्तमग्रतो मनसासौ गगनापगाचयं ॥५५
पुलिनद्वितयाग्रवर्तिनी स्फुटशाटीसमायानुवर्तिनी ।
सरितः परितोषसंस्कृतिस्समभात् शाड्वलसारसन्ततिः ॥५६
कलहंसततिः सरिद् वृति-प्रतिवर्तिन्यतिकोमलाकृतिः ।
परितः परिणामनिर्मला सरलेवाथ बभौ सुमेखला ॥५७
स्फुटहंसजनेन सेविता विरजा नीरजसेन यान्विता ।
सरिता परितापनाशिनी जिनवाणीव तरङ्गवासिनी ॥५८
अभिरामतया सलक्ष्मणा सरितासीज्जनकात्मजेव या ।
सहसा सलवङ्कुशाशया दधती कञ्जगतिस्थिराशयं ॥५९
फलतां कलताभृतामिमे निपतन्तः कुरुहाम्रुपाश्रमे ।
शुकसञ्चिचया स्म यात्रिणां हृदुदीरन्ति नियुक्तनेत्रिणां ॥६०
नलिनी स्थलिनी विकस्वरा विजगीषोर्जगतां त्रयं तरां ।
मदनस्य निवेशरूपिणी स्थितिरेषेव यशोनिरूपिणी ॥६१
मकरन्दरजःपिशङ्गिताः स्मरधूमेन्द्रकणा उदिङ्गिताः ।
मदनोक्ततया मनस्विनां स्म मनः सम्प्रतितापयान्ति ते ॥६२
पुलिने चलनेन केवलं वलितग्रीवमुपस्थितो बकः ।
मनसि व्रजतां मनस्विनामतनोच्छ्वेतसरोजसम्भ्रमं ॥६३
शिविराणि बभुश्च दूरतः कलहंसोपमितानि पूरतः ।
परितो रचितानि वाससा विशदेनात्मगुणेन भूयशा ॥६४

अमितोऽमतिमन्ति निर्मलान्युचितायाततया लसन्ति ये ।
शिविराणि हसन्ति सन्ति ते स्म नु सौधानि भुवि भ्रुवाण्यपि ।६५
निजकीर्तिकुलानि कुल्यराट् सुगुणश्रेणिसमुत्थितान्यसौ ।
शिविराणि जनाश्रयोचितान्यवलोक्यापमुदं सुदर्शनी ।।६६
शिविरप्रगुणस्य शुद्धतानुगतस्यानुगतेक्षणः क्षणं ।
गुणकर्षणतत्परानसौ न हि शुक्लनापि सेह ईश्वरः । ६७
समवाप निवेशसन्निधौ नृवरो द्विप्रहरोक्तिमद्विधौ ।
तपने लपनेऽपि निष्ठिते मुखतः सम्मुखतः शिखावृते ।।६८
पृतनापतिपार्श्वमागतः कथमप्यर्थिगणेऽथ रागतः ।
रथवेगवशेन विक्लवः समभूत्तत्र वर सुमुत्सवः ।।६९
किमु भो भवता त्वरावता द्रुतमग्रे गमनेच्छुना हताः ।
न कुतोऽपि पलायते स्थलं जगुरेवं मनुजास्सकन्दलं ।।७०
महिलाभिरलाभि(वापि)दूष्यकं प्रसमीक्षासहिताभिरध्यकं ।
कथमप्युदिताल(र)कालिभिः परिनिस्विन्न कपोलपालिभिः ।।७१
अवधूय सटास्समुन्नयन् श्रवसी प्रोथमपि स्वनं नयन् ।
तुरगो विरराम नामवान् कविकाचर्वणचारुहेषया ।।७२
अवकृष्य च नक्रलावलिं नमयन्नात्मवपुः पुरस्तरां ।
उपवेशयति स्म तद्गतः सहसा सादिवरः क्रमेलकं ।।७३
सुमनस्सुमनोहरं बलं स्वनिमं सत्तमनागसङ्कुलं ।
बहुपत्ररथं ययौ मुदा तटसान्द्रं भटसन्मणेस्तदा । ७४
बहिरेव जना महिस्थले सघनच्छायमहीरुहान्तले ।
श्रमभारवशा हि पद्धतेः क्षणमेके विरमन्ति च स्म ते ।।७५

वसनाभरणैः समुद्धतैरगमास्तत्र सुरद्रुमा हि तैः ।
अवमान्ति रमास्स्म सम्मिता जनताया वनतानितस्थिताः ॥७६
विबभुः श्रमवारिवासितान्यनुकूलानि मुखानि सुभ्रुवाँ ।
सजलानि सरोजवीरुधां कमलानीव कलानि कानिचित् ॥७७
वदनाच्छ्रमनीरनिर्झरो मदनोदारधनुर्निभभ्रुवां ।
सदनादधुना रुचः परं स च लावण्यझरो हि निर्गतः ॥७८
भुजमूलसमुच्चयद्वये सुदृशां सिप्रशिवाशयान्वये ।
जलजोत्थरजांसि रेजिरे मलयोत्पन्नविलेपनानिरे ॥७९
नदरोधसि वायुचञ्चलात्तुरगादेव तरङ्गतो बलात् ।
रुचिमानधुना जनस्तथाऽवततारात्म्बुजसंग्रहो यथा ॥८०
अवरोधवधूर्नियोगवान् गलसंलग्नभुजोऽवतारयन् ।
तुरगादभिशश्वजे परं न पुनश्चारु चुचुम्ब तन्मुखं ॥८१
द्रुतं पुराप्त्वा वसतिं मनोज्ञामापात्य कायाकरणाकुलेन
यान्तोऽन्यतोऽभ्युद्धतबाहुनाऽऽराद्धुताः प्लुतोक्त्यामुहुरात्मवर्ग्याः
निक्षिप्तकिञ्चित्प्रकरं निवासं विस्मृत्य गच्छन्नितरेतरेषु ।
यूनां स हासैकनिमित्तमास्तावशिष्टभारोद्वहनाकुलस्सन् ॥८३
प्रस्वेदनिस्स्विन्नतयानिचोलमुत्सार्य सारं परमाददत्याः ।
उरोजराजौ रसिकः सुदत्यः कथञ्चिदालोक्य मुदं समाप ॥८४
अधस्स्थितायाः कमलेक्षणाया निरीक्षमाणो मृदुकेशपाशं ।
भुजङ्गभुङ्निर्जितबर्हभारं द्रुतं द्रुमाग्रात्समदुद्रुवत्सः ॥८५
उत्सार्य वासो वसिताङ्गखेदापनोदनार्थं सहसा सखीभिः ।
समस्यते सस्मयमास्यभङ्ग्या स्मालोक्यमानाविजने जनेन ॥८६

पर्यापतत्के तुकुलामगव्यपण्यापनर्पाते विपर्षि वितेनुः ।
विवृत्य दृष्यान्यभितोऽभिरामां तत्कालमेवापणिकाः क्षणेन ॥८७
खुरैस्तु नैसर्गिकचापलेन हतावताथानुनयन्त इत्थं ।
अश्वा धरित्रीं मृदुपादचारैर्जिघ्रन्त एते स्म च पर्यटन्ति ॥८८
आजिघ्रति प्राण(न)तमस्तकेऽश्वे नासासमीरोत्थरजश्छलेन ।
तदीयसंसर्गसुखोत्सुकाया बभूव सद्यः स्फुरणं धरायाः ॥८९
अङ्के मुहुर्वेल्लति वाजिजाते तदास्यफेनप्रकराः पतन्तः ।
तदङ्गसङ्गेन विभिन्नहारतारा इवामीर्विबभुर्धरित्र्याः ॥९०
वेल्लत्तुरङ्गास्यगलन्निफेनप्रकारसारा धरिणी रराज ।
तत्सङ्गमोत्पन्नसुखानुभूत्या विकाशिहासच्छुरितेव तावत् ॥९१
रजस्वलामर्ववरा धरित्रीमालिङ्ग्य दोषादनुषङ्गजातात् ।
म्लानिं गताः स्नातुमितस्स्म यान्ति प्रो·थायते सम्प्रति निम्नगाम्
पिपासुरश्वः प्रतिमावतारं निजीयमम्भस्यमलेऽवलोक्य ।
स सम्प्रति स्म स्मरति प्रियायाः द्रुतं विसस्मार पिपासितः ॥
सुरापगायाः सलिलैः पवित्रैर्मातङ्गतामात्मगतामपास्तुं ।
किलाम्बुजामोदसुवासितैः स्वैः स्नाति स्म भूयो निवहो द्विपानां ॥९४
स्तनश्रिया ते प्रथुलस्तनीभो नदेन यातीति विरोधवेति ।
लुब्धप्रतिद्वन्द्विपदो मदेन निषादिनोक्ता प्रमदा पथि स्था ॥९५
बलात्त्वतोत्तुङ्गनितम्बबिम्बा मदोद्धतैः सिन्धुवधूर्द्विपेन्द्रैः ।
गत्वाङ्कमम्भोजमुखं रसित्वाऽभिचुचुम्बेऽसौ कलुषीकृताऽऽशु ॥९६
निरस्य शैवालदलान्तरीयं मध्यं द्विपेन्द्रे समुपातेदमीयं ।
उन्मग्नमानावनितरां नदीयं जलैरथाच्छादि तटं नदीयं ॥९७

जलेऽमले स्वं प्रतिबिम्बमेकोऽवलोक्य नागः प्रतिनागबुद्ध्या ।
क्रोधादधावत् प्रतिहन्तुमाराच्चले पुनः शान्तिमसौ समाप ॥९८
वपुःस्थसन्तापकलापशान्त्या आकुम्भमम्भस्यभिमज्जतीमे ।
तद्धूमधामालिकुलं बलेन नभस्यभूतार्थतयोज्जजृम्भे ॥९९
यदेव भूयोऽपि पयोनिपीतमन्तस्थितोष्मातिशयेन स्रुतं ।
मतङ्गजानां वमथुच्छलेन तदेतदेवोद्गिलितं बलेन ॥१००
आरोपितोऽन्येन विषाणमूले सलीलमादाय मृणालनालः ।
भूयोऽम्भसोऽशैरभिषिंचितत्वात्परिस्फुरन्नङ्कुरवद्विरेजे ॥१०१
यथावदद्यावधि रक्षणेच्छा-परः करेणाशु विषच्छलेन ।
ददाविहादाय सुकीर्तिसूत्रमाधोरणाय द्विरदस्तदन्यः ॥१०२
परः करेणात्मनि रेणुभारं भूयः क्षिपन् संकलितादरेण ।
निरुक्तवान् सम्यगिहेभराजकेरेणुरित्याह्वयमात्मनीनं ॥१०३
नादातुमन्यद्विपदानदिग्धं गजेन न त्यक्तुमपीच्छताम्भः ।
धृताङ्कुशेनातितरां निषादी खिन्नः स्रवन्त्यास्सरुणावतारे ॥१०४
यावन्निपीतं जलमापगायास्ततोऽधिकं तत्र समर्पितं च ।
मतङ्गजेन्द्रैर्निजदानवारि न वंशिनः प्रत्युपकारशून्याः ॥१०५
मदोद्धतैः संदलिता पथीभैः शान्तान्तरङ्गैरिव सा सुधीभैः ।
अनागसे सम्प्रति सामजातैरधारि धूलिः शिरसा तथा तैः ॥१०६
तद्भालसिन्दूलदलेन रोषारुणेव पूत्कृत्य पतिं प्रतीतः ।
यावन्नदी व्याकुलिता जगाम द्विपा विनिर्गत्य गतास्वधाम॥१०७
स्म नेक्षते सन्निकटां गणेरुं न्यस्तं पुरस्माच्चि न चेक्षुकाण्डं ।
सस्मार सारस्य निमीलिताक्षः स्वेच्छाविहारस्य वने द्विपेन्द्रः ॥

निकेतनस्योभयतो द्विपेन्द्रवृन्दं वधूकुन्तलजालनीलं ।
दिनस्य पूर्वापरभागवद्धं बभौ यथा शार्वरमुज्ज्वलस्य ॥१०६

स्तम्भं समुत्खात्य परास्तवारिः स्वातन्त्र्यमत्रातितरामवाप्य ।
सशृङ्खलः स्वस्य पदानुवृत्त्या दानं ददौ कुञ्जरराज एकः ॥११०

उन्नम्रवक्रोमयकश्च लोष्ठो ग्रीवां दधानः सरलां तरूणां '
उदग्रशाखा नवपल्लवानि प्रत्यग्रमृष्टानि मुदा जघास ॥१११

चरन्निकेतं परितस्तृणानि त्रुट्यद्वितानाग्रगुणाप्तदोषः ।
निवारितः कर्मकरैः सरोषैः मुक्तस्तुरङ्गः स्म निबद्धतेऽन्यैः ॥११२

उत्क्षिप्तकाण्डाम्बरमार्गसर्गिमन्दानिलेनास्तमिताध्वखेदः ।
दूर्वाप्रतानास्तरणेषु लेभे दूष्येषु निद्रासुखमङ्गनौघः ॥११३

मयो निपीताद्धं पयोमुखं स्वमुन्नीय नक्रं व्यवधूय भूयः ।
उदक् जलांशैरभिभूतकुम्भां शुचं निनायोदकहारिणी सः ॥११४

इति कटकसनाथस्तस्थिवान् मर्त्यनाथः,
शुचिनि गगनपाथस्रोतसि स्वेच्छयाथ ।
तपति शिरसि पाथस्तावदागत्य माथः,
कविकृतगुणगाथः श्रीजिनो यस्य नाथः ॥११५

जयतादयतावशतो रसतोऽसौ नरेन्द्रसंयोगां,
य रह शारदासारधारणः पद्माभिरुचिः शुचिगः ।
गगननदीमधाप सुललितां राजहंस आख्यात-
स्तत्राम्भोजनिकायकायगतमार्गाधिरगतयातः ॥११६

(जयोगंगागत इति नामकश्चक्रबंधः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
पूर्तिं तद्गदितस्त्रयोदशतयाख्यातः समागच्छति,
यत्राधीनमनः प्रसाधनविधिः विज्ञानरागस्थितिः ॥११७॥

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये त्रयोदशः सर्गः



अथ चतुर्दशः सर्गः

अथ तीरारामे सरितायां रुचिरासीन्महती‡ जनतायाः ।
आत्मभूतनयताधिगमाय सुलालितारान्वितोत्सवाय ॥१
असुगतवैभववानिव तेन तत्र तथा गतसमीरणेन ।
समजनि सुरतविचारविशिष्टः दूरतोऽपि चायातः शिष्टः ॥२
दृष्ट्वाच्छायां तरुणोपात्तां हृष्टा सम्भोक्तुमिहागात्तां ।
अच्छाया स्वयमितः पवित्रीभूतशरीरासकौ भवित्री ॥३
अगदलसच्छायां परिपश्य सङ्गदतामनुययौ वनस्य ।
दूरे जरस्य निजीयधीतः पृथुलवलिभृतोऽनुरागिणीतः ॥४
बहुकल्पपादपैरपि रम्यं सुमनःसमूहतो भुवि गम्यं ।
नन्दनं वनमिवातिमनोज्ञं पुण्यपूर्षैर्बभूव भोग्यं ॥५
उच्चैः पल्लवमधोजटीति तपस्यतोऽन्यस्मै गुणरीति ।
अनोकुहस्य सुकृतसंगीतिरभूदतो यौवतप्रतीतिः ॥६
वागाश्रितसम्पदोऽभ्युपास्तिः कौतुकसंग्रहोऽमुकस्यास्ति ।
सद्य एव भुवि विवहनक्रिया स्पृहणीयास्तफलोदयश्रिया ॥७
विल्वफलानि विलोक्य सहर्षं निजोरोजमण्डलं ददर्श ।
सहसा तानि तथैव सुयोषा पुनरपि दृष्टुमभूदपदोषा ॥८
नेशायामूनि वल्लभानि तव कुचकुम्भवदियानिदानीं ।
भेदोऽस्तीति समाह वयस्या सदभिप्रायवेदिनी तस्याः ॥९

---

‡ नारदस्य वीणा ।

पश्य पिकामसुकां गुणमालिन्प्रिये मञ्जुलास्याश्चरवाली ।
हन्त हन्त चैषास्त्यतिकाली किन्न तवापि तन्वि कचपाली ॥१०
कण्टकितं पदमङ्कं नेतुः समधिकृत्य चापदमपनेतुं ।
कण्टकिताखिलतनुरजनीति तश्च तथा कुर्वती सुगीतिः ॥११
कुसुमावचये सरजस्कदृशः फूत्कर्तुमिवेशे सति सुदृशः ।
चुम्बति मुदश्रुनिस्सरणेन समभावीव समुद्धरणेन ॥१२
आस्यस्पर्द्धनफलं प्रदातुं विकशितकुसुममुद्यताऽऽदातुं ।
अलिना साम्प्रतमधरनुदारं सीत्चकार महिलैवमुदारं ॥१३
प्रतिनगभवस्थितौ सुजम्पती शुशुभाते तत्रेति सम्प्रति ।
भोगभुवः समुदाहरणेन तत्फलस्य समुदाहरणेन ॥१४
दारवज्रहाराङ्गिनां मनः परिस्फुरन्नेत्राङ्किताञ्जनः ।
ललितामलकावलिं दधानः सालसङ्गमं च वनवितानः ॥१५
परिफुल्लवदनमापुः सम्यक् मृदुलताभिरामतया गम्यं ।
मदनमनोहरं च गुणवत्यः नववयोन्वयं वनं युवत्यः ॥१६
पादपमाश्लिष्टवती वल्लीं समुदीक्ष्य मुदा युवतिमतल्ली ।
नेतारमिहालिलिङ्ग गाढं सरसतया घनमालाषाढं ॥१७
पश्य किलालिं समीपमेव जडभावाचरणाय मुदे वः ।
उत्फुल्लोत्पललोचनीयत इत्येवं धृतयेऽवददुद्धृतः ॥१८
हृदयं कमलनालकुलवाहो विदीर्णमस्ति दाडिमस्याहो ।
जम्भजृम्भितं कोमलभावं तवाश्चर्यतोऽभिवीक्ष्य तावत् ॥१९
करं करजकिरणैः कुसुममतिं क्वचिदप्यपकुसुमे सन्दधतीं ।
दृष्ट्वा युवतिं सखीजनेन स्मितपुष्पाण्यर्पितान्यनेन ॥२०

यमिति विटपमालिलिङ्ग रामा कुसमेषु युवतितोऽप्यभिरामा ।
तेनामोदपूर्णताऽदर्शि भूत्वा सहजेन कुसुमवर्षी ॥२१
तुल्यास्तरुणीभिश्च मरूणां तरुणानामिव यत्र तरूणां ।
विपल्लवा भावतयाख्याता लताः सतां सङ्गवतां वा ताः ॥२२
करस्फुरचम्पकवृन्तस्य सम्वादमिषादेकान्तस्य ।
चकार कान्तमतिथिमित्यधुना प्रगल्भतायामुत्तीर्णमनाः ॥२३
विजित्य विश्वं विशतस्तस्य हृदयेऽभ्युदयेशोऽनङ्गस्य ।
वन्दनमालामिव सुमस्रजं चिप्तवानिदानीं मुदं व्रजन् ॥२४
चाम्पेयरुचौ तनौ तवेति चम्पकदामनरुचिमभ्येति ।
मुमोच मालामिति वकुलस्यालिङ्गन्कुचौ गले खलु तस्याः ॥२५
लताप्रताने गता महति या चकर्ष कान्तं परिरम्भधिया ।
मुमुदे साम्प्रतमितो वयस्या वलयस्वनेन वध्वास्तस्याः ॥२६
मुहुरपि नतोन्नतश्रेणिभरा नरायितस्येवाभ्यासपरा ।
परिफुल्लोपलाश्वनेनासीध्यासौ लोके सुरूपराशिः ॥२७
उदग्रकुसुमोच्चिचीषयान्या लताग्रदुःस्थांघ्रितयामान्या ।
असोढुमीशेवोरोजभरं निपपातोपरि धवस्य त्वरं ॥२८
पीडयतः पञ्चभिरेव शरैर्जगत्स्वगत्याऽनङ्गस्य वरैः ।
गणनातिगैः सहायस्यूतिरित्यपहृताखिलास्य विभूतिः ॥२९
नर्मवश्यया वयस्ययालेः श्रीतिलकं कलितं खलु भाले ।
रुचात्मनस्तु जगतिलकाया अन्वर्थभावमेवमथायात् ॥३०
दत्तं दयितेनापि सुभागा श्रवणेऽशोकपुष्पमनुरागात् ।
प्रतीपपत्न्यास्तदेव किल समभूत्स्विदसीमशोकचिन्हं ॥३१

उपमधुवनमद्रिराजकं च स्फुटमनुरागितयेव समश्चन् ।
सुखमुपलभमान एष लोक. सम्बभूव शिवकेलिसदोकः ॥३२
लगुनाङ्गेषु च शुशुभे तेषां तावत्पुष्पप्रकरादेशा ।
जगज्जिगीषोः स्मरस्य बाणोदिता च किन्तु लसबलना नो ॥३३
वद्धमुष्टिवलितोचितवाहमुन्नमय्य कुचयुगलमुताह ।
क्लमभिषेण निजमीप्सितमेषा प्राणपतिं प्रति तदाशुवेशा ॥३४
उच्चित्याधस्थं कुसुमं तु परमबला यावत्सङ्कन्तुं ।
पदमदादशोकयष्टौ नामामूलं सा फुल्लैरभिरामा ॥३५
पुरा तु राजीव दृशादत्तामविस्मरन्वरमालासत्तां ।
प्रत्युपक्रियामिवाभिमानी तन्निगले न्निप्तवानिदानीं ॥३६
याञ्चोदञ्चत्सुभग्रहाय सहजालिङ्गनसुखाभ्युपायः ।
उदासदोर्भ्यां द्रुतं सचेता दशनांशुविजितशशिरुचिमेतां ॥३७
रमणं धृत्वा कापि करेण स्कन्धे रामा समादरेण ।
उदग्रपुष्पोच्चयोपलम्भे पुलकितेव सा पुनर्जजृम्भे ॥३८
पवनप्रचारनिपतत्केशा पाकरणमिषाद्विशुद्धवेशां ।
उदग्रशुम्बस्थपाणिलेशां चुचुम्ब वक्त्रे पतिर्विशेषात् ॥३९
उदग्रशाखानिलग्नवाहोः सवेगवन्नः स्फुरणेनाहो ।
स्खलितं कुचाञ्चलं मृदुदत्याः कस्य न मोदकरोऽभूत्सत्याः ॥४०
कुसुमेषोः शरजर्जरितापि या जनता स्वयमितस्तयापि ।
स्फुटं कुसुमसन्धारणरीतिर्विषमगदं विषस्य भवतीति ॥४१
रसप्रसन्नास्तरुणाक्रान्तावलिभिर्मनोज्ञमध्याकान्ताः ।
समापुरम्भोजदृशः सरितां वयप्रतीतास्तुलनाकालिताः ॥४२

रसग्रसनास्तरुणाक्रान्तावलिभिर्मनोज्ञमध्याकान्ता ।
समापुरम्भोजदृशोऽप्यमृतवयः प्रतीताः स्वयमिव सरितः ॥४३
पाद्यमुत्तमं सफेनहासाऽतिथ्यहेतवेऽदात्सरिता सा ।
कोकोक्तिभिः कृतक्षेमकथा सतरङ्गहस्तप्रणतिपथा ॥४४
विभिन्नशैवलदलच्छलेन मुदङ्कुरानपि दधती तेन ।
लास्यं प्रचलन्तीभिरूर्मिभिः क्लृप्तवतीवामानि जन्मिभिः ॥४५
पर्यटतां विकाशिकमलेषु शिलीमुखानां गीतिं तेषु ।
शुश्रूषन्तोऽप्यपाङ्गैः स्त्रीणां जिता हरिण्यो द्रुताश्वरीणाः ॥४६
पङ्कं जातं जितं मुखेन तव सुकोष्णि (?) साम्प्रतमसुखेन ।
मूर्ध्नि मिलिन्दावलिच्छलेन कृपाणपुत्री क्षिपदिव तेन ॥४७
तव नयनयोस्तु सौन्दर्येण पश्य शस्यवाजितमिव तेन ।
ह्रियेह मीनमण्डलं विमले विलीयते गंगायास्तु जले ॥४८
यन्मध्यं च सरसतामञ्चल्ललितावर्तं च गम्भीरं च ।
नाभिभवोचितसम्पत्तितया कर्षति चित्तं मम चातिशयात् ॥४९
सुराजहंसप्रतिपत्तिमती कमलानुसारिणीयं तु सती ।
अविकलकुशलात्वदिव विभाति हे सुलोचने नदस्य जातिः ॥५०
सरसेणेत्थं संकतितायाः श्रीवचनेन भर्तुरबलायाः ।
अन्तरार्द्रभावेनाङ्कुरितमासीद् गात्रं तटवत्सरितः ॥५१
तटस्थितानां वारियोषितां मुखारविन्दच्छविदलोदितां ।
श्रियमुपेत्य साम्प्रतं ललाम सर्वतो मुखं बभूव नाम ॥५२
जले विशन्ती श्री रमणीया प्रतिमामेवामले निजीयां ।
करावलम्बार्थमिवायातां मेने जलदेवतां तदा तां ॥५३

न्यस्य मृदुपदं पुराभिग्रावं कामिचित्तवशकारि भावं ।
राशिभिरंगैरनुरञ्जयति स्म चान्तराविष्टया युवतिः ॥५४
सज्जनतया वियुक्तो यावत्संयुज्यापि तरुरभूत्तावत् ।
कौतुकिवास्तां विपल्लवित्वमप्याविरभूद्यवोऽपवित्त्वं ॥५५
दीर्घदर्शितां लब्धुमिवात उत्पले उपश्रुति स्म मातः ।
साम्प्रतं तुलयितुं नयनाभ्यां सन्निहिते खलु गभीरनाभ्याः ॥५६
प्रियपरिमालितागुरुपरिणामौ कलभनिकुम्भनिभावभिरामौ ।
कुसुमभरपतत्परागसातौ सुदृशः कुचौ गुरुतरौ जातौ ॥५७
किशलयशकलोदितेन पद्मरागरुचिकरद्वयञ्च सद्म ।
रसेन मञ्जुलदृशः पवित्रविद्रुमसम्पदोऽपि परमत्र ॥५८
उपरिजतरुजेषु सम्प्रवृत्त्या विकुसुमशुम्बगवृन्ताश्रित्या ।
प्रियनखखचिताञ्चितानि मानाङ्कुवि जघनानि घनानि दधाना ५६
दयितजनैरुत्कलितं दामभरं दधानाः स्त्रियां ललाम ।
तद्सहमानतयेव सदंसा अतिनतिमापुः स्फुरत्प्रशंसाः ॥६०
वनश्रियाः सञ्चितपुष्पायाः सम्पर्कितया सभ्यनिकायाः ।
युक्तमेव संस्नातुमिदानीमायुर्जलस्तु तेर्विभवानि ॥६१
आत्तमात्तमप्यं जलौ जलमधीरनेत्रा सिञ्चितुं वरं(रं) ।
निजनेत्रप्रतिविम्बसंश्रयाजहावहो सविसारशङ्कया ॥६१
मनोभुवा पाण्डुनि कपोलके नतभ्रुवः प्रतिबिम्बितालके ।
स्फुरदगुरुदरोदात्तशङ्कया मृत्युमिहारब्धं वयस्यया ॥६२
सुतनोर्मकरन्दे बिशि येन स्वाश्रितालिगुञ्जनमिति तेन ।
श्रितसंसर्गसुखं वियोगसात्कृतमपि श्रवणोत्सवं रसात् ॥६३

भूषणभङ्गभयादिवाधुनाम्भोनिमग्ने स्त्रियां तु साधुना ।
फेन सञ्चयेनोरसि हारं शैवलैः कपोले दलसारं ॥६४
तद्रम्यं मम वक्त्रविधानमाहृता सरोजात्सुषुमा न ।
इति किल वारिणि निममज्ज मुहुः शपनाये शान्तिकं जितकुहूः॥६५
निमज्जिताया जले जवेन नेत्रानुमितं मुखं सुखेन ।
तदंगरागगन्धलुब्धेन सम्पतितारोलम्बकुलेन ॥६६
सुगुरुश्रेणिजुषः शनैः शनैजले प्लवन्त्यास्तर्कितं जनैः ।
उरोजयुगलं तत्सहकारि सहजालाबुफलप्रतिहारि ॥६७
पृथुलहरिततया पुरारिरूपं कमिति जना आत्मनः स्वरूपं ।
सन्दिग्धासन्दिग्धतया तद्देवमयञ्चानुययुः ख्यातं ॥६८
पुमांससमासीनमिहानुमितिमंसमात्रके ततग्धमिति ।
आत्मनोऽपि कृत्वा निमज्जती साश्लेषि जवा प्रेमिणा सती ॥६९
गभीरनाभीकुहरेषु पयः प्लावितमूर्मिभिराश्रित्यरयं ।
रतकूजितस्मृतिं कुहूरुतैरापुरङ्गनाः साम्प्रतं तु तैः ॥७०
नितम्बमाश्रित्योन्नमन्नितः पयःप्रवाहोऽत्राप योषितः ।
मन्दरस्य कन्दरप्रवेशलीलामुदरगह्वरेऽप्येषः ॥७१
निरस्य शैवलदुकूलमारान्मध्यं स्पृशति मानुषे वारां ।
ततेराननं त्रपयैवातः कमलमाननं बभूव वा तत् ॥७२
प्रियास्यमब्जं वा सस्फीतिभ्रमो विभ्रमैर्निरकाशीति ।
वारिरुहादतिदूरवर्तिभी रसिकस्य मनोऽभूत्तमामपि ॥७३
शीतार्तिमतेवापि वाससा रसैर्निषेकाद्विस्फुरद्दशां ।
कामोष्मजुषोस्तनयोश्शीतसमीरमाजा गतं [illegible] ॥७४

मदनजातवेदा + ललनानां शमितः प्रियकरवारिविधानात् ।
धूममञ्जिमासौ कुतोऽन्यथा समुज्जजृम्भे दृगञ्जनपथा ॥७५
कठिनस्तनस्थले वनितायाः सिक्तं रसिना दग्धुमथायात् ।
तदौष्ण्यमादायोत्पतज्जलं पुरस्थरिपुयोषितो हृद्दलं ॥७६
कमिति च कान्तकरादायातं जातं पत्न्या यदेव सातं ।
शरतामत्र वैरिरामाया हृदयभेदनायैतदुतायात् ॥७७
न सुष्ठु मृष्टाऽगुरुपत्रततिस्त्वकया लोकोत्तरकान्तिमति ।
वञ्चितेति निजगण्डमण्डलमर्पयति स्म नियोगिनेऽमलं ॥७८
जलेन लौल्याद्वसनेऽपहृते विलासवत्या जघने प्रसृते ।
नखमण्डलावलिच्छलतोऽभात्स्मरप्रशस्तिः प्रणीतशोभा ॥७९
वाग्मिता हि येषां रुचिहेतुः सम्विदिता मनस्विनिवहे तु ।
यदत्र तूष्णी नूपुरैः स्थितं जडप्रसङ्गे मौनं हि हितम् ॥८०
मीनमत्स्यकादेस्तु जीवनं ह्युत्पलजातेरस्ति यद्वनं ।
गोरुच्चैस्तनगिरेरागतं पय इत्येवं जगतोऽत्र मतं ॥८१
उद्भिज्जातेरमृतमितीष्टं विषमनग्नये स्वतोऽस्त्यनिष्टं ।
शिवमिति हिन्दुजनानामेतद्भुवनमन्वभूज्जनस्य चेतः ॥८२
जलावगाहप्रतिपत्तिकारणैकसम्भवदम्भसि सम्विभूषणैः ।
हिरण्मयैश्चारुदृशां परिच्युतैः किलोर्मिवहैः शकलैर्व्यशोभितैः ॥८३
मृगीदृशां या वकरागकल्पकान्वयेन सिन्दूरकलाक्तमस्तका ।
पयोधियोषिन्निजनायकं तरां जगाम तावत्सुतराङ्गितान्तरा ॥८४

+ अग्निः ।

अपास्तमाल्यं च्युतया वकाधरं निरस्तवस्त्रं दयितेश्वरैः समं ।
निषेव्यमाणं तरलं जलं बभौ मुदे वधूनां रतवद्यदुत्तमं ॥८५
स्वार्थभृज्जगदिति प्रकाशिताचां जहद्भिरथ निम्नगोदिता ।
आत्ततृड्भिःरियमङ्गिभिर्हितावानदीनमहिलासमर्थिता ॥८६
नितम्बिनीनां जघनाघाताचटाभिनीतं वारि तदा तां ।
कलुषतामगादपि च जडानां पराभवः कष्टकरो नाना ॥८७
निरम्बरश्रेणिजुषोऽम्बुलोलनात्त्रपापरायाः कुलजेषु साऽधुना ।
चकार सख्यं लहरी तदङ्गसात्सरोजवल्लीदलदानतो रसात् ॥८८
तत्याज जलं पश्चादुत्तस्वरमङ्गनाजनः कलुषं ।
स्मृत्वा धृष्टप्रियतां सहजामिति या स्वकीयां सः ॥८६
चेलाञ्चलैः चराद्भिर्जलमिव लावण्यमङ्गनाकुलकैः ।
उत्तीर्णमथातितरलतरङ्गरङ्गत्तमैः सरसः ॥६०
तरुणीं समुत्तरन्तीं तोयत उत्फुल्लतामरसहस्तां ।
अनुमेनिरे नरा हरिरामामिव सिन्धुनिर्मथनात् ॥६१
तरलैरलकैः समाकुला ललनालिङ्गनमङ्गराङ्गिणा ।
अनुकूलमवाप्य सत्वरं रससारं समवाप चापरा ॥६२
अभिगम्य नितम्बविम्बमुच्चकुचायाः कचसंचयः पुनः ।
स्म समेति रुतिं परिचरत्चरदम्भादिव बन्धसम्भयात् ॥६३
मृदुपद्मदृशः सुमध्यमायाः स्वभुजाभ्यां कचवृन्दवन्धने ।
भुजमूलमथोन्नतं तिरस्तः शनकैः सम्प्रति शश्वजेऽभिसारी ॥६४
मुदृशां दृगुपान्तरक्तता प्रथमं या हि तिरोहिताञ्जनैः ।
अधुना द्विगुणीकृता जलैरनु······र्षतयेव निर्मलैः ॥६५

शुचिविप्रकरानजानतौ समुदीक्ष्यात्महृदीशमान्तिके ।
मुहुरम्बुजलोचना तनुं स्नपनार्द्रां निरवाप यच्चिरं ॥९६

अभिनववसनानां स्वीकृतौ तावदाभिः,
सुचिरपरिचितानि स्पष्टपद्माननाभिः ।
दधुरविरलवारीत्येवमार्द्राणि यानि,
बहुविरहविपच्चेमुश्चितानीव तानि ॥९७

समुदितजलकोलिं वीक्ष्य तं पीठकेलिं,
सकलजनसमूहं तत्र तावन्निरूहम् ।
दिनपतिरपि रागी चाशु गच्छत्प्रयागी,
झटिति हि जलराशिं गन्तुमाभूत्प्रवासी ॥९८

सकलमपि कलत्रमनुमानवं,
लिखितमनूक्तं ललितमतिबलं ।
दधत्स्वपदवलमुचितार्थभवं,
बहु सञ्चरितदमवमलं भुवः ॥९९

(सरिद्वलम्बश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमक्षियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
वृत्तोत्तुङ्गतरङ्गवारिसरिताख्याते प्रसन्नः स्वयं,
सर्गोऽत्येति चतुर्दशस्तदुदितेऽस्मिन् सुप्रबन्धेऽव्ययं ॥१००

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये चतुर्दशः सर्गः



अथ पंचदशः सर्गः

प्राणेशसत्सङ्गमलालसानां कटाक्षवाणैरधुनाङ्गनानाम् ।
हतः किलारादरविन्दवेशमुपैति पूषारुणिमानमेषः ॥१

यथोदये ह्यस्तमयेऽपि रक्तः श्रीमान् विवस्वान् †विभवैकभक्तः ।
विपत्सु सम्पत्स्विव तुल्यतैवमहो तटस्था महतां सदैव ॥२

लयन्तु मत्रैव समं समेति दिनं दिनेशे च महीयसेति ।
कृतज्ञतां ते खलु निर्वहन्तितमामसुभ्योप्यमलास्तु सन्ति ॥३

नवेऽधुनासङ्गमनेऽव्जनेतुर्दिशः प्रतीच्या मुखमण्डले तु ।
हार्दोचितह्रीविभवेन भाति प्रवाललक्ष्मीमुषिकापि कान्तिः ॥४

सरोजिनी कुड्मलितां दिशायाः समीक्ष्य साश्चर्यमिति स्मितायाः ।
मन्ये प्रतीच्या अधुनावभातितरामुदात्ताधरविम्बकान्ति ॥५

उपागतेऽहष्कृति तस्य वीनां कलैः कृतातिथ्यकथाप्यशीना ।
श्रीशोणिमच्छद्ममयं प्रतीची दधाति सच्छाटकमात्तवीचिः ॥६

निभाल्य भानु' दिशि पश्चिमायां गत्वानुरक्तं द्युपतेर्दिशायाः ।
मित्रामुकं पश्यत मालदस्य मास्यं जनीमत्सरभावभाव्यं ॥७

बन्धौ परिप्राप्तवतीह भङ्ग' सद्योऽधिमघ्यं विनिवेश्य भृङ्गं ।
निमीलिताम्भोजदृगब्जिनीतिजाता समारब्धविलासिनीतिः ॥८

---

† वीनां भवः पक्षिसङ्घः [illegible] ।

प्रसिद्धमात्मन्यवराः स्मरन्तु विलोक्य कालं विलया ह्वयन्तु ।
‡ ग्राहोदयत्वात्तिमिलं वदन्तु विजृम्भमाणं गिलितुं जगत्तु ॥६
रवेरथो बिम्बमितोऽस्तगामि उदेष्यदेतच्छशिनोऽपि नामि ।
समस्ति पान्थेषु रुषा निषिक्तं रतीश्वरस्याक्षियुगं हि रक्तं ॥१०
कुमुद्‌धवे मोदकरे स्वभावाञ्चवासु रासाविव वासुरा वा ।
नरः सरोऽथो सबलाऽबलापि समं नभं स्थानमिदं यदापि ॥११
मित्रं हतं पश्यत आस्यमाराच्छितीकृतं श्रीनभसोऽश्रुधारा ।
उदेष्यदच्छलतो निरेति ततः शुचेयं मम भावनेति ॥१२
* दिनावसाने तरणे + र्विनाशः न दृश्यते काप्यु × डुपस्तथा सः
+ नदीपरूपे सिमिरे ब्रुडन्ति चक्षूंषि नृणां विकलानि सन्ति ॥१३
हंसं हटात्सायमयेन भुक्तं समुज्झितोपाङ्गतयोपरक्तं ।
निभ्याल्य नीडान्यधुनाश्रयन्ति द्विजातयस्तं च पुनः शपन्ति ॥१४
उच्चैस्तनाकाशगिरीशमानोः श्रीगैरिकस्योच्चय एव भानोः ।
मिषाच्च्युतोऽतः समुदेति पांशुः सायाख्ययायं सुतरां ततांशुः ॥१५
अकायशंकासहितः सकायः पन्थास्सतां वीक्ष्य भवद्विहायः ।
कुमुद्वतीनामसुमुद्वतीति कृत्वात्र जाता क्षणदाप्रणीतिः ॥१६
पीत्वाऽऽदिवं श्रीमधुनस्तु पात्रं पूषा पुनर्लोहितमेति गात्रं
क्षीवत्वमापन्न इवायमद्य समीहतेऽहो पतितुं विपद्य

‡ ग्रहाणामसौ ग्राहश्चासावुदयश्च ग्राहाणा नक्रादीनामुदयो वा ।
* साय समये दुर्भाग्ये च ।
+ सूर्यस्य नौकायाश्च ।
× चन्द्रमा लघुनौका च । + अनल्पे समुद्रात्मके च ।

वसुव्यपेतोप्यनुरागि एष नभोनिकाप्यादधुना दिनेशः
प्राचीनतातोप्यनुरागवन्तं प्रतीह नादादधुना द्रगन्तं
दिशा प्रतीच्या खलु वारवध्वा निष्काशतेहानुपतापकृद्वा
निष्काशयामास नभोनिकायाच्छ्रीपाशपाशोर्हरिदेष काया
निमीलतीहातिशयेन दिक्षु गलद्द्विरेफाश्रुपयोजचक्षु:
राजीविणीयं भवतो वियोगाच्छोकाकुलेवाभिरवीतियोगात्
उपद्रुतोऽशुस्तिमिरैः सरद्भिर्भयेप्यसम्मूढमतिर्महद्भिः
विखण्ड्य देहं प्रतिगेहमेष विराजते सम्प्रति दीपवेशः
दिगम्बरं यस्त्वपहृत्य भानुर्द्रुतः पुनर्व्यस्तकरोऽस्तसानु (नौ)
ग्रस्तं जगत्तस्ततया त एव करैरपास्येत तदि············
पीतं यदेतन्निशयाम्बरन्तु नीडं खगाः स्पष्टमिति श्रयन्तु
प्रयाति कामी नवलोहितं तद्दारा श्रयन्ते धवलम्भवन्तः
स्थितिः सतां सम्वरितामुकेन समङ्किता श्रीर्जडजेषु येन
रविः कुतो नावपतेदिदानीमुत्तापकोऽसौ जगतोऽभिमानी
पतत्यसौ वारिनिधौ पतङ्गः पद्मोदरे सम्प्रति मत्तभृङ्गः
आक्रीडकन्दोर्निलये विहङ्गः शनैश्चरम्भोरुजनेष्वनङ्गः
अभात्तमापीततमाहिदीपैर्विकस्वरैर्भिमकिता समीपैः
सौभाग्यदात्री विधृतैर्हरिद्राङ्कुराङ्गितास्त्रीभिरधीतनिद्रा
गम्रुत्कगोलं तु हिमाद्रभीषुः पुनर्जगद्भूषणतां निनीषुः
तापान्वितं सीमनि सिन्धुवारः प्रचिक्षिपवाँस्तं विधिहेमकारः
निशाविसम्वादविवर्जितत्वात्सनुचमस्थानसमर्थितत्वात्
सद्भिः समाराध्यतया हि तत्वात्तुल्यत्वमास्ते जिनवाचि गत्वा

जनप्रवृत्तिः सहदेवतासीदहोनिशायां नकुलक्रमाशीः
धनुर्धरो भीमतया सकामः सद्धर्मराजाभ्युदयोऽभिरामः
रवेः सवेगं पतनात्समुद्रे समुत्पतन्त्यध्वनि किमु शद्रेः
तदङ्गजानां पयसां पृषन्ति नक्षत्रनाम्नां सुतरां लसन्ति
दुर्वारमुत्सर्पति तावदस्मिन्दिवामखि किनु सहस्ररश्मि
तमः समुद्रे द्रुतमभ्युपात्तुं स्मरन्त्यमीः शुद्धहृदोऽधुना तु
प्रदीपयुक्ता मृदुदारभावा समासतस्तद्धितकृत्प्रभावा
कृतं तथा साधुविधानमेति सन्ध्या स्वयं व्याकृतिसत्क्रियेति
अभात्तमां पीततमा हि दीपैर्विकस्वर…………
गतस्तटांकान्तरमाशु हंसस्त्यक्त्वाम्बुकं पुष्करनामकं सः
तमोमिषाच्छैवलजालवंशः स्फुरत्यतोऽस्मिन्नयमस्तदेशः
पातुं किलातुच्छतमारुणाभ्रं विस्तारितारातिदन्तपङ्क्तिः
निशाचरोऽतीव भयङ्करोऽसाविहान्धकारापरवाक् प्रसक्तिः
निशौतुकीतन्मयकौतुकित्वात्कपोतमादाय विधुं त्वकित्वात्
गतानभःसौधशिरोऽथ ऋक्षा स्तदन्तपातात्पतिता हि पक्षः
सन्ध्यामिषेणापरशैलसानुं प्रज्ज्वाल्य यन्नश्यति चित्रभानुः
तमांसि धूमाः प्रसरन्ति नो चेद्यमश्रुसंघोभमिषात्कुतोंचेत्
नक्षत्रकाचांशतताम्र एष शालो विशालोऽस्तु तमोनिवेशः
आज्ञामतिक्रम्य रतीशवरस्य निर्गच्छतां यः प्रतिषेधट्ट (व) श्यः
नष्टेऽपि पत्यौ तरणौ द्युनामारामाविधुं स्त्रागभिसर्तुकामा
श्यामां समन्ताद्विदधाति शाटीं तमोमयी तत्परिवादवाटीं
नष्टेऽपि पत्यौ तरणौ द्युरामासुधांशुमारादभिसर्तुकामा

समुच्चरीतुं परिवादघाटीं तमोमयी वा विदधाति शाटीं
प्रदोषसिंहाक्रमणान्वयानां नेदं तमः कुम्भदिशागजानां
विनिर्गलद्गण्डजलप्रसारस्ताराति चारात्कवलोपहारः
स्वर्गीयगंगागतकोकिकानामितोऽकिकानां विरहात्तकानां
तारा न वारान्तु पृषन्ति संति चतुर्षु वां दिक्षु पुनः पतन्ति
कारी निशाचावा निशादरस्य नारीह सा रीतिकरी स्मरस्य
लात्वा रति सञ्चरतीव लोके पतत्यतः सम्प्रति नावलोऽके
निशावधू स्वागतमात्ममर्तुरुद्दिश्य वा कैरवहर्षकर्तुः
बृहत्तमस्तोमककेशवेशे मुक्ताश्च तारा विदधात्यशेषे
कलंकिनः शासनमत्र रात्रावहो न सा केवलकारिमात्रा
विचारहीना भुवमीक्षमाणो लभे प्रदेशानमनागिवाणोः
असौ निशेन्दोः परिरम्भवारादारात्तु ताराश्रमवारिसारा
ह्रियांशुदीपन्ययिनीत्युदारातमोमिषात्तत्कृतधूमधारा
तमःसमारम्भपरम्पराभित् सूचीरुचः पीनपयोधराभिः
दीपान्प्रबुद्धान्प्रतिधामकामशरानिव स्वर्णधरान्वदामः
नीलामलाच्छादनसुन्दरीणां भूषांशुभिर्भिन्नमथेत्वरीणां
तत्प्रेमचाम्पेयकषाभिरामितमस्तमालप्रतिमं वदामि
अस्तोदयाहार्यगतार्कचन्द्राभिधानकर्णाभरणाप्यतन्द्रा
समुत्क्षिपन्ती कुसुमानि भानि आयाति सन्ध्या किमसाविदानी
चण्डांशुचाण्डालसमाश्रयत्वाद्दुष्टं विहायः सदनन्तु मत्वा
स्फुरत्तमामन्दतमश्छयेन निशावधू लिम्पति गोमयेन
चण्डांशुसंस्पृष्टमिदं विहायः लिप्त्वा तमोगोमयतो निशा यत्

ददाति कीर्णोडुकतण्डुले तु विधुप्रदीपं तनुशर्महेतु
सन्ध्याभिषेखोत्कषणप्रतीतमस्तावनिध्रे निकषाश्मनीतः
विक्रीय भानुं भरुपिण्डमानी तानीव स्वेनोडुकरूप्यकानि
यदर्कबिम्बं करकं त्वयापि तथास्य सन्ध्या त्वगिवोज्झितापि
कालेन तद्बीजभुजातु भानि भवन्तु अस्थीन्यथ थूत्कृतानि
उत्सङ्गजं सूचयतीन्दुदेवं पूर्वाद्रिमूलान्तरितं दिगेवं
शोणानना कैरवरागिभृङ्गारवैरियं सन्मणितप्रसङ्गा
मन्ये मधुच्छत्रमथस्तजानिर्भवन्ति यद्विन्दुनिभानिभानि
तमोमिषादुत्थितमक्षिकाभिर्व्याप्तं जगत्किञ्च पुरैव ताभिः
चण्डीशचूडामणिरेष भर्ता कुमुद्वतीनां स्मरसन्निधर्ता
मित्रं समुद्रस्य च पूर्वशैलशृङ्गे तु सोमः कलशायतेऽलं
सिंही सुतस्याप्यरदैर्व्रणन्तु सुधांशुबिम्बस्य पदानि सन्तु
वियोगिनीनामथवा दृगन्तैः समं गतैरञ्जनकैर्धृतं तैः
तमोंऽशुकं रात्र्यपसार्य शस्तैः करैश्च मध्यं स्पृशति स्वतस्तैः
परिस्फुरत्कैरववक्त्रबिम्बा श्यामाद्रवश्चन्द्रमणीति दम्भात्
श्रीवर्द्धमानो विधुरेष जीयाच्छ्रीकौमुदाधारतया यदीया
कलाश्रयन्त्यां कलिकालकायानुद्योतयन्तो समयं निशायां
स्वयंकरत्वेपकरः परिज्या कुमुद्वतीनां सदसीति दृष्वा
तास्तास्तरामौषधयो ज्वलन्ति स्त्रियः परोद्वाहसहाः क सन्ति
निष्पीड्यमाने तिमिरे करेण भृशं सितांशोर्विधिनादरेण
भङ्क्त्वार्गलं कोकयुगं ह्यु दाराशयेन सद्द्वारमदायि चारात्
श्माणोपलेऽस्मिन् खलु शीतभानावयं जगत्ताडनकुण्ठितानां

उत्तेजनामङ्गपरिस्थितीनां स्मरः शरार्थां समुपैत्यदीनां
विलासिनीनां प्रतिवीथि आस्यं निरीक्षमाणः शुचिहासभाव्यं
करान्प्रसार्योपगवाक्षमिन्दुः सौन्दर्यमिच्छामटतीष्टविन्दुः
परागपाण्डुः शशिनः सुसृष्टिः करोत्करो(श्रयो)साविव चूर्णमुष्टिः
व्याप्नोति वक्त्रं मृदु मञ्जु यावत्समुत्कतामेति वधूश्च तावत्
वल्मीकमाप्त्वाह्निजनीहृदेकं सुप्तोऽथ दृप्तोऽप्यधुना मुदेकं
लोके करैरुद्धरताच्चरां सोऽनङ्गः फणीशः शिशिरैः सुधांशोः
स्वगोघृतैरुज्ज्वलितेषु काष्ठोदयेषु तारापरनामसाराः
जुहोति लाजाः किल कामसिद्ध्यै द्विजाधिराडेष किलाधिकारात्
त्रस्तं तमोरात्रिपतेस्सदंशुग्रासेन तद्यत्प्रभवज्जगत्सु
लब्ध्वाऽपशङ्कोऽस्तु च राजधानीवियोगिनीनां हृदयेष्विदानीम्
आद्धाशनीराशयपुण्डरीकं वदाम्यदोङ्कस्थितचञ्चरीकम्
यूनां मनोवर्त्मनि तर्तरीकं तरत्यहो कामरमामरीकं
सैन्दुर्यमिन्दुर्द्विविधाहरोऽति वृत्याथ नैर्मल्यमुरीकरोति
न स्थीयतां शान्तहृदं प्रकृत्यामपि प्रवृत्यागतया विकृत्या
स्मरामरस्यामलमातपत्रं शृङ्गारवारस्य च ताम्रपत्रं
विराजते सम्प्रतिराजसत्रं सुधामयं श्रोद्यु सदाममत्रं
पयोनिधिः फेनकचन्दनन्तु भङ्गाः समुत्पेष्ठुमहो जयन्तु
मुदे समादाय तदेतदेष दिगङ्गना लिम्पति लाञ्छनेशः
प्राच्यां पुरारक्तिमुपेत्य पापी शापाभिशाया अधुनोपतापी
कलङ्कितामेति तुषारसारगात्रोऽपि रात्रेर्हृदयैकहारः
एतत्सदिन्दीवरभासिनाम समापतत्साम्प्रतमिन्दुधाम

पयोधिमध्ये पततोऽनुघर्तिं घूर्ण सुरस्रोतसि आविर्मर्ति
शशी विहायःसरसि प्रसन्नो हंसायते मेघकशैवलाशी
श्रीचन्द्रिकासारिणिवारिणीह तारावती राजति बुद्बुदाशीः
सन्तोऽपि राजा हृतवानिदानीं तारावराजीवनकद्विधानी
निशाचरं सन्तमसं विशालैः सलक्ष्मणोऽसौ करवालजालैः
पादार्दितामीह रवेस्तु दीना रुतैरिदानीं रुदतीमलीनां
परामृशन् भाति निशानिशानः कुमुद्वती स्मेरमुखी दधानः
श्रीमान् शशी कैरवणीवनेषु नरोऽपि नारीमुखचुम्बनेषु
द्वौ बद्धमानातुलनर्ममग्नौ मिथोऽप्यथो स्पर्द्धनतो हि लग्नौ
तमोऽवगुण्ठार्तगता ततापि तारापदेशाच्छ्रमवारिणापि
पत्युश्चरत्युत्सवहेतवे तु समुद्यता कैरवहर्षसेतुः
गरं जगन्मोहकरं तमस्तु यदस्य चन्द्रस्य हि भक्ष्यवस्तु
अतः स्वतः कज्जलजालजातितुषारभासो जठरं विभाति
तमोमयं केशचयं नियम्य मरीचिभिश्चाङ्गुलिभिस्तु सम्यक्
विमुद्रिताम्भोरुहनेत्रविन्दुमुखं रजन्याः परिचुम्बतीन्दुः
तमस्विनीज्योत्स्निकयोः प्रसक्तिसम्वादवादीव विधुर्बिभर्ति ।
सितासितप्रायमुतात्मकायं द्विच्छायमङ्गाङ्गनयोरिहायं ॥
स्तनन्धयः सम्भवतीव कामी यज्जन्मपत्रस्य विधोः स्मरामि ।
यस्यारिभावे गुरुशुक्लतास्ति व्ययस्थलेऽथो तमसोऽप्युपास्तिः ॥
दिनेऽपि भावाच्छशिनो नतस्याथ कौमुदीयं कुमुदस्य हि स्यात् ।
चान्दीपदे सम्विदिभूपभूवत्सम्वन्ध आधार इतो बभूव ॥

केचिच्छशं केचिदितः 'कलङ्क' वदन्तु इन्दोरनिमित्तमङ्क' ।
पिपीलिकानान्तु सुधाकशिम्वं किलावली चुम्बति चन्द्रविम्बम् ॥
पत्यौ समागच्छति शीतरश्मौ तारामणीभूषणभूषिताभिः ।
किलोपदिष्टं प्रतिकर्मकान्ताः स्मारभन्ते स्म तदादिशाभिः ॥
बद्ध' त्वनर्घस्य किमर्थमेतत् हैमं तुलाकोटियुगंचमेतत् ।
इतीव रोषात्पदयुग्ममासीद्रक्तं रमाया अरुणोपभासि ॥
नितम्बविम्बे परयोपरोपिताभितः स्खलन्ती खलु सप्तकी सिता ।
सितापताकेव जिताखिलारिणः प्रासादशृङ्गे ऽहिपहारवैरिणः ॥
तारुण्यतेजोभिरभूत्स्तनाख्यो द्वीपोऽपि योनङ्गनिवासयोग्ये ।
व्यच्छेदि हारावलिवारपूरैः क्षेत्रेऽन्यया कान्तिभरैकभोग्ये ॥
श्रुतिलंघनाय वाञ्छति नयनद्वितये स्वभावतस्तरले ।
उचितज्ञताधिपन्ना साध्वी कज्जलमलंचक्रे ॥
गुरुशुक्लतयानिवेशिते मृदुचन्द्राननयाथ कुण्डले ।
खलु दौरुधरी श्रियं तरां स्म विमर्त्तः प्रियकामजन्मनि
अथ चक्रवदावभौ कयावधृतं गन्धवहाविभूषणं
अवकृष्टमिवाशु कोशतो विजगीषोः स्मरचक्रवर्तिनः
अनुवद्धपरस्पराङ्गुलिस्वकरद्वन्द्वमुदञ्च्य जृम्भिणी
हृदयं विशतो मनोभुवः कृतवत्येव च तोरणश्रियं
प्रियागमनतत्परा यदधि जानु सत्कूर्परा
मिनञकरपल्लवार्पितकपोलमूलापरा
लिलेख समयोचितोत्पठित(चरित)मञ्जुमञ्जुस्वना
परेण करतोऽवनौ (क्षुधिघाणिना) किमपि यन्त्रमाकर्पकं

प्रणयविकाशविदः पुनरपाङ्गमयगोभिरुचितचित्तहृतः
दश इव सख्यो युवतिभिरधिदयितं प्रेषिताः कतिभिः
सन्दिशेति किल तुल्ययोदिता लज्जया किमपि नाहमानिनी ।
नम्रया खलु भृशं दृशात्र सा स्मेद्यते त्वततुतापि तां तनुं ॥
एकत्राङ्कितचौरसाहवतिभिः शश्वद्दृशिग्भिर्भवान्,
रङ्गाहो तुलितोऽसि हेमतुलयास्तां किन्तु रत्नाश्चितं ।
प्रीत्या तत्तु विशालदृग्भिरधुना त्वारोप्यते मस्तके,
पापात्मोपि हतोऽसि मुग्धवनितापादेषु पश्य स्थितिं ॥
सखित्वं स्निग्धाङ्गी प्रभवति युवा सोऽपि तरल,
तमिस्रेयं रात्री रहसि कथनीयं मदुदितं ।
समस्येयं क्लिाष्टात्र दिशतु क्लिष्टन्तु भगवान् ,
नियं वाचां वल्ली प्रसरति सती स्माम्बुजदृशः ॥
अनुकूलेङ्गितकर्त्रीच्छायेव प्रेषिताथ कामिन्या ।
दयितं प्रतीति दूती सन्देशमुदाजहार सती ॥
त्वं विजितमदनरूपस्त्वय्यनुरक्ता च हरिणनयना सा ।
इत्यनुशयादिवामूमुत्तपति किलैकिकां मदनः ॥
कुसुमादपि सुकुमारं बपुरवालतामितीदमुद्धरति ।
इषुना स्मरस्य सुन्दर कुसुमेन हतं तदीयाङ्गम् ॥
अनुरागवर्तिना तव विरहेणोप्रेण सा ग्रहीताङ्गी ।
किमु सम्वदामि गौरी सञ्जाताद्धीवशिष्टेव ॥
इन्दुकरैर्मलयभवैर्वातैः स्पृष्टा मुहुश्च मञ्जुमते ।
दोषभयादिव सिञ्चति तनुमतनु सदश्रुपूरैः सा ॥

इति वारितोऽङ्कुराङ्कितवतनुर्मनुष्यो जवेनमुर(ल)तार्थी।
मुक्ताफलानि चाश्रव्याजादिव सन्ददे तस्यै ॥

दयिता हृतस्य मनसः समातुरैः परिमृह्लतामिव गतैः पुरानरैः।
उदिते समुद्धृतपदैः क्षपाकरे प्रययै ततोऽनुपदिभिः स्फुरत्परे ॥

अनुतनूपगतस्य वपुष्मतो गुरुतरं प्रतिविम्बिमथोद्वहत्।
अतिभरादिव कम्पवतः करान्मुकुरकं निपपात नतभ्रुवः ॥

कान्तावलोकविकशन्नयनप्रगुणं,
कञ्जं तु सम्भ्रमभृतः श्रवणाक्षताड्याः।
प्राणेशपादभुविसन्निपतद्वराजा-
तिथ्येदृशः परिकृतं प्रतिविम्बमेव ॥

प्रमदा प्रमदाश्रुभिः प्रिये समुपागच्छति सत्वरं तरां।
स्नपयत्यमुकोचितासनं निजवच्चः स्म चकोरलोचना ॥

मानिनीप्रियमुदीक्ष्य विनीवावंशुकेविनमितास्यमिहासीत्।
सापदानिपरिदृष्टवतीव प्रस्थितस्य सहसा स्मयकस्य ॥

निजनायकमवलोक्य तमागमेका यावद्रामा,
शातवर्तीहोत्थितासनतः जघनमतिथिरागं।
संहर्षवशात्पादयोर्नतं जघनपीठमभिरामं,
मंचुविनिह्नवशालि च समदान्माहात्म्यगतारामं ॥

(निशासमागमश्चक्रबन्धः)

सन्मधुनोराचार्यत्वं रतिभृतममजनिनिशायां सम्यङ्मारागक्रमं

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणयस्त्रियं धृतवरी देवी च यं धीचयं।
काव्ये कौमुदमेधयत्यपि सुधावन्धूज्ज्वले तत्कृतः,
सर्गः स्वीयकलाभिरेष दशमः पञ्चोत्तरो निर्गतः॥

इति श्री वाणीभूषण ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये पञ्चदशः सर्गः



अथ: षोडशः सर्गः

निशीथतीर्थे कृतमज्जनेन जयाय निर्यातमथ स्मरेण ।
पीयूषपादोज्ज्वलकुम्भदृष्ट्या सुमस्फुरन्मङ्गललाजसृष्ट्या ॥१

प्रयाणवेलां कुसुमायुधस्याप्यहो स्वयं स्त्रीपुरुषेषु न स्यात् ।
तारुण्यमूर्त्तिष्वपि कस्य कस्य सहायकाङ्क्षा सुतरां प्रपश्य ॥२

विश्वस्य यद् धैर्यधनं व्यलोपि वियोगिनोऽथापि तु योगिनोऽपि
रामाभिधामाकलयन्ति नामाधुना पुनस्ते प्रतिकर्तुकामाः ॥३

अनङ्गजन्मानमहोसदङ्ग शक्त्याप्यजेयं समुदीक्ष्य चङ्गः ।
गतो विवेक्तुं निजमित्युपायादुपासनायां गृहदेविकायाः ॥४

रतीश्वराज्ञां शिरसा वहन्ति तेऽत्रापि वस्त्राभरणैर्लसन्ति ।
तच्छासनातीति कृतश्च के ते वाचंयमास्सन्तु गुहासु ते ते ॥५

एकाकिने धूमसमंतमस्तु वाष्पाम्बुपूरोदयकारि वस्तु ।
सदञ्जनस्याञ्जनवत्सु शास्तुहृगम्बुजोन्मीलनकृत्सदास्तु ॥६

सौभाग्यभृद्भीरुजनास्य फुल्लविलोकिने श्रीध्वजवस्त्रपल्लः ।
हृद्भेदकृत्सम्भवतीव भल्लः परत्रयो दीपशिखांशमल्लः ॥७

मुद्योतनं द्वैतसतो निकाममुद्योतनं चन्द्रमसोऽभिरामम् ।
वियोगिनः सन्तमसं तथातियत्नादिदानीं मनसि प्रयाति ॥८

सिताश्रितं दुग्धमिवादरेण निपीयते सङ्गमिना परेण ।
अयोषितं तक्रमिषात्र नक्रसंकोचतः शीतशिररश्मिचक्रं ॥९

कामारिनामाप्यभवल्ललामा यदीयमूर्धान्दुकशीतधामा ।
दिशां जये प्रीतिपितुः प्रशस्यं साचिव्यमेष प्रचरत्यवश्यं ॥१०
निशाचरः पञ्चशरोऽस्ति पृष्टलग्नो ममैकाकिन आनिकृष्टः ।
त्वत्तो लभे नो यदि तन्त्रसूत्रमष्टाङ्गसिद्धेः समतास्तु कुत्र ॥११
श्यामं सुखं मे विरहैकवस्तु एकान्ततोऽरक्तमहोमनस्तु ।
प्रत्यागतस्ते ह्यधराग्रभाग एवाभिरूपे मनसस्तु रागः ॥१२
मुहुर्मुहुर्बद्धाञ्जलिरेष दासः सदासखि प्रार्थयते सदाशः ।
कुतः पुनः पूर्णपयोधरा वा न वर्तसे सत्करकस्वभावा ॥१३
सद्धारगंगाधरमुग्ररूपं तवेममुच्चैस्तनशैलभूपम् ।
दिगम्बरं गौरिविधे हि चन्द्रचूडं करिष्यामितमामतन्द्रः (?) ॥१४
त्वमप्सरःसारमयी त्वदन्तःक्रियाश्रिया मे सफरो दृगन्तः ।
स सन्ततं नायमसॅरत्ततस्तु कुतः पुनर्यद्दुरितं समस्तु ॥१५
चण्डः स्मरोऽसौ धनुरेति कान्ते सन्धारयोच्चैस्तनपर्वतान्ते ।
ज्वलत्यलं मे विरहाग्निनान्ते किं स्याभियासोऽसि विभूतिमाँस्ते १६
स्मरस्मरङ्गस्थलमेत्यदंशस्पृङ् मेऽपि धन्वापहरत्यरं सः ।
त्वं देवि हे दीव्यशराधिभूयन्मुदे तु कोदण्डमुदेतु भूयः ॥१७
नतभ्रु तप्तास्यतनुज्वरेण किलोपवासोऽस्तु सुखाय तेन ।
रसायनाधीट्रसमर्पयास्मिन्नालं तवावेदितलंघनेऽस्मि ॥१८
सद्वृत्तसम्वादसमर्थमद्य श्रीचन्द्रकान्तामृतगुं प्रपद्य ।
नितान्तमन्तःकठिनापि वारिमुक्तामथोरीकुरुते स्म नारी ॥१९
सविभ्रमां यौवनवारिवेगां वधूनदीं भो शृणु वीर मे गां ।
उदारभृङ्गारतरङ्गसेनां कोऽस्त्येतुमीशः शुचिहासफेनां ॥२०

उदारवक्रै स्तदुदारवक्रै रक्लेशितः सन्त्रतिवीचिचक्रैः।
अहत्त्वेयं यौवनवारिराशिमत्येति जीयात्स नरोऽस्मराशीः ॥२१
कान्तारसद्दे शवरस्य चंचुः वेमोऽभवत्सद्विटपेषु दिक्षु।
अद्वैतसम्वादमुपेत्यं वाराणमोचः स्वणाद्वासवयस्यकाणः ॥२२
नवोद्धृतं नाम दधत्तदिन्द-विम्बं बभूवेह घृतस्य विन्दुः।
वियोगवह्न्युत्तपनाय हेतुर्द्वै तस्य वा स्नेहनकर्मणे तु ॥२३
कुन्दारविन्दादिततादृयेम्यः शय्यैव सासीद्विरहाश्रयेभ्यः।
हसन्ति अङ्गारकमावमिश्राऽसकौ च कौ मौघमिता तमिश्रा ॥२४
शरीरिवर्गस्य तमां विवेकहान्यामहान्यागगुणाभिषेक।
सुरासुराद्वान्तसुरासुयोग आद्यः स्मरेषोरिति सम्प्रयोगः ॥२५
तालीयकं सौधमिवास्तुवस्तुसंयोगिनः किन्न वियोगिनस्तु।
पुंसः पुनः पिप्पलपात्रमस्तु सम्वेदवत्खेदकरं तदस्तु ॥२६
द्वैतानि तानि प्रकृतादरस्य नृशंसतायां सरकं स्मरस्य।
शिलीमुखैर्जर्जरितेष्वसिञ्चन्पुनः पुनः स्वास्थनितेषु किञ्च ॥२७
नालं समुत्पीनपयोधभावात्सम्पादने दोर्बलनस्य सा वा।
विनामने वक्त्रवरस्य मद्यपाने कुतस्स्यात्कुशलाद्य सद्यः ॥२८
अन्वाननं पानकपात्रमाशासमन्वितायावितरन्विलासात्।
हस्तेन शस्तस्तनमण्डलान्तमालिङ्गय सम्यङ् मदमाप कान्तः ॥२९
भर्त्रात्तनामग्रहणं सपत्न्यास्समर्पिताहो मदिरापि पत्न्याः।
अस्यास्समस्या मददारणाय दश्यापि तस्या मददारणाय ॥३०
हाला हि लालायितमन्तरङ्गं करोति वीजग्रहणेष्वभङ्गं।
हालाहलं प्राह जनेत्र पाला वालापिनी प्रीतपथस्य वाला ॥३१

मद्यं पिबन्त्र कृतावतारं स्वयोषितः कुन्दसरोजसारम् ।
पीत्वाऽऽननं यन्मदमापगाढं न तेन वा तादृशमेव गाढम् (वाढं)॥३२
सोमं निरीक्ष्यास्य समत्वहेतुं जेतुं दुरन्तं कुसुमेषुकेतुः ।
मधुन्युपातप्रतिमावतारं पपावदस्मत्वरमप्यसारं ॥३३
मद्येन साद्धं मम सेमुषीतः सशीतरश्मिच्छविभृन्निपीतः ।
नो चेदिदानी सुदृशां स दन्तस्तमस्स्मयाख्यं च कुतो हृतं तत् ॥३४
रागं तमक्ष्णोः प्रियवच्छ्रयन्तं रतिप्रतिज्ञां प्रथयन्तमन्तः ।
सुरारसं सन्निदधाति योषा स्म या स्मयोच्छेदपटुं सुतोषा ॥३५
कलङ्किना क्रान्तपदं च कश्यं नावश्यनश्यत्तमसेदमस्यं ॥
तत्याज वेगाच्चषकं स्वहस्तादित्येवमुक्तासुरताय शस्ता ॥३६
अधोऽथ पीतासवसुन्दरेभ्यस्त्यक्तं त्वमत्रं मिथुनाननेभ्यः ।
रुदत्तदिन्दीवरमेव शापश्रिये ह्रियेवालिरवैरवाप ॥३७
आस्वाद्यमद्यं चषकं त्यजन्त्यास्सम्प्रस्नवत्सीध्वधरं भजन्त्याः ।
चुचूष सद्यश्चतुरस्तमत्यादरेण चूतोचितकं सुदत्या ॥३८
चक्राह्वयद्वैतवदुज्वलाशेऽधराधरिप्रेमजुषो विलासे ।
वर्त्म स्वयं वै तमसोऽवरुद्धं मनोजराजेन पुनः प्रबुद्धं ॥३९
मदास्पदोसावधुनोदियाय प्रच्छादितोऽन्तस्त्रपया चिराय ।
यत्नेन योऽम्भोजदृशाम्महीयान्रागो दृशोः प्रीततमं प्रतीयान् ॥४०
यदेवमिन्दीवरपुण्डरीकसारैः समारब्धनिजप्रतीकम् ।
मदेन सत्कोकनदस्य शोभां चक्षुर्दधच्चारुदृशामदोऽभात् ॥४१
अप्रस्तुतत्वात्सुदृशां सदङ्गे गुप्तोऽपि सन्धातुगतो यथार्थः ।
मदेन वाऽनेन किलोपसर्ग-पदेन ह्रादिव्यो कृतार्थः ॥४२

कुचोऽथ बध्वा भृशमम्बकारि स्मितं मुखाम्भोरुहि हारहारि ।
वाक्कौशलं किन्त्व मदेन यूनाच्छटाकटाक्षस्य दृशोरनूना ॥४३
रूपं सदेवाप्रतिमच्छविश्रं कार्यानपेक्षिप्रणयं पवित्रम् ।
वचश्च चारुप्रवरेषु तासां वदामि सत्कर्मणमिन्दुभासां ॥४४
तनूनपाद्भिर्मदनं तथाद्भिः खण्डं तथाम्भोरुहरम्यपाद्भिः ।
समासभृद्धासविलासभाषादिभिर्नृ चेतोऽपगलेत्सकाशात् ॥४५
जयेज्जनीनां स्मितसारजुष्टिर्नृ भ्यो वशीकारकचूर्णमुष्टि ।
मञ्जीरकोदारझणत्कृतश्च पञ्चेषु मन्त्रोक्तिपदं समभ्यत् ॥४६
रतीशतीर्थाङ्कपदं जघन्यम्भ्रुवृषाग्र्य दृक्कोणकशौर्यरन्यः ।
उरोजदुर्गे नयनं जनस्य कस्य स्मरादेशकरो न कस्य ॥४७
जगाम मैरेयभृते त्वमत्र आघ्रातुमाचप्रतिमेऽलिरत्र ।
बध्वा सबध्वानयनेऽञ्जबुद्धि स्याल्लौलुमानान्तु कुतः प्रबुद्धिः ॥४८
ततत्यजेदं मभमाजनन्तु दुदुद्रुतं तेमुमुखासवन्तु ।
बध्वा ददे देहि पिपिप्रियेति मदोक्तिरेषाललिमुदे निरेति ॥४९
मणिमयचषके श्रियमवतरितां दृष्ट्वा वरखरखण्डितकरितां ।
अधरालक्तनुदोऽपि सुदारास्सम्मुद एव दधुर्मधुवाराः ॥५०
मधुनायचरमणीयत्प्रगल्भतां वक्रवाक्यरमणीयः ।
सूचितगूढरहस्यः परिहासः श्रीजनिमपश्यत् ॥५१
मन्दगलत्त्रपमिरथानिदधत्याथेषदुन्मिषितचक्षुः ।
बध्वाऽधोमुखपादो दयितमुखं वीक्षितममंचु ॥५२
सुदृशां मदेन विभ्रमपुंसि वपुं षीरितानि निजमूर्छः ।
इतरेतरसङ्गाद्धिव कुचकुम्भैरुद्धतैर्यतः ॥५३

साचासि रसिके रुष्टा तुष्टा न पदाब्जयोरपि च जुष्टा ।
मधुविलुप्तविवेका तथैव तमतोष यदि हैका ॥५४
प्रियसङ्गमनिर्जितरुषि शमितविवादे प्रसभया धनुषि ।
नेषुं रतिहृदयेशः श्रितसन्धौ यौवते प्रविदधे सः ॥५५
इत्येवमभिनिवेशे स्मरशरसम्बिद्धसकलभूदेशे ।
नक्तं व्रजति विशेषे संहतिलिप्सौ नरि अशेषे ॥५६
एका सखी विवेकाञ्चितचित्तासानुकूलमपि चकितां ।
उपदिशति स्म न वोढां प्रोढावोढारमनुगताम् ॥५७
राजीव मधुरनयने नयने अयने निमीलिते कस्मात् ।
निर्जितदर्पकमधुना दर्पकवशगं प्रियं पश्य ॥५८
यदि कुपितासि सुभाषिणि करजक्षतपूर्वकं मदनशासिनि ।
भुजपाशेन दृढन्तं वधाननिगलेऽत्र विलसन्तं ॥५९
रमणे चरणप्रान्ते प्रणतिप्रवणेऽप्यनन्यशरणे वा ।
रचिता उचिता न रुषस्तत्वं निगदामि सखि ते वा ॥६०
शुभवति भवति सतारानाकाशे भवति भवति अपि चारात् ।
मदवति द्रवति रतीशे काननमेतस्य वरमीशे(अहं) ॥६१
जयते कञ्चुकहृदयं यदिदं ते तन्वि सङ्कुचति हृदयं ।
भुजवति जवति विलास्मि मुञ्च शरं मंक्षु गदितास्मि ॥६२
अञ्चति रजनिरुदञ्चति सन्तमसं तन्वि चञ्चति च मदनः ।
युक्तमयुक्तं तत्यज रक्तमम्नुस्मिँस्तु रचय मनः ॥६३
मनसि मनसिजनि(मि)ताया वनिताया विरहदग्धहृदयायाः ।
तन्लिङ्गानि तदानी स्फुलिङ्गानीतिनिरगच्छन् ॥६४

आलीगिरा ह्यकृतिनः पुराऽपराधा उपेक्षिताः कति न ।
अधुना तु तर्जनीयः कितवो नियमेन न वशी यः ॥६५
स्फुरसि कथं भुजलतिके लोचनतां किं गता त्वमपि वृतिके ।
नागतमप्यहममतं स्पृष्टुमलं दृष्टुमपि मम तं ॥६६
सोमो भवान्यदाभूद्विधुमणिघटिता तदाहमपि साभूः ।
त्वं खररुचिरद्यशठद्युमणिप्रकृतिमहमपठं ॥६७
तव निर्घृण किमिहार्थः याहि ययैवानुरज्यसेऽपार्थः ।
माऽपहर कुचग्रन्थि किमपास्तातेऽस्ति हृद्ग्रन्थिः ॥६८
मानिन्यसहेति मुहुर्धिक्कृतिरपि कल्पितामयीह बहु ।
कितवगुणाननुवदता हे जिन सवयोजनेन सता ॥६९
क्रीडाकोपात्कथमपि गच्छेति मयोदिते कठिनहृदयः ।
त्यक्त्वा तल्पमनल्पं गतवान् सखि पश्यतादद्यः ॥७०
यामि विधावभ्युदिते पुनरायाष्यामि चेति संगदितं ।
तद्दुदन्तत्वेनाहं नेदं तत्वेन वेद्मि मितं ॥७१
मञ्जुलघौ गुणसारे किल क्वचित्सुसखि नापदाधारे ।
तत्रोपपतौ चेतः पत्यौ ना नीदृशि ममेतः ॥७२
सखि शस्तः सखिवत् पातिरिति किं मृदुलोचनेन जानाषि ।
शस्तोऽतिसखिवदुपपतिरित्यालि न किं समानासि ॥७३
श्रीमत्तमालशकलभ्रु विमुञ्च जालं,
त्वच्छन्दबोधमधुना निगदामि मालं ।
आशासितेतिब(भ)दनोदलवैश्च शस्यै—
मुक्ताफलानि तु ददावुपहारमस्यै ॥७४

प्रेयसी प्रियतमस्य पार्श्वतश्चन्द्रकान्तमृदुपुत्रिकां स्वतं ।
संस्फुरत्प्रस्रववारि कां हि कासक्तकामकथयत्सपत्निकां ॥७५
यूनित्राणतरलैरयितिर्यक् पातिभिर्मदमतिष्ववतीर्य ।
दूरदर्शिभिरलंघितवाला लोचनैः श्रुतिरहो सुविशाला ॥७६
मधुनामधुनाधुना कृतं रसवत् प्रत्ययमभ्युपेत्य तैः ।
मधुरस्मितसुन्दराननैर्मधुरं रूपमवापि यौवतैः ॥७७
हृदि वाचि कपोलयोर्दशोर्वानिखिलेष्वेव विचेष्टितेष्वदीना ।
अनुरागमिहानुभावयन्ती प्रथितार्थाऽजनिरञ्जनीजनीनां ॥७८
इगियं श्रुतिलंघनोत्सुकाऽराद्भ्रुकुटीस्मार्तसुधर्मकीर्तिर्लोपयन्ती ।
न पुराणपथाश्रिता विलासाः सुरताङ्कोऽयमनीतिरेव तासां ॥७९
लीलातामरसाहतोन्यवनिता दष्टाधरत्वाज्जनः,
सम्मिश्राञ्जरजस्तयेव सहसा सम्मीलितालोचनः ।
वध्वाः पूत्कृतितत्परं मुकलितं वक्त्रं पुनश्चुम्बतः,
निर्याति स्म तदेव तस्य नितरां हर्षाश्रुभिः श्रीमतः ॥८०
भूर्जप्रायकपोलके दललताव्याजेन वीजाक्षराः,
प्रान्ते कुण्डलसम्पदौ विलसतो युक्तौ ठकारौ तरां ।
लोमालीति च नाभिकुण्डकलिताश्रीधूपधूमावली,
सञ्जीवाजजयमालिका गुणवतीयं हेमसूत्रावली ॥८१
मायात्रयपरिवेष्टितात्रिवलिमिषेण तनूदरी ।
त्येषा सा स्मरभूपतेः स्तम्भनविद्यासुन्दरी ॥८२
सुन्दरीः सद्यः सुन्दरैः कलयितुमनुष्णरुचोऽनुसं ।
मधुराकलालिरिवोज्ज्वलप्रतिमावभावाप्तया ॥८३

रतिषु पाटवमासवोऽलमलं विधातुमभूत् पुनः ।
स तनोः सुखानुमतेः परं लालसकरः पठावनः ॥८४

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
तस्यास्मिन्मदयन्मनःसमनसा सर्गः समाप्तिं गतः,
श्रीकाव्ये स्वरसेण चैष दशमः षष्टोत्तरः श्रीमतः ॥८५

इति श्री वाणीभूषण ब्रह्मचारि भूरामलशास्त्रि विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये षोडश सर्गं



अथ सप्तदशः सर्गः

अथोर्जतीन्दौ बहुमानवित्तं हृतुं प्रहतुं च वियोगिचित्तं ।
भयाढ्यतामभ्युपगम्य शिष्टाः सर्वे युवानो रहसि प्रविष्टाः ॥१

श्रिया क्रियातोऽपि किलाप्रशस्यं कलङ्किनं जेतुमिवाप्यवश्यं ।
भास्वान्पवित्राणि रहः कृतानि जयोभ्यवाञ्छन्मृदुचेष्टितानि ॥२

कोकस्य कल्पो विधुजन्मनीति लोकस्य तल्पोक्तगुणप्रणीतिः ।
नो कस्य वांछा प्रभवेत्कलायां जयस्य चानन्दभुवीष्टिमाया ॥३

संकोचभृ-पद्मधुरा पुरा तु कुमुद्वती सालिरितानुमातुं ।
सुधामसत्कारवतीं निरुच्य स्फुरंति सत्कारमहिम्नि रूच्यः ॥४

तां सम्पदामभ्युपगम्य धात्री सम्वाधमध्यादुपभोगपात्रीं ।
ततः समुद्धतुं मिवाभ्यवाञ्छच्छनैरसौ निस्व इवाध्वयात्री ॥५

सहालिभिः पार्श्वमुपागमि प्राक्ततः शनैस्तेन तयैकया स्राक् ।
क मायिना तां च नियुज्य वालावशेषितात्मैकसुहृद्रसाला ॥६

अथास्य दोषा रजनीव राज्ञ उरीकृता सत्कृतसूक्तिभाग्यः ।
निरुक्तवेशाभरणैः समुक्तैः समन्ततः पीततमाभरूक्तैः ॥७

महाशयोऽगस्त्य इवैष वारां निधिं स्वसात्कर्तुं मगादिहारात् ।
अजायताचीणरसर्द्धिरेषा योगोनयोः स्फूर्तिकरो विशेषात् ॥८

योगस्तयोः कौतुकमित्यथोधाद्यस्याणिकायां गणिका अबोधः ।
न यद्विचारश्चतुरैरवापि लेभे मुनीनां न मनोऽप्यपापि ॥९

सिंहासने स्थातुमथानुयोग्ये योग्ये नृशार्दूलवरेण भोग्ये ।
कुरङ्गनेत्राधिकृतापि नेत्रा शशाक सा कम्पवती न जेत्रा ॥१०
दिशां च यामादरभावकर्तासनेऽपि तस्थौ परिरभ्य भर्ता ।
न तामुपादण्डमहो मनीषामवाप सम्यक् स्मयसारिणी सा ॥११
सदस्यदः शीलितमेव मालाक्षेपात्मकं ज्ञातवतीव बाला ।
तच्चापलं चापललाममसार्ऽरं दृशापि लब्धुं न शशाक सारं ॥१२
मास्तूतसुस्निग्धतमेऽत्र हृद्यान्यस्तं दुराकर्षमितीङ्गकद्या ।
चापल्यचारुप्रियसादुव्रजन्तं प्रत्याचकर्षार्द्धपथा दृगन्तं ॥१३
स्वाङ्गं प्रदातुं भवतीव वामानुयाचमानाय पुनर्न वामा ।
राज्ञे किलाङ्गेव पुनर्ननामासकौ समारब्धपुनीतनामा ॥१४
उत्थातुमर्हः स्तनयो ह्ररारिर्ह्रिया भयेनापि पुनर्न्यवारि ।
यथा कुदृष्टया दुरितेन सम्यग्गुणः पवित्राभ्युदयैकगम्यः ॥१५
ह्री क्रीडितुं स्थातुमथात्र कामः न सन्दिदेशाब्जदृशः स्म नाम ।
प्रत्याव्रजंत्यर्द्धपथाद्धि काणास्तिरश्चरन्तोऽपि दृगन्तवाणाः ॥१६
तनौ लतायां क्वचिदेव गूढेङ्गकेऽपि दृष्टिं निदधत्यमूढे ।
तामागतां धर्तुमिवात्रवारांशुकेन तत्राम्बुजलोचनारात् ॥१७
नापोपकण्ठं सहसोपकण्ठीकृतापि यूना पिकमञ्जुकण्ठी ।
नैकासनैकासनितास्यसुप्ता संशायिता वाक्यवेषु गुप्ता ॥१८
लुप्ता न संकोचलती रमायाः कृताः प्रणेत्रा बहुशोप्युपायाः ।
अपत्रपा स्यादिह सा त्रपापि तेनाथ भूयो गुणसंकटापि ॥१९
आयाति नाथे सुतरां निरस्ता वागादिसल्यः खलु यास्तु शस्ताः ।
लज्जापलज्जा भवतीव कान्तसमागमेऽस्याः समगादुपान्तं ॥२०

अपा अपायिन्यपयातु केन क्रमेण कृत्वेति सुवर्णवर्णेन ।
श्रीवारिदेनानुनयान्वयादि नदीत्वदीना सहसोदपादि ॥२१
इवालिरस्मीह तु कौतुकाय लताङ्गि ते जातु नवास्त्वपायः ।
नयेति विश्वासमयेऽभिनेतुस्तान्नेतुमासीत्सुवचोऽयने तु ॥२२
न याचिता सा सुरताय वाचमदाचदाऽवादिमुहुस्तवा च ।
जयेन येनासि सम त्तमौना जानामि नानादरिणी रतौ ना ॥२३
समाह सा सम्प्रति नेति नेति स स्मामृतेनेव मुदं समेति ।
अहो भवत्या भुवि न द्वयेन समर्थितं मन्त्रपितं हि तेन ॥२४
सा काममुत्सङ्गकृतापि तेन माऽऽकाममुत्सङ्गकृताऽपि तेन ।
वाञ्छामि वालेऽन्तलतामनोहं वाञ्छामि वालेन्तलतामनोऽहं ॥
स्खलत्तदन्यश्रवणावतंसानुयोजने दत्तशयद्वयं सा ।
मुखं तिरः क्लृप्तवती सुगात्री भर्त्रे कपोलस्य बभूव दात्री ॥२६
दिने तु नेतुर्विरहासहत्वान्निशः प्रभोः सङ्गदिशः स्मरंती ।
दिनोदयं सा पुनरिच्छति स्म स्मरक्रियां भर्तु रनुत्तरंती ॥२७
निचुम्बने ह्रीणतया नतास्यास्थिवने हृदीशप्रतिबिम्बमाप्यात् ।
समुन्नमय्याशु मुखं सुखेन वाला ददौ चुम्बनकन्तु तेन ॥२८
रतिह्रियोः प्रेङ्खणकारिणीशान्वाशाजुषः कुण्डलकद्वयी सा ।
तिरोनताभ्युन्नतवक्त्रभाजस्तुलेव लोला सुतनोः रराज ॥२९
विचुम्बतोधीशमुखस्य शीतकरत्वमित्युक्तवती सतीतः ।
सत्त्वोद्भवद्वेपथुका तु तानि वितन्वती सम्प्रति सीत्कृतानि ॥३०
न याचनात्सन्ददती कपोलमथान्यहृत्कां स्मरसिन्धुकोलः ।
कृत्वा तदादायसा(?)सीस्मियेन किमित्यमुक्ति मद्रिताङ्मि येन ॥३१

ह्रीणां च वीणां क्वणने न गावा न कौमुदीवास्ति मृदुस्मिता वा ।
अथाद्य मूकास्ति कुतोऽप्यनूकाचतान तामित्यपि वावदूकाम् ॥३२
वाणी कृपाणीव न कर्कशार्यास्थि कौमुदीवन्न कलङ्किभार्या ।
नूनं तनुं भो समयानिवार्यात्रपात्रपायाच्च कुलीननार्याः ॥३३
पत्या चरत्यादरिणी निपीतरदच्छदप्रोञ्छनकारिणीतः ।
परं न तस्यैव हि रागभागाभिव्यक्तये स्वस्य हृदोऽपि चागात् ॥३४
बलादुपात्ताधरचुम्बनाय नता निपीता दृशि सस्मितायत् ।
धवस्य दृष्ट्वाधरमात्ततुल्यं विधोः कलेवाब्धिसुताह सत्यम् ॥३५
सारोऽम्युदारो दयिते तवायं हारं समारब्धुमिति द्रुमायं ।
आरभ्य नाभेः रसिकेन सम्यगाकण्ठमाश्लेषि वधू विनम्य ॥३६
किलाभिभूतं स्मरव ह्रीमत्यादराद्धसन्त्या हि विभूतिमत्याः ।
विकाशयामास शयाशयेन यथापशैत्यं भवता जयेन ॥३७
शनैश्च पश्चाच्चिरकाशितेन भी ह्री च नेत्राशयचालनेन ।
रक्षोमहोमन्त्रमिदाविदारादपूजि साध्व्या स्मितपुष्पधारा ॥३८
जयाननेन्दुः सुदगास्यपद्मश्रियान्वयं प्राप्य मुदेकसद्म ।
सानङ्कता किन्न यशोधनायदलम्बि वैरस्य विशोधनाय ॥३९
सुधाश्रयं प्रागधरं समाहावराङ्गपानेषु कृतावगाहा ।
सङ्कुचितप्रान्तगतं मुहुर्वाऽवदत्वरामुद्गतवेपथुर्वाक् ॥४०
स्मितामृतांशैः परितोषितत्वाच्चवोरुसम्वाह नमेमि सत्वात् ।
इत्युक्तिलेशेन तदुक्तदेशे करं पवित्रं कृतवानशेषे ॥४१
आप्तुं कुचं हेमघटं शुशोच एकोऽररं कंचुकमुन्मुमोच ।
चुकूज तन्व्या मृदुबंधनदचाभृद्रोमराजीप्रतिबोधभद्रा ॥४२

सदंचलं संप्रति वद्ध मीशकरोऽङ्गनावत्तसि तूष्णी सः ।
अभूत्तदाछादयदाशुसातं भुजालताभ्यां कुचकुड्नलान्तं ॥४३
नखैरखानीह पयोधरे तु समुद्गमः श्रीपरिखामनेतुः ।
तृतीयसम्पौरुषपारमेतुममानि हेतुः किल सैव सेतुः ॥४४
समस्त्यमुष्या हृदये सुकारेः समादरः श्रीगुणिनामुदारे ।
कुतोन्यथा स्थातुमशाकि हारैर्गु णच्युतैर्नाद्य हताधिकारैः ॥४५
मेरोः शिलामूलघने प्रियायाः कुचोच्चये सोमतुजोभ्युपायात् ।
भूयोभिपातेन नखैः प्रकाममवापि भुग्नैर्नखरेति नाम ॥४६
सरोषदोषापनुदोऽपि वारियतोऽस्ति लब्धा खलते न खारी ।
सदम्बरामञ्जुपयोधराभूर्विलोकयामीत्युदिताम्बराभूत् ॥४७
एवं यमुत्तानितजन्मपत्रामत्रासयत्प्राह पुनः पवित्रां ।
नवग्रहोत्साहमयो जयोऽपि नयेन संलग्नकथा व्यलोपि ॥४८
खिन्नास्य केनासितकेशि नीचैर्गतेन दोषाकरतापि येन ।
निषिद्धयते किन्तु तनौ नवोच्चैस्तेनेन सम्यग्गुरुणा हितेन ॥४९
पयोधरालिङ्गन एव कृत्वा समुत्करं गोमयमात्तसत्वात् ।
लसत्यथास्यामृतकारिकामधेनो त्वयारब्धमिदं ललाम ॥५०
रते च ते संकुचतीह हृद्यत्कौमारमुत्सृज्य तु मेऽतिहृद्यं ।
गुणानुरागी करमर्पयामि अस्योपकारं न हि विस्मरामि ॥५१
सारोऽप्यहो सानुमतीव तेन वाहेन कृत्वा नवलावलेन ।
सदास्यशीतांशुनिचुम्बनेच्छानुभूतयेऽङ्के स्वयमुन्नतेच्छां ॥५२
पयोभुवः स्पर्शकृतेति मन्ये करप्रवालेन कुलीनकन्ये ।
वदेतदागोऽत्र विशोधयामि समर्प्य सन्मौलिमणिं नमामि ॥५३

दृष्टापि दृष्टा मुहुरुत्सवेन यालिङ्गितालिङ्ग्यभृशं थवेन ।
अचुम्बिबाला परिचुम्बितापि सा नूतनातृप्तिरनूतनापि ॥५४
औत्साहृताऽनेन किलेति कृत्वा ममेभकुम्भस्य तदेकसत्त्वा ।
विमर्दयामास कुचाङ्गमस्याः स कामरामा सुषुमैकमध्याः ॥५५
न सा कृशाङ्गी विजगाह सम्यक्प्रियस्य वचः परिणाहरम्यं ।
स्पृष्टुं भवानुच्चकुचं सुकेश्याः शशाक किं तत्परिरम्भणेऽस्याः ५६
बारा यथारात्प्रतिरोमकूपमपूरिवारापि तथापि भूपः ।
नवारितामाप पुनीतकेश्या दत्त्वा दृशं कौतुकतोङ्गकेऽस्याः ॥५७
कृष्टेंशुके गूढमुरो भुजाभ्यां न्यस्तेन्तरीये धृतजानु नाभ्यां ।
बद्धे क्षणे नेतरितत्प्रतीपकर्णोत्पलेनास्तमितः प्रदीपः ॥५८
हृतप्रदीपेऽपि मयास्ति पीततमा निशा किं खलु सम्मतीतः ।
बालेति साश्चर्यसिता न नेतुरदादृशं सन्मणिमौलये तु ॥५६
न्यधात्सतो मूर्धमणौ स्वकर्णात्कञ्जं च सत्कर्तुमिवात्तवर्णा ।
भ्रूमण्डलेऽस्मिन्मणिकण्डले तु समुद्धरन्ती द्युतिदानहेतू ॥६०
चरन्करं प्रेमिकरः प्रतीरेत्र नाभिकूपे पतितो गभीरे ।
काञ्चीगुणं प्राप्य पुनः स नाम जवेन तन्व्या जघनं जगाम ॥६१
प्रियाश्रितैः प्रागतुषन्नरेन्द्र आभूषणैर्यैः परिणामकेन्द्रः ।
तदा तदङ्गे क्षणविघ्नकृद्भ्यस्तेभ्यो विरक्तोऽपि विकारभृद्भ्यः ६२
तयोस्तदानीमुभयोश्च दन्तक्षतप्रभृत्यप्यभजत्पटुत्वं ।
तथा यथा काञ्चितकोलकादिशाकेऽर्पितं नान्वयते कटुत्वं ॥६३
मुकण्ठकम्बुर्यदपूरितेन निरस्य लज्जायवनीं स्मरेण ।
स्वेदोदपुष्पे सुदृशः सदङ्गे रतिः स्वयं मञ्जु ननर्त रङ्गे ॥६४

सुमेषुरुच्चैस्तनशैलमन्वास्थितो यदासीदनुकर्णधन्वा ।
परागरङ्ग यत्नमिति भ्रमाम्भोऽनयोर्जयद्वीरमुखोल्लपाम्भौ ॥६५
तनूदरित्वत्तनुमध्यमेतत्किं मुष्टि संवाह्यमपीतिमेतत् ।
शतच्छदोदारकरस्य नीविं निराचकारेति मिषात् स जीवी ॥६६
पुरारुणाद्गाढमथादृढेन करेण नीविं च न नेत्यनेन ।
पदानुवादेन रते रसाचिण्यभूदिवानन्दनिमीलिताची ॥६७
वलित्रयोपासितविग्रहाय करद्वयी चापलमाप सा यत् ।
समेखलं किन्तु लभे तृतीयं सुदीर्घसूत्रं पुनरन्तरीयं ॥६८
समन्तरीयोद्भिदि सम्पतन्ती त्रपापगायां स्मरवैजयन्ती ।
प्रसङ्गतः सङ्गतकण्टकत्वादभूदिदानीमुपलब्धसत्वा ॥६९
सुलोचनासोमसुतावितस्तु रतिस्मरौ यत्प्रतिपद्यवस्तु ।
अभूत्प्रतिस्पर्द्धितयेव रंगभूमावितः स्फूर्तिकरः प्रसङ्गः ॥७०
पत्यौ परारंभपरेऽभिजातमानन्दसन्दोहमिहाभ्युपातं ।
अमे ग्मन्तः परिमायितुं द्रागियं च कम्ये किल हर्परुन्द्रा ॥७१
नरे हरत्यंशुकमाततान कोदण्डकं कर्णपयोभुवा न ।
नीव्यांकरं कुर्वति सन्ददाना स्मरं सुभास्त्रं किमिवाह मानात्॥७२
शास्तारमाप्त्वानुनयन्तमस्मादिगम्बरत्वं समगादकस्मात् ।
आनन्दसन्दोहपदैकभूवश्वसान्नभूद्यत्किमतो बभूव ॥७३
एकस्य मुक्तावलिरेव सारे बभूव भूषाच्युतहारचारे ।
छायाच्छलेन श्रमवाः प्रसोरहृद्यन्यदीयेऽपि तयोरुदारे ॥७४
मिथस्तयोरुज्वलवाहुवल्लिमतल्लिकालिंगनमण्डली या ।
हेमाब्जिनीवालमृणालजन्मा पाशो रतीशस्य स एव जीयात् ॥७५

योग्येषु भोग्येष्वपि सम्प्रतीकेष्वन्येषु संप्रीतिमताजनीके ।
रुचिर्हि सर्वप्रथमाधरे तु माधुर्यमेवात्र समस्तु हेतुः ।।७६
सपत्त्रमादष्टवति प्रवालोपमंतुनेतर्यधरं त्रपालोः ।
अकूजि सम्यग्वलयाकुलेन ससाध्वसेनेव पुनः श्रयेन ।।७७
प्राप्योपहारं कमितुः करन्तु तन्व्याः प्रसन्नादुरसोऽयतन्तु ।
मुक्तावलीहास्यपरम्परा वा पपात तावद्विशदस्वभावा ।।७८
वधूरसः स्यामिकरप्रचारमवाप्य सद्यो-विजहार हारः ।
स्वेदोदबिन्दुच्छलतोऽत्र मुक्ता माला विशालापि बभूव युक्ता ।।७६
दृढं च यूनः करवारमाप्त्वाप्यपत्रतावापि किलाकुलेन ।
कुण्ठात्मकोरः कठिनेन तन्व्यास्तथापि नानामिमनाकुचेन ।।८०
अकारि सच्छिल्पकृतः खरारेर्नखैर्विभुग्नैः कथमप्युदारे ।
स्वेदोदसिञ्जन्मृदुभिः पदं दोर्मूले शिलोत्तानतिभे सदन्दोः ।।८१
आवर्तवत्यां वलिनिम्नगायां मध्यं गतः पीनपयोधरायाः ।
समन्दुकूलं स समैच्छदेवं चकार वाराकरवारमेव ।।८२
करस्य संहर्षधरस्य नाभ्यामाकर्षतो वस्त्रमदः कराभ्याम् ।
विरोद्धुमेतां कलिमप्रदश्यां काञ्च्या शिशिञ्जे वलयैश्च तस्याः।।८३
दीर्घाङ्गुलिः संगवतो नृशद्रेः करोऽतिरिक्तोप्युदरे दरिद्रे ।
विसंकटं श्रोणितटं तदर्थवत्याः समाप्तुं किमभूत्समर्थः ।।८४
निलेतुमन्तस्त्वितरेतरस्याभिवाञ्छतः श्रीमिथुनस्य यस्स्यात् ।
विरोधहेतुस्तनकप्रियोरः समुद्भवः स्पष्टतया कठोरः ।।८५
दत्त्वोथ कचागुणतत्परेण पीनोरुकस्तम्भमितः करेण ।
परामृशन्प्रेमभुजो रराज विमोचयन्वा मदनेभराजम् ।।८६

प्रथात्मजन्मानमपेत्य दैवसम्वेदकः श्रीसुदृशस्तदैव ।
रदच्छदे स परिणामसर्गं लिलेख दन्तैर्वरमष्टवर्गम् ॥८७
कुचोपपीडं परिमृष्टमिष्टजनेन तन्व्या यदुरोविशिष्टं ।
स्वतः सपत्न्या हृदयं विभिन्नमितोऽमुतः पर्वत एव किन्न ॥८८
पृष्टे पुनः कञ्चुकमुक्तये तु प्रहिण्वती पाणिमपि स्वनेतुः ।
मनोमृगं हन्तुमभात्सुयोषा तूणाच्छरं कृष्टवतीव मो सा ॥८९
प्रत्युक्तवाक्याहमितः स्मरामि यतो नरेवात्र विभासि नामि ।
सम्वद्गताभति करो यथा मे स्तनोऽप्ययमुक्तस्तकिन्नरामे (?)॥ ९०
विलासवत्या उदितावकस्मात्पयोधरौ श्रीकलशाविवास्मात् ।
वितेनतुर्मङ्गलमुद्यतस्य जगद्विजेतुं मदनस्य तस्य ॥९१
बलादुपालभ्य मुखं प्रबन्धकर्तर्यथो चुम्बति नीविबन्धः ।
सुमेषुचापभ्रु व एवमापद्भियेव सद्यः शिथिलत्वमाप ॥९२
राज्याभिषेकाम्वुघटौ स्मरस्य निधानकुम्भाविव यौवनस्य ।
रतेरिनाक्रीडधरौ धवेनाभ्युद्घाटितौ स्त्रीस्तनकौ जवेन ॥९३
स्तनौ सुरोमाञ्चतयातिपीनौ करौ स्फुरद्धस्ततलौ च दीनौ ।
कुतोऽत्र पर्याप्तिमगच्छतां तौ नतभ्रु वश्चावनिपस्य भान्तौ ॥९४
अपत्यभावाय च रोमराजीतो जागरित्वव्रतमित्यभाजि ।
तयाथ मुक्ताफलताप्यधारि समुत्थघर्माम्बुलवप्रकारैः ॥९५
हरत्यधीशे वसनं कटीतः ह्री यातु विश्लेषविरोधिनीतः ।
स्मिताम्बुभिः सिक्तमुरोजदेव बिम्बं विनम्राननया तदेव ॥९६
स्वमन्तरार्द्रत्वमुताह सम्यगनारतप्रेमरसैकगम्यम् ।
वपुर्दृढाश्लेषिणि यूनि वासः क्नोपं पयोमुञ्चदनंगमासः ॥९७

शरीरमेतद्घनसारबिन्दोः समेत्य सद्भ्याञ्जनसत्वमिन्दोः ।
तुल्यावनाथा अमृतस्य धारापिनन्यजाता द्वितयीव सारात् ॥९८
चित्तेशचन्द्रस्य करोपलम्भे आनन्दसिन्धुद्रुतमुज्जजृम्भे ।
बहिर्बभूवाब्जदृशां सदेवं स्वेदापदेशादुदकं तदेव ॥९९
स्तनौ वराङ्गं च परीच्छताद्युत्सृष्टमीशेन स्मेत्युवाह ।
विलग्नमम्भोजदृशोत्र तेन भ्रूभङ्गमाप्त्वापवलिच्छलेन ॥१००
महाशये कूजति कण्ठकम्वौ काञ्च्यां विपञ्च्यामपि स क्वणंत्यां ।
लासं गुरुस्तं भरतोनितम्बश्चकार चारुस्मरवैजयन्त्यां ॥१०१
भ्रूगण्डतुण्डाधरबाहुदण्डावलग्नकुण्डादिनिचुम्वनेन ।
सता रतिं क्रुद्धवधूनिषिद्धां कृतोचितिः सात्वयितुं धवेन ॥१०२
अनादिरूपा सुदृगित्यनेन ह्यनन्तरूपत्वमितं जयेन ।
अनाद्यनन्ता स्मरति क्रियास्ति तयोरनङ्गोक्तपथप्रशस्तिः ॥१०३
वामा न वामापि यथोत्तरं सारक्तोऽभवच्छीह रितोऽपि वंशात् ।
पीतो ह्यपीतो मधुराभिराभिः कषायलः कामधुरः क्रियाभिः १०४
शाटीमिव बहुगुणां रतिं तु तनौ निशायामप्यधिगन्तुः ।
संकुचतातिशयेनानापद्भ्रीणा स्मरवीणा समवाप ॥१०५
सद्यस्तनस्तवकभारमहोदयेन,
पुष्टापि सज्जघनमूलशिलोच्चयेन ।
जातात्र संकलितरूपगतेन कामा,
रामाविभूचितविहारवनीति वामा ॥१०६
सुरतसमुद्राद् हृदयामत्रे खलु शर्मवारिसंभरणं ।
अशमित्यर्थात्सुदृशां सममाद्गद्गदगिरोद्धरणं ॥१०७

सुरतरङ्गिणि उत्कलिकावतीतरणिरद्य न विद्यत इत्यतः ।
पृथुलकुम्भयुगं हृदि मन्दधद् घनरसस्य स पारमुपागतः ॥१०८
स्मराध्वरे तर्पितमिष्टमश्वकं समर्पितप्रीति हि देव पश्वकं ।
विभूषिभूराभरणैरिहाधिकाप्यधारि निस्वेदपदात्तदाशिका ॥१०९
नैपावेगं नावकं मस्विमोढुं शक्ता नैनां खेदयेतीहवोढुः ।
कर्णोपान्ते रत्युदात्तस्य गत्वा प्राहोढाया नू पुरं नाम मत्वात् ॥११०
स्वाद्यं मृदुलमध्यायाभान्तमास्येन्दुमश्नतः ।
सन्मुखं जनमत्वं तु सुलभं ममभृदतः ॥१११
अंचलं च यदा कर्तुं कामोभृत्तस्य वाग्करः ।
सुवर्णघटकन्त्वेनोरस्नस्या गुरुतामगात ॥११२
स कामादावथ चान्तां समुपेत्य तदन्वयं ।
अन्ततो र्वचनं कृत्वा रङ्गतत्वमितोऽभवत् ॥११३
यथा सदैवास्य कथासुवर्णामोदामिनी साप्यभवत्सहर्षा ।
यदाप सा कल्पतला प्रकर्ष तदंघ्रिपोप्यम्बरमाचकर्षः ॥११४
तां माननीयां समयन्तमापः स्वभावतः मानुनयत्वमाप ।
रुपस्थली सा पुरपोऽत्र जातुचिदूनभानात्र वपुस्तदा नु ॥११५
विधुर्यदाकामपुरानदीनस्वरुपतामाप तदाकुलीनः ।
कलान्वया चेन्पृथुरोमभावान्मासीत्समुद्रो मुदितस्तदा वा ॥११६
उदयन्तं सरोमध्यमन्त्यजेनान्वितं श्रयन् ।
तृष्णावानेव सोप्यासीदपि कञ्जमुखो भवन् ॥११७
अधरं मधुरं शरभ्रद्रमणीकं समाश्रयन् ॥
समन्तात्पवनोप्यासीदपिपुण्यजनेश्वरः ॥११८

आननेनारविन्देन शर्वरी मोन्वभून्मृदे ।
सदामलक्षणं बाला तद्वक्षस्समभावयत् ॥११६
वलिसद्मोदरं नाभिजातगर्तं नतभ्रुवः ।
वामनोहरभावेन नरस्तावत्समध्यगात् ॥१२०
तदेकव्रतिना भानुमानितां तामपश्चिमां ।
सरोमाश्चतया गत्वा साकुशेशयताश्रिता ॥१२१
नवनीतं वपुस्तस्याः पूतपुण्यपयोभवं ।
समाराधयतो जाता सुतक्रमहिता स्थितिः ॥१२२
मुखं मुकुलमाचुम्बन् कुलीनो न लतां नयन् ।
समग्रभावतो गत्वा शान्ततामाप सुभ्रुवः ॥१२३
योषाया अधरं वरेण कलितं सद्यो दृशामीलितं,
निर्यातं रदरोचियाव्जरुचिना हस्तेन वा वेपितं ।
एवं सन्मणिनिर्भितैश्च वलयैराक्रन्दितं वेगतः,
सन्त्यन्यव्यसनातुरा हि भुवने ये साधवस्ते पुनः ॥१२४
रतान्ते सा भूयो दशनवसनं प्रोञ्छितवती,
विलोलेनेदानीं शयकिशलये नोज्वलदनिः ।
विहस्यैवं रेजे तरलितदृशा तत्परिणतिः,
मुहुर्वक्त्रं पत्युः शिथिलसकलाङ्गीक्षितवती ॥१२५
रत्यन्तं गत्वाप्यददाने याचन्त्या वसनं बहुमाने ।
सरोषकुटिलं सम्पश्यन्त्या रुचिरुचितंवाथवा हसन्त्याः ॥१२६
चापलमहो मृदुदृशः कलितं जघनेऽनपराधिनि तत्पतितं ।
तरलेनापाङ्गेनविवलिताम्वीक्षके घणपरमीक्षतामितः ॥१२७

पतितामलमेखले स्त्रिया पृथुले श्रोणितलेऽन्वभाविया ।
नखमण्डलसन्ततिर्हि यत्परितोवाप च सप्तकीश्रियं ॥१२८
पुष्पवृष्टिरिव पुष्पेषुमता स्वयमुन्नत उरोज श्राशु कृता ।
स्मरसंगरे सुकोमलवपुषः श्रमवारिततीरतिकीर्तिमुषः ॥१२९
नयनन्तु निरञ्जनं परं श्रुतिसंसेवनहेतुनेत्यरं ।
किमु मुक्तिमितेन्दिराजितः कवरीस्नेहसमान्वितमितः(?) १३०
निस्तिलकं गोधिकमधुरश्चापयाचकं चामरप्रपञ्चा ।
वेणीश्रणीमुदामियन्तूरोजे स्वेदजललवाः सन्तु ॥१३१
अनुरागवतां विरागिणामियमेकापि विभवरी नु मा ।
रजनीसुरतानुषङ्गिणामितरेषामभवत्तमस्विनी ॥१३२
इतरेतरमञ्जुतां मुखिन्वान्नयनेष्वानिशमेव पूरयित्वा ।
भरितानि च तानि सम्भृतानि मिथुनेनेह तकेन कोमलानि ॥१३३
सुतनोस्तनमण्डले शयं मृदुले गण्डतले मुखं नयन् ।
निजजानुमिहानुजानु वा स्वपिति स्मेति सुखेन वा युवा ॥१३४
मुदितवदननीपे नाभिकायाः समीपे,
समितनिखिलदीपे कामदेवान्तरीपे ।
प्रचलदलसहस्तं योद्धं रात्रावनन्यः,
स्म लसति वनितायाः सार्द्धं निद्रो स्म धन्यः ॥१३५
अनङ्गसौख्याय सदङ्गगम्या योच्चैस्तना नम्रमुखीति रम्या ।
विभ्राजते स्माविकृतस्वरूपानुमाननीया महिषीति भूयात् ॥१३६
सानुनयाधिगमा महिला सा मणितत्वार्थमिता मृदुहासा ।
बहुलोहमयः पार्श्वमुपेतः काञ्चनरुचिं गतः स तथेतः ॥१३७

पीता सुरोचनापि जयेन नीतानुरागमप्युत तेन ।
हरिताश्रमेण यात्र रमेदं धवलत्वं स्वात्मनो विवेद ॥१३८
गोरी सम्प्रति साशु भारती राजते स्म खलु या रमा सती ।
हरितवसनमधिगम्य समस्यां स्मरति च पुरुषोत्तमेत्र तस्याः ॥१३९
आसीत्तु वामा पुनरत्र रामा धर्माम्बुधायाप्युतकम्पकामा ।
भियेव वा कण्टकिताङ्गसाराथ सा ततः सीत्करणाधिकारा ॥१४०
समाप्युरोजेन खलक्षणापि वृतिर्विभो ते नखलक्षणापि ।
बालाह रोषा तव साधुता वा ममाधरश्रीर्यदि साधुता वा ॥१४१
सुप्त्वा कामकलाश्रमात्कुलवधू पूर्वं प्रबुद्धापि वा,
रन्तुः श्रीसुखनिद्रितस्य ललितं दोःपाशसम्पद्रसं ।
तस्थौ निश्चलसत्तनुर्विलसतः संच्छेतुमेषाधुना,
नागच्छत्सुविचारचेष्टितमना वाञ्छैकसंभावनां ॥१४२
(सुरतवासनानामपद्मचक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
अस्मिंस्तद्विहिते निरंति दशमः सप्ताधिकोङ्कप्रियः,
शिष्टानां सुरतोपहारकरणः संप्रक्तयुक्तक्रियः ॥१४३

इति श्री वाणीभूषण ब्रह्मचारि-भूरामल-शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये सप्तदश. सर्ग



अथ अष्टादशः सर्गः

श्रीयुक्तपाठक शृणुत विनोदकृत्ते सिद्धिं गतेर्हत इव द्वितयस्य वृत्ते ।
ऋद्धिं यतीन्द्रवदुपेतरि सूर्यकान्ते वृद्धिं समर्णवदते तमसि क्षपान्ते ॥१

†स्वस्तिक्रियामतति विप्रवदर्कचार भद्रं सुगोहिवदिते कमलप्रकारे ।
स्वस्तु स्वतोद्य भवितुं जगतोऽधिकारे
सर्वत्र भाविनि किलामलताप्रसारे ॥२

सूक्तिं प्रकुर्वति शकुन्तगणेर्हतीव
युक्तिं प्रगच्छति च कोकयुगे सतीव ।
मुक्तिं समिच्छति यतीन्द्रवदब्जवन्धे
भुक्तिं गते सगुणवद्रजनीप्रबंधे ॥३

लुप्तोरुरत्ननिचये वियतीव ताते चन्द्रे तु निष्करदशामधुना प्रयाते ।
घूकेऽपकर्मनयने द्रुतमेव जाते मन्दं चरत्यभिगमाय किलेति वाते ॥
सुप्ते विजित्य जगतां त्रितयं तु कामे लुप्ते तदीयधनुषो विरवेऽतिवामे
उप्ते रथाङ्गयुगचञ्चुपुटेऽभिरामेऽहोरात्रकस्य मधुरे चरमेऽत्र यामे ॥
नन्दत्वमञ्चति विधोर्मधुरे प्रकाशे पर्याप्तिमिच्छति चकोरकृते विलासे
सस्पन्दभावमधिगच्छति वारिजाते सर्वत्र कीर्णमकरन्दिनि वाति वाते
यत्राचि चाचिपदहोपलकांशमासामेणीदृशान्तु रतिरासबृहद्विलासात्
प्राभुज्जवाद्रजनिनिर्गमनैकनाम सन्देशकस्य पटहस्य रवोऽभिरामः॥
विश्रान्तिमभ्युपगते तु विभाततूर्ये श्रीमेदिनीरमणधाम समाययुर्ये।

---

† सुष्ठु अस्ति क्रिया, स्वस्तिवाचन च ।

सुता जगुः सुमृदुमञ्जुलमत्सवाय रात्रिर्व्यतीतिबिनिवेदनकारणाय
त्वं वाणुरासि मदनैकधुराशिकाभिर्हे देवि सेवितसुखामुखवासिकाभिः
लब्ध्वामुकन्द × गुणमन्यजनाय नाम
+ मोहंकरीति तव संस्तवनं श्रयामः ॥९
एषोऽस्ति मङ्गलमयः समयः प्रभात-
स्तत्तेऽर्थिनीह वशिनः शशिनः प्रभातः ।
ऐच्छन्मुखश्रियमिवानधिकारितातः
बिम्बं पलाशदलतामयतेथवाऽतः ॥१०
शाटीमिता कुसुमितामसकौ विमात-
सन्ध्याप्यवन्ध्यभवनाय सुभाविताताः ।
मुश्च च्चणं खलु विचच्चणदक्तयाऽत-
स्तामीश्वरः सफलयेदिति तं कृपातः ॥११
श्राद्धे यथावनिमहेश्वरि विप्रजातः
पूर्णोदरः ससुरभिश्च विभाति वातः ।
कोकोऽपमङ्गतवरोधृतमोदकोऽतः
सन्तोषिणान्तु विनतिः कणकायनोऽतः ॥१२
कृत्स्नप्रपालननिमित्तमिहाङ्गिमातु-
स्त्वत्तोद्यतस्य तु परित्यजनं प्रयातु ।
अभ्यागतो रविरुपात्तकरप्रसारः कस्मात्तवापि महती दृढमुष्टिताऽरं ॥
हे नाथ नाथ भवतो भवतोऽपि शस्यरूपस्य पश्य कथमद्य किलाशु भावः

× अमुकं दगुणं च, पद्मो कृष्णतुल्यं ।
+ माया लक्ष्म्या ऊहंकरी च ।

संतृप्यते भवभृतां भवतात्समायकायस्य यस्य बहुधान्यहितप्रभावः
मंदाग्निरुग्युगभवद्दिननाथकान्तासन्दर्शितश्वयथुशार्वरमप्युपान्तात्
नेत्राण्यमूनि तिमिराख्यमथाप्यधूरे दोषं किलौषधिपतौ प्रतियाति दूरे
राजापि सत्सुमृदुलोकमुदास एव सन्देशमाप्तुमयते शुचिसंपदे वः।
वत्सार्थमेति भुवि गौरवमाप्तमुक्त वारोन्त्यजस्य सहसा स्फुरणार्थमुक्त
चन्द्राश्मतः प्रचलदम्बुभरं चकोरदृग्भ्यां समादृतमनङ्गसुरूपचौर।
कोकद्वयोक्तहृदयस्य तथैव वह्निः
स्माप्नोति किन्नरविकान्तमणिः सदह्नि ॥१७
निर्यातु जातु न तमोप्यपराधकारि स्रागभ्युदेति भगवन्स तमोपहारि।
इत्यर्गलायितमुदारविचारतत्या चक्राङ्गनाम मिथुनेन न किं जगन्यां॥
एणीदृशां रतिरसप्रसरोपभुक्तैः समृष्टपत्रततिभिः शुचिभिः समुक्तैः।
गण्डैस्तर्कैः प्रहसितः सकलङ्कराशि-
निर्जीर्णकोहलफलच्छविरेवमासीत् ॥१६
ता पुष्पिणीव्रततिमभ्युपगम्य सम्यक्
शुद्धेन तेन पयसाप्लवनं वरं यः।
सम्प्राप्तवान्नपुनरप्युपसर्ग एष
म्यान्मन्दमित्थमनिलोव्यचर(श्चरति)त्प्रगेसः ॥२०
किञ्चाहतः स्तनतटौ निपतन् विलग्ने
योषाजनस्य परिगर्तितनाभिदघ्ने।
रुद्धो नितम्बशिखरैरिति सम्प्रबुद्धः
मंदं प्रयाति पवनः स पुनस्तु शुद्धः ॥२१

सम्पल्लवं कविरिवाब्जततिः प्रभाते
सम्पल्लवं प्रतिरवेर्लभते यथा ते ।
वाचालतां निशि जगाम तमश्चमूक-
स्तस्मादुलूकतनया कतमश्चमूकः ॥२२
यद्वा यथाभिरुचिसन्तमसं निशीथ-
दम्भोरुहाणि मुकुलाञ्जलिभिर्निपीय ।
नाथोद्वमन्ति तदजीर्णतयाधुनाऽर-
मेतानि निर्यदलिवृन्दपदप्रकार ॥२३
श्रीपद्मसद्मरुताशुतयाविलुप्ता-
हंकारतो विमुखमाप्यथवोपसुप्ता ।
या सालसानुशयितव्यपदेशलेशा-
द्योपालिलिङ्ग हृदयेशनिधिं विशेषात् ॥२४
भास्वानसौ क्वचनयापितसर्वरात्रि-
रम्भोजिनी विरहतोऽप्यतिदीनगात्रीं ।
अङ्गीकरोति किल सम्भवता रसेन
तां सानुरागकरचारकलावशेन ॥२५
अस्मत्सकाशमसकौ विधुरभ्युदेति
स्रागवारुणीमनुभवन्विनिपातमेति ।
प्राच्या परावृतपुनीतरदच्छदाया
यद्वास्तिकान्तिरयि नाथ घृणापरायाः ॥२६
यन्मीलितं सपदि कैरविणीभिराभिः
वीक्ष्यत्रपास्तमितिमच्युत तारकाभिः ।

संचिन्तयन्दयितदारतयेन्दुदेवः
प्राप्नोति पाण्डुवपुरित्यधुना शुचेव ॥२७
श्रीकैरवेषु च दलैर्विनमद्भिरेवमभ्युन्नमद्भिरिव वारिरुहेषु देव ।
तं सन्दधत्सुपरिणाममपूर्णमार-
न्तुल्यत्वमश्नति मिलिन्द इहाधिकारात् ॥२८
आदित्य + सूक्तविपदोपरतप्रकारं
हे धीश्वरा × सुरहितं सहसान्ध – कारं ॥
दृष्ट्वेव ‡नालदलसद्धसितं विभाति
शोच्या तथास्ति *कुमुदस्य तु मौनजातिः ॥२९
भीतेर्मरंतु कुलटाहृदयेऽवशिष्टं
घूकस्य लोचनयुगे तिमिरं प्रविष्टं ।
बिम्बं रवेरुदयनेन सता विशिष्टं
पश्येव मञ्जुलमहो नरनाथदिष्टं ॥३०
स्नाता सुधाकररुचां निचयैर्दिगेषा
प्राची स्वमूर्ध्नि खलु हिङ्गुललेखलेशा ।
भास्वत्सुवर्णकलशं तु गृहीतुकामा
त्वन्मङ्गलाय परिभाति विभो ललामा ॥३१
यात्येकतोऽपि तु कुतोऽपि विरज्य राज-
न्यात्माधिपेऽपरदिशां प्रतियाति राजन् ।

+ सूर्योदयसूचकपक्षिरवविशेष, पक्षे देवकृतविपत्तिविशेष ।
× निष्प्राणं, पक्षेऽसुराणां हितकरं । + तमः, पक्षे तन्नामदैत्यं ।
‡ नाल-दल-सद्धसितं, पक्षे नारद-लसद्-हसित ।
* कैरवस्य, पक्षे तन्नामदैत्यस्य ।

सत्पुष्पतल्पमसकौ रजनी दलित्वा
रोषारुणा विकृतवाग्भरतश्चलित्वा ॥३२

* सद्वृत्तिरञ्जति निशा शनकैः प्रहाणि
किं श्रूयते पुनरुलूक×सुतस्य वाणी ।
कश्चिन्नभो † दय इहास्ति विचारभावा
च्छ्रीवर्द्धमानतरणे रुचिताग्रभावा ॥३३

चन्द्रोऽस्पृशत्कमलिनीमहसत्कमोदि–
न्येतद्वयेऽरुणदगर्यमराड्विनोदिन् ।
स्वागभ्युदेति किल तेन कुमुद्वतीयं–
मौनिन्यभूच्छशभृदेति च शोचनीयं ॥३४

रात्रीमुचेऽमलरुचे विरहं विहाय
सन्तप्ततां द्युमणिसन्मणये तथा यत् ।
श्रीचक्रवाकमिथुनं मिलतीदमद्य
राजन्मुदश्रुझरसंस्नपनं प्रपद्य ॥३५

तारापतिर्हि नलिनीर्मलिनीर्विधाय
तत्प्रीतिदेऽभ्युदयतीह न सम्विधायत् ।
तारा निगुह्य सहसास्तगिरिं प्रयाता
जिह्रेति तत्करगता कति वीक्ष्य वाताः ॥३६

निस्नेहजीवनतयापि तु दीपकस्य
संशोच्यतामुपगतास्ति दशा प्रशस्य ।

---

* तारास्थितिर्नित्यता च ।

× घूकबालस्य कपिलस्य च । † नक्षत्रोदयः, पक्षे भो अदय ।

संघूर्ण्यमानशिरसः ×पलितप्रभस्य
यद्वन्मनुष्यवपुषो जरसान्वितस्य ॥३७

रात्रावहो पुलकितानिह सन्ति भानि
स्माम्भोरुहाणि किल मुद्रणमाश्रितानि ।
वार्बिन्दुभावमुपगम्य दलेषु तेषां
भिक्षामटन्ति परितो दिवसप्रवेशात् ॥३८

उच्चैस्तनोदयगिरौ करकृत्तु पूषा शस्तानुरागभृदहो वियदेकभूषा।
विप्रः स्फुरत्तरनखक्षतसन्विधानं
प्राच्या उरस्यवनिराडिति शोणिमानं ॥३९

संस्रूयते तनयरत्नमपश्चिमातः
संश्रूयते कलकलो †द्विजजातिजातः ।
पाथोरुहोदरदरादलिनो विमुक्ता
आमोदपूर्णमखिलं जगदेतदुक्तात् ॥४०

यत्नोऽमृता ᵗ श्रमपरेण च खेन तात
ख्यात प्रभात हविरासन एष जातः ।
भिन्ने भवत्यमृतधामनि नाम शुम्भ--
त्स्वर्णस्य संकलितुमत्र नवीनकुम्भं ॥४१

संहृत्य ❀ वैरजनिमित्यथ वीतराग--
वृत्तिं गतश्चरति सत्स्वभिवृद्धभागः ।

×क्षणिकरुचे, पक्षे श्वेतशिरस । † पक्षिणां विप्राणां च ।
+ स्वर्ग, पक्षे दुग्धधाम । ❀ वै रजनि, पक्षे वैरोत्पत्तिं ।

यो गीयते सुहृजलम्बकरः सुवृत्त–
भावेनभानुरपि भो जगदेकवृत्त ।।४२
वीरोदिते समुदितैरिति सम्वदामः कल्यप्रभाववशतः प्रतिबोध नाम
सम्प्रापितं च मनुजैश्चतुराश्रमित्वं
एकान्तवादविनिवृत्तितयासिविस्त्वं ।।४३
कञ्जोच्चयेन विकचत्वमवापि तात सुश्रावकत्वमिति पद्मिवरेष्वथातः
भानोः करग्रहभृतो भुवि धामनिष्ठा-
भैराश्रिताः पुनरिहाध्ययनप्रतिष्ठा ।।४४
भानुस्तपोधन इवायमिहाभ्युदेति नि.शर्वरीत्वमपि यज्जगतस्तथेति
कोकः प्रसिद्धविभवो गृहिणीमुपेतः
कौपीनभावमयते वनवासिचेतः ।।४५
आमन्त्रणार्थमिति चन्द्रमसो रसेन
शंखोऽसकौ ध्वनति सोदरतावशेन ।
औदास्यतो जगदतीत्य विचित्रवस्तु–
गेहाय मानमिव निर्व्रजतोऽन्ततस्तु ।।४६
नक्षत्ररीतिरधुना नभसो न भाति
गुप्तोऽप्युलूकतनयस्य तथा सजातिः ।
विप्राप्तसम्वदनतो नरपामरत्वं केषाञ्चिदुद्धरति वर्णविधेर्महत्त्वम् ।४७
यस्मादितः प्रलयमेति विभावरीति-
र्विश्वाश्रयिन्मृदुलताश्रयणान्यपीति ।
सद्भावनाविजयिनीं खलतां हसन्ति
तान्युत्तमानि किल कौतुकभाववन्ति ।।४८

एकत्वनामकवितर्कभुवा विचार–
भावेन कश्चिदथ भो परमाधिकार।
प्रोद्भिद्य मंचु कमलं लभते विकाश-
श्चारित्रभाववशवर्तितयाधुना सः ॥४६

लोकोऽन्वितो धृतविभावसुखश्रियासी-
त्सज्जो विधावुदितसत्कृतसम्पदाशीः।
सद्यो विसर्गपरिणाममुपेत्य याव-
द्विभ्राजतेऽयि नृप केवलभृन्स तावत् ॥५०

श्रीभारतोक्तविभवो धृतराष्ट्र एष
वीरञ्जनाय खलु कौरवमीक्षते सः।
कृष्णोऽलिरत्र कलिकालसदुत्सवाय
विघ्नोऽथ पद्ममपि सौरभविस्मयाय ॥५१

न क्वापि भाति अधुना द्विजराजवंशः
सुप्तोऽमिबाहुजसमाजसतावंतसः।
कस्ते तुलाधर उदेति जनेषु वा यः
सम्विप्लवोऽत्र बहुधान्यसमीक्षणाय ॥५२

नक्षत्रता क्वचिदहो गुणिराडुपेता
पद्मे श्रियः समुदिता प्रभवन्ति एताः।
कल्याख्य एष समयो भवदीक्षणीयः
जल्पे द्विजातिरुचितन्तु किलानणीयः ॥५३

नानाप्रसक्तिरिति यज्ञजेषु तेन रक्ताम्बरत्वमितमर्कमहोदयेन।
सर्वैर्द्विजैरधिकृता कणभक्ष्यशिक्षा
सम्पादिता च तमसा सुगतैकदीक्षा ॥५४

दृष्ट्वा विवादमिह शाखिपदेषु नाना
भिन्नां स्थितिं स्मृतिभवाधिगतेर्निदानात् ।
तां पङ्कजातकलितामिति ह्रासवृत्ति-
मस्त्येवनिर्वृत्तिपथेऽथ सतां प्रवृत्तिः ॥५५

कूटस्थतां खरमरीचिरुपैति तात
भृष्टाध्वरो भवति वा द्विजराडिहातः ।
स्याद्वादमागुदितपिच्छगणस्य वृत्तिः
सा सौगताय नियता क्षणदा प्रवृत्तिः ॥५६

नो नक्तमस्ति न दिनं न तमः प्रकाशः
नैवाथ भानुभवनं न च भानुभासः ।
इत्यर्हतः खलु चतुर्थवचोविलास-
सन्देशकेसुसमये किल कल्पभासः ॥५७

प्राक्शैलमेत्य विचरत्ययमंशुमाली-
त्थंतत्पदप्रचलितात्र जगैरिकाली ।
व्योम्नीक्षते नरवराथ तदेकभागः
संगत्य भो जलरुहामधुना परागः ॥५८

सत्यार्थतां व्रजति यत्तु नभः स्वरूपं
शुष्यच्छुचाविव देरमृतस्य रूपं (?) ।
अस्माकमद्य नरनाथ न गौरवर्णा
सम्भाव्यतेऽथ जगतीत्यपि गौरवर्णा ॥५९

निर्मूलतां व्रजति भो क्षणदाप्रतीति-
र्दीपेषु नो भवति कापिलसत्प्रणीतिः ।

स्याद्वाद एव विभवः प्रतिपल्लवं सः
मात्यर्हतो दिनकरस्य यथावदंशः ॥६०
नैकान्तयुग्भवतु देहभृतोधिकारः
स्याद्वादतत्परतया नियतो विचारः ।
नैवाप्युलूकतनयप्रभृतेः प्रचारः
इत्यर्हतः समुदयस्तपनस्य सारः ॥६१
भानोः सुदर्शनमिहाप्यभवद्विवेकः
कोकस्य चारुचरणं मरुतस्तवेकः ।
शेषो विशेष इह मुक्तनिबन्धनस्य
श्रीसद्मनो भवतु भो जगतां नमस्य ॥६२
नैर्मल्यमेति किल धौतमिवाम्बरन्तु
स्नाता इवात्र सकला हरितो भवन्तु ।
प्राग्भूभृतस्तिलकवद्रविराविभाति
चन्द्रस्तु चोरवदुदास इतः प्रयाति ॥६३
सद्वारिशौक्तिकतर्ति स्वयमेव तेषु
सम्बिभ्रती कमलिनी कलपल्लवेषु ।
उद्घाटितस्वनयना निजवल्लभस्या-
सौ स्वागतार्थमभिभाति हितैकवश्या ॥६४
उच्चैस्तनं स्पृशति कुड्मलमर्कदेव—
स्तत्रत्य केशरकृतोपशरीरमेव ।
अस्यापहृत्य जयिनः कललोहितत्वं
श्रीवारिजातविततेः समुदायसत्वम् ॥६५

भो भो प्रशस्तभविसम्भविसम्पदिभ्य
प्राच्यम्बर लसति लोहितमञ्जनीभ्यः ।
सद्योऽलिमुद्धरति शल्यमिवांशुमाली
कारुण्यपूर्णमिव पूत्कुरुते द्विजाली ॥६६

शीर्षे हिमांशुमुलुकं प्रतिरोमभागं
द्यौर्मूर्छितापनिशिचिन्त्वमितापनागः ।
सिंदूरपूररुचिरं सुचिरप्रभाव—
मेषाधुना नृवरकम्बलमेति तावत् ॥६७

पुण्याहवाचनपरा समुदर्कसारापुण्याहवाचनपरासमुदर्कसारा ।
आशासिता सुरभिता नवकौतुकेन
वाशासितासुरभितानवकौतुकेन ॥६८

सम्मुद्रणं सह समेत्य समेन राज्ञा
भास्वन्तमाप्य च मणिं हसतीह भाग्यात् ।
आमोदसम्भृतभृदेष किलाब्जभूपः
सम्पश्य शस्यमनुजेष्ववंतसरूप ॥६९

मोदोऽभवत्सपदि हे नरनाथ चक्र--
वर्तीति पद्मनिधिरुल्लसितोस्त्यवक्रः ।
बिम्बं रवेरिह सुदर्शनमेत्य तावत्
पश्यन्ति सज्जनगणाः समयप्रभावं ॥७०

रात्र्यन्तकोभ्युदयते त्वमिव प्रतापी
येन प्रसक्तिरधुना सुमनोभिरापि ।
ये येऽप्युलूकतनया वनमाश्रयन्ति
त्वद्वैरिणश्च तिमिरेण धृता भवन्ति ॥७१

सूर्याख्यया प्रतिभटः स्फुटकेशरालीः
पूर्वोक्तसानुमतिसानुमतिः सुधालिन् ।
शब्दत्यनेन रणकर्मणि ताम्रचूलः
स्पर्द्धयङ्कुशत्वविषये भवतोनुकूलः ॥७२

वृत्रघ्नतामनुभवन्सुमनोनुशास्ता
हे देवदेवपतिवत्सदृशस्तवास्ताम् ।
सम्यङ् निशान्तसमवायधरो दिनेश-
श्चित्रादिकोत्कलितसंग्रहवान्स एणः ॥७३

सत्सङ्गमाप करणो द्विजराड्विरोधि
सर्वत्र विभ्रमपरो जडजानुरोधी ।
स्यूनोऽकुलीन इव गोलकरूपकत्वाद्
भो भूमिपाल तिमिलक्षणभक्तकत्वात् ॥७४

यः पङ्कजातपरिकृच्च पुनः सुवृत्तः
राजाध्वरोधि अपि सत्पथसंप्रवृत्तः ।
एवं विरुद्धभवनोप्यविरोधकर्ता
हे विश्वभूषण विभाति दिनस्य भर्ता ॥७५

यः कश्यपान्वयतयामधुलिढ्ढताय
विक्षिप्तरूपतरुणाङ्कितसम्प्रदायः ।
पीत्वैष फुल्लदरविन्दगमात्महस्तैः
सारं सहस्रकिरणोस्ति मदाश्रितस्तैः ॥७६

भृष्टोडुमौक्तिकवदुच्चलरक्तरीति-
ध्वान्तेभकुम्भमिदितो रविकेशरीति ।

सम्भावयाशुकुशलोत्कलितां महीन्त-
देणोऽस्ति पालितपृषद्द्विजराट् सचिन्तः ॥७७
अश्नविवोडुकुवलौघकुलं नमस्य
हंसोऽयमेति तटमम्बरमानसस्य ।
यत्पादपातनवशेन तमालनीलं
चैतस्य सन्तमसशैवलमस्तशीतं ॥७८
आकाशनीरनिकरे मकरः कुलीरः
मीनोऽब्ज इत्यनुमतानि पदानि धीर ।
यत्रानिमेषनिवहो विचरत्यपीति
तस्यैव विद्रुमकृतेयमुषःप्रतीतिः ॥७६
मञ्जुस्वराज्यपरिणामसमर्थिका ते
संभावितक्रमहिता लसतु प्रभाते ।
सूत्रप्रचालनतयोचितदण्डनीतिः
सम्यग्महोदधिषणासुघटप्रणीतिः ॥८०
सत्कीर्तिरश्नुति किलाभ्युदयं सुभासः
स्थानं विनारिमृदुवल्लभराट् तथा सः ।
याति प्रसन्नमुखतां खलु पद्मराजः
निर्याति साम्प्रतमितः सितरुक् समाजः ॥८१

गान्धीरुषः प्रहर एत्यमृतक्रमाय सत्सूतनेहरुचयो बृहदुत्सवाय ।
राजेन्द्रराष्ट्रपरिरक्षणकृत्तवायमत्राभ्युदेतु सहजेन हि सम्प्रदायः ॥
शुष्यत्तमस्थितितयामृतकूपकस्य सत्ताग्रचूलकरणस्य समुत्थितस्य
ख्यातिः शुचित्तणमुताह्वयति त्वदर्थं वानेकधान्यहितसंहतये समर्थ

एवं प्रभूतदलसत्स्फुरणं गतस्य स्पर्धि प्रयाति भुवि सौरभवस्तु तस्य
अत्रोत्पलस्य सहसा समुदर्करीतिं स्वीकुर्वतो मधुरसंप्रतिजातनीतिं
श्रीवर्धमानकमलं भुवने लसन्तं दृष्ट्वाश्वति भ्रमरवोऽथ उपायनं तत्
तस्यामृतस्तुतिमयी प्रतिपद्य हे गां लोकस्य किन्न घट एव मुदेति वेगात्
निर्दोषतामनुभवन्नुतकेवलेन प्राभातिकः समय एष नरेश तेन ।
सन्मार्गदर्शकतया विधृतोक्तिकत्वादर्हन्ति वोपकुरुताद्भुवने किल त्वां
कोकः शोकमपास्य याति दयितां लोकस्तुतां मुश्चति,
भो कल्याणनिधे विकाशकलनामोकः श्रियामश्वति ।
नोकस्मादधियाति दोःकृतिविधिं तेऽथो कलाकौशले,
हो कर्तव्यकथोपदेशकृदसावर्कोऽस्तिपूर्वाचले ॥८७
दिवाकीर्तिना मार्तण्डेन रोपारुणेन हतोस्त्यनेन ।
द्विजराडिति सन्त्रस्तिमागता द्विजा अमी विलपन्ति सम्मतात् ॥
रूपाभेदेन खलु कदाचिन्नो नो हन्यादपि तिमिरारिः ।
काकाः काका वयमिति काका विचरन्त्येते विचारकारिन् ॥८६
तल्पं कल्पय केवलं संकल्पय कृतिकर्म ।
विचर विचारशिरोमणे जनताया अनुशर्म ॥६०
तस्य स्वयं प्रबुद्धस्य जिनस्येव सुरर्षयः ।
नियोगमत्रतः प्रोचुर्वन्दिनोप्यभिनन्दिनः ॥६१
मृदुतमस्तु न कचोपसंग्रहा संकुचन्ति उत स्रक्तविग्रहा ।
मन्दस्पन्दितारकाप्यधुना निरियाय क्षणदा सुरोचना ॥६२
सदहीनगुणस्थानमश्वकादभिनिर्वृत्तः ।
सदानन्दलसद्भावपूर्तये कृतवान् बहु ॥६३

एवं प्रातः चिकुरनिकरं बध्नती सालसाक्षी,
नीवीमाकुञ्चितकरशिखं लङ्घती सौख्यसाक्षी ।
सम्पश्यन्ती नखपददलं सत्कुचाग्रे त्वनूनं ।
निर्याता चेच्छयनसदनाच्चेतसो नैव यूनः ॥६४

अधरव्रणमेतस्या वीक्ष्याली समगात्स्मितं ।
पीत्वामृतहृदीशेन तच्छेषं हि समुद्रितं ॥६५

पाथेयमिव गच्छन्त्या ग्रहीतं चम्बनं तया ।
गुरोर्विरहमार्गस्य लंघनाय हृदीशितुः ॥६६

धवेनाधररागो यो वध्वा उद्भासितो निशि ।
संक्रान्त इव स प्रातः सपत्न्याः समभूद् दृशि ॥६७

जम्पत्योर्यन्निशि च गदतोश्चाशृणोद्गेहकीरः,
हीणा गत्वा तदुनवदतः श्रीपदानान्तु तीरं ।
कर्णान्दूक्तारुणमणिकणं तस्य चञ्चौ निधाय,
मूक·वं तं करकफलकव्याजतः सान्निनाय ॥६८

दन्तावलीमधरशोणिमसंभृदङ्का ताम्बूलरागपरिणामधियाप्यपङ्कां
या स्म प्रमार्ष्टि मुहुराहतदर्पणापि लज्जातयालिषु तु हास्यसमर्पणायि
विधुबन्धुरं मुखमात्मनस्त्वमृतैः समुत्त्यार्काङ्कितं ।
कृत्वा करं मृदुनांशुकेन किलालकच्छबिलाञ्छिनं ॥१००

भासुरकपोलतलं पुनः प्रोञ्छन्त्यगुरुपत्रांकाभा ।
भावेन विस्मितकृत्स्वतोऽभादपि तदा नितरां शुभा ॥१०१

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
एषार्हद्रविसम्विकाशितपदाम्भोजातशोभावती,
यात्यष्टादशसंख्ययानुविदितं सर्गे तदीयाकृतिः ॥१०२

इति श्रीवाणीभूषण ब्रह्मचारिभूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदये प्रभातवर्णनो नामाष्टादशम सर्ग

——

अथ एकोनविंशः सर्गः

श्रीमाननुच्छिष्टभुजामिवाद्यः पूर्वं ग्रहाणामधिपोदयाद्यः ।
धरां समारब्धुमथ प्रबुद्धस्तदीयसम्पर्क इतोस्त्वशुद्धः ॥१

समामिलद्धस्ततलद्वयेन लेखाकृतार्द्धेन्दुसमन्वयेन ।
समीचिता पाण्डुशिलाजयेन तीर्थेशजन्माभिसवात्र तेन ॥२

हृदीव शुद्धे मुकुरे मुखं सः निजीयमात्मानमिवात्मशंसः ।
ददर्श संहर्षवशेन तत्रानुवृत्तिमासाद्यतमामसत्रां ॥३

एकाकि एवानुययौ भुवन्तां भूपस्समालब्धुमिवाथ गन्तां ।
मौनीमवन्योनिरवव्रतानां दूरेऽपयोगप्रतिपत्तिदानात् ॥४

जवात्कृताशौचविधिः पवित्रीभूताशयत्वादधुना धरित्री ।
पस्पर्श हस्तेन सकोमलेन निजप्रियां वारिभवोज्ज्वलेन ॥५

समश्वनवत्रपदेनृ पस्य तदा सदाचारभृताः प्रशस्यः ।
ग्रहीतमूर्तिः शशिनः प्रसाद आशीर्वरगाण्डूपनिरुक्तिवादः ॥६

श्रीवत्रखण्डाभरदान्वितेन सद्वर्त्मंमात्रैकहितेन तेन ।
समाश्रितं मज्जनमेवमाहुः सुधांशुना चर्वित एव राहुः ॥७

मही महेन्द्रस्य तथाभवत्तत्प्रतिप्रतीकं मुहुरेव दत्तम् ।
स्नेहं स्वभावोत्थमिव प्रजाभिर्निसर्गसौहार्दवशं मताभिः ॥८

निमज्जितं तेन जलैकपूरे भु तश्रियां वैभवतोऽप्यदूरे ।
श्रीसर्वतोभद्रतया मनोज्ञे मलापहेऽस्मिन्कविकल्पभोग्ये ॥९

विपश्चितोऽप्यङ्गमगुष्यभायाज्जल्लैस्समालिङ्गितमित्युपायात् ।
बृहद्गुणाङ्केन बभूव तूर्णमावर्जितं प्रोञ्छनकेन पूर्णं ॥१०
श्रीराजहंसैरपि सेवनीया शरिन्नभाभूच्च तनुस्तदीया ।
चन्द्रांशुभासाशुचिताम्बरेण समर्थिता पूर्णतयाऽऽदरेण ॥११
दूर्वाङ्कुरान्कीरशरीरभावसुकोमलानाप्य पुनर्यथावत् ।
स पिप्रये किन्न भुवः प्रिया यः कचानि वात्मीयरुचा शुभायाः १२
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां समुल्लसद्वत्सलतोरुमुद्रां ।
प्रदक्षिणीकृत्य स गामनुद्राग् जगाम चैकान्तमहीमशूद्रां ॥१३
प्राणा हि नो येन नियन्त्रितास्चेत्किं प्राणिनोऽपि स्ववशान्समञ्चेत्
स तत्र यत्नं कृतवानितीव स्वदोर्द्वयाक्रान्तसमस्तजीव ॥१४
वारिक्रमे सेतुनिबन्धभाजः स्वयं गुरोरेष धुरो रराज ।
परिग्रहीताशु भविग्रहस्तु समेत्य सन्ध्यागतसारवस्तु ॥१५
श्रीशान्तिसिन्धो जगदेशबन्धो जयाद्दमन्धो गहनोघदन्धोः ।
समुद्धतो येन समुद्धृतोऽपि कवित्वशक्तौ प्रकृतोपलोपी ॥१६
कराधरैः संव्रजतोमुदञ्च मयीष्यतां ते सुरसम्पदश्च ।
प्रवालताहो गुणधामधर्तुं नवालता वा द्रुमथाभिसर्तुं ॥१७
चेतो न मे तोषवदस्ति नेतोऽङ्कतावदाप्तुं खलु वाग्यहेतोः ।
न किन्त्वियं वाक् चलति ह्रियेव पुरस्सरं गौरवकृच्छ्रियेवः ॥१८
भोगीनसंस्थानमनागनर्ति न भोगतातोऽप्यतिदूरवर्ती ।
कुतोवताऽनन्त्यमिते तवेश शक्नोमि गन्तुं गुणसंग्रहे सः ॥१९
किमारभे साधिकतां गतो गाः सदा समायं भवतोऽनुयोगात् ।
कृत्वा समुद्धर्मनि चापगाई न वा दशाहो मम वादशाह ॥२०

दासोऽहमर्हस्तव दर्शनेन विदात्मनः प्रान्तमितोऽस्म्यनेन ।
अनन्यतामेत्य सदर्थयोगीति संभविष्याम्यपि सोपयोगी ॥२१
भवानहं मानवनायकस्तु समाश्रयाम्यत्र तदेव वस्तु ।
निर्वाहकोऽहं शिरसास्मि येषां त्वन्निवेहोमुर्धभिरस्ति तेषाम्(?) २२
येनामनित्यं भवतोऽनुयान्ति शर्माऽमरंते भवतोनुयान्ति ।
वारिस्फुरद्बुद्बुदतुल्यभासं विलोक्य लोके निखिलं विलासं ॥२३
स्वार्थे कदक्केऽङ्गिजनेऽधुना रे सर्वाधिकारे तमसोऽवतारे ॥
समीचमाणः परमार्थमेवमश्चित्तचौरोऽस्ति भवान् हि देव ॥२४
बिभेति कालोऽखिलभुङ् महद्भ्य आश्वासनं त्वन्निकटे व्रजद्भ्यः
सिंहः कुतोऽश्नाति विधोर्मृगन्तं तार्क्ष्योपकण्ठस्थमहिश्च सन्तं ॥२५
यद्यस्तु सन्ताप इतो नमस्य त्वत्पादपात्यन्तमुदाश्रमस्य ।
पीयूषपूरेण परासुतास्यान्नवाच्यतामेतु जनः सुभाष्यात् ॥२६
सम्भूतिरित्यत्र जनन्तु कत्र किन्तेन सम्पद्यपि चेद्विपत्रः ।
सम्पद्य पश्चादविपन्नभावात्संसार एषोऽन्वययुक्तया वा ॥२७
नेत्रात्मता यद्यपि पादपेषु सशूलवम्बूलमुखेषु तेषु ॥
सा पत्त्रता ते हि यतो रसालफलोदयं मादृगुपैति बालः ॥२८
हे पादपायं जड़तामुपेतस्त्वदंघ्रिसंलग्नतया तथेतः ।
दलान्वयं प्राप्य च सौमनस्यं सतां शिरोलङ्कृतयेस्त्ववश्यं ॥२९
देहेऽपि गेहे पुनरन्य एव दीपो यथा त्वन्तु मुदेकदेवः ।
छन्नाग्निवच्छन्नतयाप्रलीनभावं व्रजामो जगतीत्यहीन ॥३०
कायोऽनुगृह्णाति भवन्तमेष योऽस्मादृशां विग्रहनामशेषः ।
बलं रुपग्राहिणमस्त्वदीपमुपैमि वायुं महतां महीप ॥३१

गन्तुं पदाभ्यां बहुशिक्षितोऽपि मादृग्जनो दुर्व्यवहारलोपिन् ।
स्खलत्यलं चेदुपघाततस्तु तदत्र किन्ते खलु दोषवस्तु ॥३२
कृत्वा कुकर्मार्तिमितोऽसुधीर शपेत्स पापी सदुपायकारिन् ।
वृथैव ते मार्गनिदर्शकाय कुपथ्यसेवीव चिकित्सकाय ॥३३
दुरन्तदुःखाम्बुधिमध्यपाती त्वत्पादपद्मोपजपैकतातिः ।
मलीमसात्मा महदग्रगामिन्काष्ठाश्रयेणायसवत्तरामि ॥३४
भवांस्तरंस्तारयतीतरन्तु निर्वेदकाधोमुखकुम्भतन्तुः ।
विपत्पयोधौ त्रुडतीव मादृक् यस्याश्रयन्ती विषयान्सदादृक् ॥३५
तवागमोऽमान्यगवे प्रशस्ता देशोऽप्यकारस्य वधादधस्तात् ।
अलौकिकी वृत्तिमुदाहरामः प्रमाणिनामन्यतयेति नाम ॥३६
भवान्सुरश्चाविकलो यतो नः स स्माननीयो भगवन्मघोनः ।
प्रणीतयः क्वासुरभा भवन्तु वयं वयामः सुमनोन्वयन्तु ॥३७
यदीयधर्मस्तव संस्तवस्तु त्वमेव पश्येस्तव किन्तु वस्तु ।
कदाहरेत्प्रार्थयतः पिपासां स चातकस्याम्बुद इत्थमाशा ॥३८
न सन्ति के तेऽप्यनुरागवन्तः विरागिणीश त्वयि चास्मदन्तः ।
कर्पूरखण्डादिषु सत्सु सोऽरमश्नात्यहो वह्निकणांश्चकोरः ॥३९
वाञ्छत्रवेः शर्मसमेति कोकद्विषंस्तथान्धत्वमुलूकलोकः ।
निरीहतामाप्नवतोऽपि यद्वद्दहीति हेऽर्हन् भवतोऽत्र तद्वत् ॥४०
दृष्टाप्यकर्णस्त्वमथान्यथाहं किलाधिका दन्तरतोऽवगाहं ।
लप्स्ये परं द्वारि परिस्थितोऽपि श्रीमत्करोऽतस्तव चेत्कुतोऽपि ॥४१
भो भो भवाब्ध्यर्थमिनप्रभावः करावलम्बस्य किल प्रभावः ।
कमण्डलुर्बोधिवरैकहानिस्तरन्त्यलाबूनि च वंशजानि ॥४२

यस्याङ्गपिच्छा भवताद्दतापि घनोदयोपात्तवलः कलापि ।
सर्पस्य दर्पप्रतिकृत्प्रशस्तिः समौलिमूर्धा जगतां समस्ति ॥४३
भूमावहं त्वं स्वरुदग्रभूषा किन्तेन वाकाशगतोऽपि पूषा ।
किन्नानुगृह्णाति पयोरुहन्तत्स तस्य पार्श्वे क्रमते यदन्तः ॥४४
सुमानसस्यावतरन्तभन्तः स्थले जले वा विमलेऽथ सन्तः ।
दूरे भवन्तश्च विभो भवन्तं संति स्तुवन्तः शशिवल्लसन्तं ॥४५
हृता शनैः स्याज्जडता न चित्रं त्वामीक्षमाणस्य तु विश्वमित्र ।
कुतोऽस्तु मोहस्तव गन्धमात्रमाजिघ्रतो हे नवसादरात्र ॥४६
मतं त्वनेकान्तसदुत्तमन्ते दृष्टेष्टयुक् सत्पुरुषा लभन्ते ।
तुच्छं परैः पुच्छमहोखरस्यावाप्तं प्रभो कष्टकरं परं स्यात् । ४७
उन्मत्तवद्यस्य मतं न चारु वृथैव तस्याध्ययनं च कारुः ।
मूलं विना स्कन्ध उतच्छदावाभित्तिस्तदस्याश्च परिच्छदा वा ॥४८
पयोनिधौ वाडवमम्बुदेऽतः शम्पां प्रदीपेऽञ्जनमेति नेतः ।
नास्तित्वमस्तित्वगतं न लोकस्त्वदुक्तमन्तस्तमसां स ओकः ॥४९
समानभावादिह यः पदार्थः बिभर्ति वैशिष्ट्यमपीत्यपार्थ ।
चमत्तरं नेन्दुवदेव राहुं नभश्चरत्वेऽपि जनाः समाहुः ॥५०
प्राण्यङ्गभावात्पलमन्तकल्पमश्नात्यहो नाथ वृथैव जल्पन् ।
पयोऽभिवाञ्छन्नमितोऽपि मातुस्तदीयविष्टां किमु याति जातु ॥५१
रसाद्यदेवामलकं कषायं तदेव रूपात्किमुना कषायं ।
सत्वादुपाख्येयमिदं द्विवाच्यं तदर्थपर्यायतया त्ववाच्यं ॥५२
गुणप्रसङ्गाद्दपिसत्तरङ्गागङ्गा विभोऽसौ तव वागभङ्गा ।
पुनातु नातुच्छरसात्रिलोकीं वदत्यदा खिन्नतया जनोऽकी ॥५३

प्रत्यङ्कमङ्को नवको गुणेन रूपान्तरं सन्दधदप्यनेनः ।
स्वभावभागेवमिहार्थसार्थः सम्प्रत्ययोऽयं तव भो यथार्थः ॥५४
मिथोऽनुगैस्तन्तुभिरम्बरन्तु ज्ञानं नयैर्वस्तुगुणैश्चरन्तु ।
हे नाथ के नाथ महानुभावाः केषामिहाभान्तु दुराग्रहा वा ॥५५
स्वतन्त्र्यकर्तृ त्वमभीच्छता वा प्रकुप्यमाणोत्तमचित्स्वभावात् ।
न्यदर्शि भो केवलवित्तयात्माखिलस्य कोऽन्यो भवतो महात्मा ५६
को नान्वियात्सर्वविदं प्रपश्यन्स्वप्ने विदूरादिपदं तदस्य ।
भ्रान्तिन्तु देशादितयैव सन्तः स्तुवन्त्यनेकान्तमतक्रमन्तः ॥५७
चिदात्मनोऽथानुभवेत्तदस्तु पर्यायमाल्यं हि यतस्तु वस्तु ।
पूर्वापरत्वेन गतागमिष्यद्भावा भवत्येकमिहानुविश्य ॥५८
एकक्षणस्याव्यवहारभावात् पश्यन्ति सर्वेऽपि जनाः सदा वा ।
त्रैकालिकं तावदुदीयमानं प्रमन्यमाना भुवि विद्यमानं ॥५९
कथाञ्चिदाप्नोति विकारमाराग्गुरस्ति लग्नाप्रकृतिर्विचारात् ।
सैवानुबध्नात्युदयन्तमेनं मणिर्यथा पावकमित्यनेनः ॥६०
त्वदीयपादोपगतो गिरीशः सिंहो यदुच्छिष्टभुगस्तुकीशः ।
श्ववास्यदर्शी तरनुः सवायः स्वमीहमानः पुटभेदनाय ॥६१
पीयूषपिण्डोडुपखण्डकानां मिषान्नखानामनुमानखानां ।
प्ररूपण अत्र निरूपयन्तं भजन्तु भव्या भगवन्भवन्तं (?) ॥६२
सुभासनेऽस्मिंस्तव शासनेऽपि मालिन्यमेवानुभवन्ति केऽपि ।
मार्गे समन्तात्सरलेऽपि चाथः सर्पः सदर्पोनृजु याति नाथ ॥६३
पृथक् जनास्त्वामनुयान्ति नेश तदत्र कोऽप्यस्तितमां विशेषः ।
मूल्यं मणेः सन्मणिमाणवो हि कुर्यात्कुतो दारुभरावरोही ॥६४

सर्वांशतो नांशुमतः प्रकाशमाच्छादितुं सम्प्रभवेद्यथा सः ।
घनाघनः केवलबोधमेतदाच्छादनाख्यानविधिः सुनेतः ॥६५
ततस्तदंशानुगतप्रयत्नी संशोधयेत्प्राप्यमलं त्रिरत्नी ।
स्वर्णोपलात्स्वर्णवदित्यवायसमर्थनः स्याद्विदुषां निकायः ॥६६
प्रत्यात्मसम्वित्तिवशेन विद्वानंशाशिभावादनुमानचिद्वा ।
धूमेन वह्नेरुषसांशुनाम्नः यथा तथा केवलबोधधाम्नः ॥६७
कालादिलब्ध्या सुतपोन्वितेषु सिद्ध्यत्सु सिद्धान्तकथाश्चितेषु ।
केचित्तु कंक्कोडुकवच्चणेषु वचोऽम्बुतेषूत शिलातलेषु ॥६८
जडेषु दारुः स्म गताश्चिराय संक्लिश्यते पावक सर्वथा यः ।
आत्मा त्वयाप्नोतु नियुज्यमानस्तेजस्वितामाशु कुतोथ वानः ॥६९
सत्सङ्गसौहार्दजितेन्द्रियत्वैरमत्र तैलोदयवर्तिसत्वैः ।
सम्प्राप्यते चेत्तत्र सच्छलाकायोगः प्रकाशोऽथ कथाथवा का ॥७०
निरन्तरायं द्रहतोनिरोतिसारेत्सुरीत्याथ समुद्रमेति ।
द्रहे समुद्रेऽम्बु च तावदेवाङ्गिराशिरेवं भुवि वा शिवे वा ॥७१
युक्ते वियुक्तेऽपि शुभे शुभस्य नाधिक्यमूनत्वमयीति तस्य ।
मुक्तावितः सम्व्रजतोऽपि जीवराशेः स्थितिं पश्यतु हेऽङ्गधीर्वः ॥७२
ध्वनिर्निरश्नन्नपि झल्लरीतः सोऽत्येति किं साम्प्रतमप्यधीतः ।
संसारवार्धेरिति जीवराशीः किलाचयानन्त इतस्तवाशी ॥७३
विपत्पयोधौ पतेतु सेतु-भावो हि तेऽभ्युन्नतयेऽस्तु हेतुः (?) ।
स्वता कुतः स्यात्परताग्रुतर्त्ते गतस्य कर्ता विपतेद्धि गर्ते ॥७४
विश्वस्य विश्वासमहीन किं सा त्वत्सम्मता या भगवन्नहिंसा ।
नानात्मने सम्वदतः परस्मायवाञ्छतः किन्नगदान्यकस्मात् ॥७५

वाञ्छन्नपि स्वं त्वमरं प्रमत्तः परं पुनर्मारयितुं प्रवृत्तः ।
स एव हिंसाधिपतिः स पापी क्व कोऽपि जीवो म्रियते कदापि ॥७६
सहिष्णुरन्यान् प्रभवेद्वदान्यः स्ववर्गकार्यं प्रतिय नवान्यः ।
द्वितीयकक्षामधिगम्य तिष्ठेत् तवाश्रमे सर्वविदामनिष्ठे ॥७७
एकः सवत्कानुबन्धशस्तानुदीक्ष्य तत्कार्यविरोधिनस्तान् ।
न सोढुमीशः सुतरां जघन्यस्त्वच्छासने भो जगदेकधन्यः ॥७८
स जीवलोके गुणधर्मकुल्यं स्ववर्गतुल्यं परवर्गमूल्यं ।
विदन्नपि स्वन्त्वनुमन्यमानः कौपीनवित्तोऽङ्गभृतां प्रधानः ॥७६
निजं परं नानुवदन्समान—दशेक्षमाणः परितः सदानः ।
आल्हादकारीन्दुवदाप्तवेशः विश्वस्य विश्वासनिधिः स एषः ॥
यत्रान्तरात्मा परितोषमेति तत्कर्म कुर्यान्न तदन्यथेति ।
त्वदुक्तराद्धान्तपयोधिसारं निभालयामोभगवन्नुदारम् ॥८१
नोद्दिष्टमन्नं च दिशैव वासः शय्यावनिस्त्वत्पदयोर्निवासः ।
कदा भवेम स्वयमेवमन्तर्जल्पं निजात्मानमभिष्टुवन्तः ॥८२
हे नाथ रत्नं तृणमामनन्तः जनीमिदानी जननी तु सन्तः ।
स्वस्यानभिप्रेतमना चरन्तः परेष्वपि स्वात्मनि सन्तुषन्तः ॥८३
गुणैरगण्यैर्ग्रथितात्मनस्तु दिगम्बरत्वं स्फुटमेवमस्तु ।
नुवीहसम्बंधविभक्तिभृत्ते वदामि वृद्धैर्बहुशस्यवृत्तेः ॥८४
क्षमारुहत्वेन भवन्तमस्य साफल्यमिच्छुर्जनुषो निजस्य ।
समेत्य सम्यक्सुमनोलतातः विपत्त्रतामत्र समेति तात ॥८५
दग्ध्वाशु रोषादुरितं समस्तं भस्मीकृतं प्रोत्क्षिपतोऽप्यतस्तं ।
न पृष्टमप्यर्हत एव तेऽतः सहिष्णुता का खलु जिष्णुचेतः ॥८६

अनन्यजं गौरवमप्युपेतः भवान् किमूर्ध्वं भुवनादुत्तेतः।
स्मृतं किलायोमययानमुक्त्या नैकान्तता प्रोदनायघटनाययुक्त्या ?
त्यक्त्वा विलम्बान्त्रजगतस्तवेदं मनो मनाङ् नार्द्रमभूत्सुवेदः?।
अस्मादगम्भोभिरभिश्रवद्भिस्तन्मार्दवं वा गलितं वहद्भिः ॥८८
सद्वृत्तभावात् सरलं स्विदन्तर्दिग्वाससो निष्कपटत्वकं तत् ।
जनस्य नैकान्तमतानुगामिंस्तव प्रतिज्ञां दधतोऽनुयामि ॥८६
तान्निश्चितं तूक्तवतो व्यलीकबन्धुवाणोवितथप्रतीक ।
सदा स्वयं नैकमतस्थितोऽसि सतामतः किन्तु मनोस्तु तोषि ॥६०
भूपान्नृपो माण्डलिको महर्द्धिस्ततोऽर्द्धचक्रीति ततोखिलर्द्धिः।
न सन्तुपश्चक्रिपदेऽप्युदासः सन्तोषवर्द्धेर्वडवोऽसि वाऽतः ॥६१
त्वदुक्तमित्यत्र यदेव सत्यं तदेव नान्योदितमर्थकृत्यं ।
रुषन्तु संधारयतस्तवार्थाद्विरागता चावगता कृतार्था ॥६२
तवात्मनो ज्ञानमहो विचारिन्समश्नतः पात्रमिवार्थकारि ।
यदेव दुर्नीततया परेषां विकारभृद्वास्ति समष्टिरेषा ॥६३
कषायिनः पोषयतोऽपि पापं वैद्यस्य संशोषयतोऽपि नापत् ।
स्याद्वादविद्याधिपसम्मतं ते किमर्थमन्ये जगति क्रमन्ते ॥६४
वैरस्य सत्तां जगतीक्षमाणं विरागिणां त्वां शिरसि प्रमाणं ।
अर्हन्नुदासीनमहो वदामः कुतः शयानं सुमनस्सु नाम ॥६५
उपेत्य चास्मत्प्रकृतामुपास्तिं कृपं कटाक्षो न तवाथवास्ति ।
दीपस्य किं पश्यति रङ्गभङ्गविदग्धवृत्तिश्च भजन् पतङ्ग ॥६६
वैरस्य भावादुतमौनितास्तु प्रतारणार्थं न किमागमास्तु ।
तवांघ्रिकञ्जारिवरायकेयं सत्ता जगज्जित्कपदाभिधेय ॥६७

विशुद्धमित्याप्तविदस्मि हन्त प्रयत्नवान्त्रञ्जयितुं त्वदन्तः ।
नो वेद्मि मत्कैर्भगवन्दुरन्तं सकज्जलैरश्रुजलैर्धृतं तत् ॥९८
त्वदपादपांशुममर्मूर्धभूषापूता न किं गोसकृताग्रभूसा ।
भवान्यतो भात्यमृतैकधामा दृगञ्जनेनास्तु यथा ललामा ॥९९
विचारभृत्तेऽलमविक्रियत्वं स्वच्छन्दवृत्तेश्च जितेन्द्रियत्वं ।
विलोक्य लोकस्य हृदि स्मयः स्याद्द्रवावहो किं तमसः समस्या॥१००
ग्रीष्मे स्वभावी जन एव यस्य शीते सदा कम्बलमभ्युदस्य ॥
जडप्रसङ्गेऽप्यजडस्थलस्यासक्तौ तवानन्यतमा तपस्या ॥१०१
विहाय सद्योवनिनाथमश्वं भवाँस्त्रिलोकाधिपतित्वमञ्चन् ।
प्रवर्तते वृद्धिभृदग्रगामी त्यागं तवेमं न हि विस्मरामि ॥१०२
प्रत्यर्थिनं तुल्यगुणं सुवृत्तः प्रकुर्वतः प्रादुरभूद्भवत्तः ।
कल्पद्रुमस्याविरमो विकल्पाश्चिन्ताथ चिन्ताख्यमणेरनल्पा ॥१०३
मनोरथार्थीत्यवशं स ईश त्वामाश्रयेत्स्वस्थलसन्मनीषः ।
परेण किं वाधवरेण साध्यं पश्यामि रोगं त्वगदेन वाध्यं ॥१०४
वदन्सदन्तेऽभिमतं स्विदर्थं प्रयच्छतस्ते यदि नः समर्थं ।
शक्रादयः सेवकतामुपेता न किञ्चदस्तीति कुतः सचेता ॥१०५
कुतोऽस्तु चित्तं प्रवरावरासु समुत्तमायां तव चेद् गताशुक् ।
मुक्तिश्रियां सूक्तिधरैरपापीन्विवर्णिता ते खलु वर्णितापि ॥१०६
स्त्रियां कुचं मोदकमित्यमेके परयन्तु योगिन्नुदिते विवेके ।
त्वमस्पृशन्दूरचरश्च मारमातङ्गकुम्भैकधियोत्थिताऽरं ॥१०७
नापत्यजां नो जडतामतुल्यान्तरन्ति तेषां सुतला च कुल्या ।
भवत्यहो सात्त्विनदर्शने तु तव स्तवोऽनः सुखहेतुसेतुः ॥१०८

सिद्धे स्तु गार्हस्थ्यमुतान्तरायः भवन्मते सत्कृतयेऽभ्युपायः ।
संकल्प्यते संघसमुद्वलस्य तुषं प्ररोहाय हि तन्दुलस्य ॥१०६
सा मेषमाषादविधौ यथाभूत्समन्ततोऽसौ विषमां तथाभूः ।
क साद्य यत्राश्विन ते प्रणीतिः सूर्योदये का खलु चोरभीतिः ॥
गत्वा नभोगाधिपतिञ्च भोगवाञ्छा भवेत्त्वां सुददोपयोग ।
सरोऽमृतस्याप्यवगाह्य शेषा तृष्णास्ति भो भो जगतीह तेषां ॥१११
घृणाङ्कमन्वेषयतामदन्यः नादर्शि कश्चिज्जगतां जघन्यः ।
सतामहोऽर्थोर्हति भाति यावान्प्रमाणतःस्तावदहं घृणावान् ॥११२
विचार्य कार्यं व्रजतोऽत्र तात वताविचारे सति गर्तपातः ।
सुनिश्चितासम्भववाधकं वः सूत्रं समन्ताज्जगतोऽवलम्बः ॥११३
परापवादप्रतिवादिनापि परायवादस्त्वकयाभ्यलापि ।
सतां समानत्वमधिष्ठितेन विमानिनामाप्तसताप्यनेनः ॥११४
अहो महत्त्वं महतामिहेदं सहन्ति शीतातपनामखेदं ।
द्रुवत्परेषां स्थितिकारणाय सदैव येषां सहजोऽभ्युपायः ॥११५
युक्तिं गतो गौरवभाक् सुचेतः समन्ततो वत्सलतामुपेतः ।
महीतलात्त्वौद्रकथावलोपी कुतः पुनस्त्वं मधुरत्वणेऽपि ॥११६
परीक्षकोऽहं निकषप्रसङ्गः सदाऽभवं भृङ्गनिभान्तरङ्गः ।
तत्रोत्तरञ्जातु न हेमगाथः सतां शिरोलङ्करणाय नाथ ॥११७
यतेन शैष्याय न शिक्षकः स्यादुगुणीति चेत्सम्भवितुं समस्या ।
कृत्वा तु विश्वं निकषायमानं मनः सुवर्णत्वमियात्सदा नः ॥११८
मरासृजां शोषणकृज्जलौकः कल्पोऽभवं लब्धपदोऽपि नौकः ।
पयोऽम्बुसम्भेदकहंसवंश-गुणस्य भो भो भगवन्नहंसः ॥११६

परं परेषां पथदर्शकत्वं दीपोववाहीव दधामि तत्त्वं ।
तमस्युपेतोऽपि कथं तवाथ स्वोद्योतकोन्यद्युतयेऽस्तु नाथ ॥१२०
प्रसङ्गिनोऽन्ये बहुलोहकत्वाज्जाताश्चमत्कारकृतोऽत्र सत्वाः ।
हे प्राणिकल्याणमतेः पुराणपाषाणहृत्को निवसामि शाणः ॥१२१
सिद्धान्तिनं चाध्यवसायभीरुं धिङ्मासुदिङ्मान्द्यमुदेत्यभीरु ।
श्रुत्वापि नास्वादयतः कषाय-भियाऽगदं रोगवतोस्त्यपायः ॥१२२
कोणस्थसंस्थचककाष्टकल्पः परोपदेशाय नरोऽस्त्यनल्पः ।
श्रितं रथः सङ्गमयन्नभीष्ट-स्थानं पुनर्गच्छति सैव शिष्टः ॥१२३
श्रुतानुवक्तैव न बर्हितुल्यः स्यात्किन्तु नाकच्छपकल्पमूल्यः ।
निमज्ज्य पीयूषनिधौ पिपासा-हरो विपद्यङ्गधरः समासात् ॥१२४
गुणेषु भो धीवर ते स्खलामि कदंघ्रिभावादुत किं वदामि ।
रूपं तवेदं मधुरं यथापि वाचालतापल्लविनेत्यथापि ॥१२५
सुचारु मुक्ता तव शाकटायनमपीह गीर्वाणपदैशिणां मनः ।
समन्ततस्तु व्यदुपायने च नः क्व पाणिनीये प्रभवेदहो जिन ॥१२६
नगरं नगरत्वेते वदन्ति निखिला जनाः ।
कान्तालत्वं गृहस्यापि भवानेवं महामनाः ॥१२७
येषां समस्ति कुलता सुलताभिलाषा
तेषामितो व्रतति लक्षणमात्र आशा ।
सम्पत्तिदुःषममरौ च मुदश्रुदम्भा-
न्मुक्ताफलत्वमिह ते मुदिरोपलम्भात् ॥१२८
समभूरामरकुलैकवंद्यः केवलबोधभृदेवमनिन्द्यः ।
जय जय परेत रराज निकन्द तव स्तवं कर्तुमहं मन्दः ॥१२९

शास्तरितस्त्वं जगतां मोदाब्धेर्विधुः तिमिरहान्तरङ्गस्य
श्रेष्ठो भास्वतः ।

सिद्धेरस्तु शुभाङ्ग भक्तलोके तव
वक्ताशावति शासितोऽधुनातः स्तवः ॥१३०

(शान्तिसिन्धुस्तवः चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमत्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
सर्गस्तेन जयोदये विरचिते स्याद्वादविद्यालयां-
तेवासिप्रथितेन याति गणितोप्येकोनविंशाख्यया ॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये एकोनविंशः सर्गः



अथ विंशतितमः सर्गः

जगदाह्लादकरं राजानं विनियम्याथ तपननामानं ।
अभ्युदयन्तमसहमान इव राजराजमभिययौ सपदिवत् ॥१

वहुधावलिधारिणी स्रवन्ती नितरां नीरदभावमाश्रयन्ती ।
जयराट्जरतीतिनामवोध्यां द्रुतमुल्लंघ्य जगाम तामयोध्यां ॥२

स्वमुपपयोधरदेशं चलदुज्ज्वलध्वजनिवसनविशेषं ।
त्रपयेव वोन्नयन्ती श्रियाखिलं विश्वमपि जयन्ती ॥३ युग्मं

प्रणयातिशयाय पश्यताथ बहूत्तानशयोपलक्षितां ।
महतीमनुजानताक्षितावपि विश्रम्भपरायणां हितां ॥४

उच्चैस्तनकुम्भबलाच्छकलोदितवर्षसंकुलानवता ।
कामितयेवाश्रिसृताप्रासादततिस्तु तेन सता ॥५ युग्मं

मधुरसमुन्नतनरमहितायां कुशलक्षणपरिणामहितायां ।
अथ मध्यस्थराजहंसायां वात इवायातः स सभायां ॥६

सरसीवरसिद्धान्तमितायां सुतरां कविकुलकलकलितायां ।
कल्लोलाञ्चितवारिचरायां शुशुभे चाशुशुभेङ्गितभायात् ॥७ (युग्मं)

सदनुमानितेतरलितो हिते परिषदास्पदे भरतमाददे ।
यदिव खञ्जनः परमरञ्जनमथ नभस्तले शशिनमुज्वले ॥८

अनुसमग्रहीत्तमपि किन्न हि स च तमोभिभित्स्वमृदुरश्मिभिः ।
कौमुदस्थितिं वर्द्धयन्निति सम्बभावतीद्धापरिस्थितिः ॥९ (युग्मं)

भालं जयस्य नमदादिमचक्रपाणेः पादाग्रतस्तु सममादिह तत्प्रमाणे ।
नित्यं विभावभयदोषविशोधनाय पङ्केरुहस्य पुरतः शशिनोऽभ्युपायः
शतशः स्फुरत्किरणभून्नखाग्रवत् करसंयुगं भरतचक्रिणोमवत् ।
रविबिम्बशोभि सहसोभिमातरः शशिशोभनं जयमुखं समुद्धरत् ॥११
विबभूव भूः परिकृतेरपीति यत् प्रतिपत्कलोदयकरी कवेरियम् ।
समभूत्तमां सुरुचिभागिहोत्तमासदसः प्रहर्षणगणश्रियाममा ॥१२
कल्पवल्लिदलयोः श्रियं तयोः सद्योजातफलोपलम्भयोः ।
पाणियुग्ममपि चक्रिणो जयत्तच्छिरोमृदुगिरोऽभ्युदानयत् ॥१३
उपलम्भितमित्यथोपकर्तुं हृदयेनाभ्युदयेन नामभर्तुः ।
उदयदिवोदयभूभृतस्तटे तच्छशिबिम्बं जयदेवव क्रमेवत् ॥१४
हस्तावलम्बनबलेन किलोपलभ्य स्रागालिलिङ्ग गलतः प्रणतं ससभ्य
सर्वस्वमूल्यमिति तुल्यतया निजस्य कुर्याच्छ्रितं
लघुमपीह जनः प्रशस्यः ॥१५
हर्षितेऽवनियतावनुभावाद्वान्धवागमनतोऽत्र तदा वा ।
आमनोपकरणव्यपदेशादुल्ललास सहसावनिरेषा ॥१६
तदासनं तत्र तदा समन्वाश्रितं श्रितस्फीतिजयस्य तन्वा ।
दृशापि संस्पर्द्धनसंस्पृशापि श्रीपादपीठं महनीयमापि ॥१७
दृग्भ्रमरीविनिवृत्त्येतरतः जयमुखकमलेऽतिष्ठत्क्रमतः ।
रसितुमतिथिसत्करणफलम्वाक्यचिणी च नृपतेरविलम्वात् ॥१८
नयनतारक मेऽप्युपकारक सुहृद आव्रज वैरिनिवारक ।
स्वजनसज्जनयोः परिचारक चिरत् आव्रजसि क्व शयानकः ॥१९
इति प्रौढसम्भाषणोपात्तपाणिः मृदुप्रायपच्छ्रीः कुमारस्य वाणी ।

विभीरुः शनैरुपयौ हेऽनुमानिन् महीभृत्यतेः पाददेशे तदानीम् ॥२०
तारक इवास्मि मालिनः सदसि समस्तार्थदशि नितान्तमिन् ।
तव सुदृगनुकारिण्यां प्रान्तेष्वनुरागधारिण्यां ॥२१
मृदुहृदा विवदंस्तव सूनुना सखिशिरोमणिनापि विभोऽमुना ।
तनुतमम्बरसार्थमहन्नुतत्परमवांधवबन्धुतया युतः ॥२२
सुतनौ सुरोचनायां लोलुपतामत्यजिष्यमथ तर्हि ।
किं समगमिष्यमेतां महितीं सुरभेः द्युतिं कर्हि ॥२३
अहमेवमनर्थकृद्भवेऽयं भवदुक्तस्य समर्थको भवेयं ।
दिवसेन च नक्तसङ्गमस्स्यादपि गम्भीरतमा यतः समस्या ॥२४
यतः समर्थकत्वदङ्गजात आक्रमः कृतः

कृतघ्नभावतो मही महार्कमप्युदाहृतः ।

हृतश्च सम्भविष्टतीन्दुवन्मकालिमावतः

वत प्रयत्नतः कलङ्क एष मत्त आयतः ॥२५

नाथ नाथ विपदा विपदा मे सम्भवन्ति अरदादरदा मे ।
सोऽयमत्र भवतो ह्यनुभावः शीतगावपि रवेरिव गावः ॥२६
कस्मादकम्पननृपस्य नरामुदारगाम्भीर्यकौशलकुलादसकौ विचारः
मस्तिष्कतः कथमभून्मम भूतिहेतुः

पाथो निधेरिव च वाडवधूमकेतुः ॥२७

पित्राप्यते गुणवते स्वसुतेति रीतिं सनातनीमननुमन्यमुधादरीति
श्रीमानकम्पननृपः समभूत्किलेनः किं तत्र चाश्नुत रुचिं चतुरस्य चेतः
वार्द्धक्यतोप्यपरतोऽपि कुतोऽपि हेतोः

सम्भाव्यतां तदपि तद्धृदि नीतिसेतो ।

अस्मादृशा अपि दृशा विवशुर्विहीना
अर्थित्वतः परवशा समितानवीनां ॥२६
लूताकृते किमुत सौधगणग्रहीतिः यद्वौतु पौतपुरतोऽमृतजातवीतिः ।
स्वायम्वरीति खलु रीतिरियं प्रतीति
मायाति भो भरतभूभृदनर्थनीतिः ॥३०
सदधिपवदनेन्दोर्गोचरोच्चारणेन जय हृदयपयोधिः साम्प्रतं कारणेन
सुतरलतरवीचिः प्रोज्जजृम्भे किलेति
ध्वनिरपि च तदुत्थास्मेत्युदारा निरेति ॥३१
इति तद्गिरमानिशम्य सम्यग्नृवरो वारिगणं ववर्ष तं यः ।
स च वर्हिसमर्हिताद्धरम्यः सुतरां शस्यसमाजराजगम्यः ॥३२
यदवाप स वा पराभवमधिकुर्वंस्तु सुलोचनां तव ।
किमु तत्र भवेत्कदाश्रव उचितोपायपरायणोऽस्व ॥३३
न हि तत्र समस्ति शोचनीयं गतिरुत्सीमगमस्य भाविनीयं ।
निशमिन्दुनियोगिनी बुभुक्षोः पतनं किमरवेरहो मुमुक्षो ॥३४
विमृश्यकर्त्रेदमकम्पनेन संयोज्य नूनं किमकार्यनेनः ।
अर्केण बालामतिकर्कशेण किं मल्लिमालान्वयते कुशेण ॥३५
जगदुद्योतनहेतोर्वंशात्र उदेत्ययं समरसेतो ।
दीपात्स्नेहाधारात्कज्जलवन्मलिनतम आरात् ॥३६
जगदाह्लादकारिणी कुले किलास्मारकममरताधारिणि ।
शशिनि कलङ्क इवायं प्रवर्तते षट्पदच्छायः ॥३७
अथ श्रुतिप्रान्तकृताधिकारासमन्ततोरूपनिरुक्तिसारा ।
भूमण्डलेऽलं कृतिरत्नमाला मुखे तु दःवद्यदुदेति बाला ॥३८

भद्र वाराणसीशेन तस्यामेष नियोजितः ।
कज्जलवच्छ्यामलोऽपि दृश्यते सज्जनैरितः ॥३९
वीटिकया परिधृतः पलाशः केतक्या कलितः किल काशः ।
आद्रियतां महतापि तथा सः बालयानुकलितो नरपाशः ॥४०
लोकत्रयात्त्रिगुणिताद्बहुमूल्यमेतत् स्वं जीवनं यदि ददीत महाशयेतः
दृग्देशितेषु परिवृत्तितया सुदेश
सम्वेश एष खलु मुख्यतमोऽस्तु लेशः ॥४१
लोकज्ञताहेतुतया स्तुतिः पितुरादीयतामत्र किलात्र सापि तु ।
मत्सी सरस्याश्रयिणी यदृच्छया सा प्रेक्ष्यते साम्प्रतमम्बुपृच्छया ॥४२
विधिरेष विदेहभूजितः निधिराविर्भवतीत्यसावितः ।
स्वयमस्तु सदेहपूजितः किमुनानंदसमर्थकोऽमितः ॥४३
वसुधामहितस्येति वारिपूरं जयदेवः
कन्दर्पृंद इव सन्निपीय पीनः पुनरेव ।
परमध्वनिमानमन्नेव माबभार तस्य
परमध्वनि विषयस्य सम्पदाश्रयः प्रहृष्यन् ॥४४
मातेव खेलितुमितं तनयं महीपते
सा वन्धुता च जनता किल मां प्रतीक्षते ।
गंगातटे विधुमतीतवती कुमद्वती
वोत्क्लिश्यते किल सुलोचनिका महासती ॥४५
श्रीमत्तरङ्गिणी तीर्थाभिसिक्तां राजसंसदः ।
प्रस्तुतप्रसवायास्तु निवृत्त्याजय आययौ ॥४६
मत्तेभवत्यथैतस्मिन्नापगा सारसाधिका ।
मध्यं स्पृशति कल्लोलैः समभूत् परिवारिता ॥४७

अन्तस्थया च तिमिलक्षणयोद्व्रजन्ती
वृत्त्यात्तया तिरयितुं समभूत् स्रवन्ती ।
यक्षेश्वरं च करिवाहनमेवमेनम्
सन्ध्येव साम्प्रतिकबुद्बुदभावनेन ॥४८
सिन्धुरमिममित्यथोपकर्तुं द्युनदीत्वं किल पुनरुद्धर्तुं ।
निम्नगात्वदुर्यशोऽपहर्तुमुच्चचाल साग्रतोऽस्य भर्तुः ॥४९
नभोभिधैकतां कृत्वा धृत्वा स्ववीचिबाहुभिः ।
याति स्मालिङ्गितुं यद्वा प्रजवादम्बु अम्बरं ॥५०
चालितेवाम्बुना वीरवरस्यासीत्तु धीरता ।
विपत्त्रभावमादातुमभ्यवाञ्छत्तु धीरता ॥५१
जगतां जीवनेनापि किमित्यत्र न वारिता ।
समश्च विषमः सूक्तिरित्येषास्ति न वारिता ॥५२
शरैर्नरो वैरपरै रणेषु मदं चिरायापच तत्क्षणेषु ।
शिरोभवत्कं तु तदा पदं स सारस्वतं स्माश्वति राजहंसः ॥५३
प्रतीक्षयामास जयं किशोरी यथोदयन्तं शशिनं चकोरी ।
सृष्टः सकष्टं तमसोपसृष्ट–रमेण नीरो रुचयेन दृष्टः ॥५४
छायेवानुवर्तिनी भर्तुर्यतमाना मनीषितं कर्तुं ।
विपदं गते सुखगता नासीत्तस्मिन्सेति कुतस्तु सुभाषी ॥५५
सुदृशो दृशाविरसताऽपूरि जयस्यान्तरम्बुजाय भूरि ।
अविरलजलयाथयो हि बन्धुर्विपत्क्षणे स च भवतादन्धुः ॥५६
यदलिगर्णं हिमकरास्य एष उत्ततार महिमास्य विशेषः ।
पदजलजे उत्तरतामस्माज्जलजातादुपद्रवात्कस्मात् ॥५७

अभावमत्रानुभवाम आतुरानतेऽनुग्रह्णन्तु किमीश्वरास्सुराः ।
शयालवश्चेन्मम दृष्टिवृष्टितः स्फुटं सहायाः स्युरथासुरा इतः ॥५८
अनुतापमहार्णवेऽधुना धृतलेखेव दृढीभवन्मनाः ।
शुचिवर्णनयाश्रितास्तु नः महनीयामलमानसैः पुनः ॥५६
प्रत्याकलितं साहसमस्थानिर्गलदपि किल साह समस्या ।
स्खलदवलम्ब्य बलाबलाया आदरयित्री हृदयमपायात् ॥६०
अहदुक्तिसबद्धहृदाराप्रतिकर्तुं प्रबभूव च वारा ।
आत्मनैव भाव्यं शवरेण धन्विपतापि यथा शवरेण ॥६१
सुरतरङ्गिणी तां बहुमानामनुकूलोचितविटपविधानां ।
वारस्त्रीमुदयन्तीमार्यमापातयितुं हटाद्विचार्य ॥६२
तिरष्कुर्वती सती निकाममित्येषा सहसा निजगाम ।
शमुद्दीपितं साहसमस्याः या विकटा खलु साह समस्या ॥६३
शीलसहस्रांशुतेजसेव शुष्यत्सलिला सा सरिदेव ।
जानुलग्नतामवाप तस्याः सम्प्रति लघुतरभावसमस्या ॥६४
पतिव्रतानां खलु सम्पदापदं निषेवते याति तथापदाऽऽपदं ।
अहो यदन्तः शयनेप्यद्यापदं भवत्यथायं भवसिन्धुरापदं ॥६५
कार्तर्स्यतः प्रत्युपकारपूर्तिराविर्बभौ विघ्नितविघ्नमूर्तिः ।
रङ्गेऽत्र गंगेत्यभिरामनाम-देवीमुदे विस्मयिनो निकामं ॥६६
समस्तनारीनिकरैकभूजिदपूर्ववस्त्राभरणैरपूजि ।
वाराधिकारादिह सेचयित्वाऽनया नयामात्तगुणाश्रयित्वात् ॥६७
समुनसि मनसि च जयस्य जातं किमिदमभूदिति कण्टकपातम् ।
नखचुण्टिकयेव नूत्नया चाभेदितया निम्नाङ्कितवाचा ॥६८

विपिनविहारे व्यालीदृष्टाभ्यतीत्य नारीरूपमकष्टात् ।
सुदृशा घोषितमनुप्रसङ्गाज्जाताहमहो देवी गंगा ॥६६
+भुजगीचराचण्डिका देवी दुष्टात्वायिरुष्टागुणिसेविन् ।
स्मोपद्रवकर्त्री ह्यायाति समयमाप्य विकरोति विजातिः ॥७०
ऋद्धिमुपेत्य भवत्या वृद्धिमात्रमेतदेवात्र सकृद्धि ।
अर्पितवत्यहमेषा दासीहतु सम्यग्दर्शनाभ्युपासिन् ॥७१
ऋणीकृताहं च कदा नृणत्वं भजेय भाजेतुमिति व्रणित्वं ।
तद्वृद्धिमात्रैकविशुद्धिहेतुभूते व्रजामीत्त्वणधृकचणे तु ॥७२
इयं गुरुत्वान्महिमानमेति निरुत्तरं त्वाम्बरमाश्रितेति ।
विश्वं त्वरं कर्तुमुपैमि देव गुणोदयं तेऽथ विमानमेवं ॥७३
तयारसोद्वेलनकेलिमेतयोः स्रजाचराणामिति कूर्णकूपयोः ।
समुद्ययौ स्पर्द्धितयातरामिदञ्जगज्जयः पूरयितुं तु वारिदः ॥७४
न दासि अस्माकमिहासुदासिसमासिमध्याप्युतदेऽवताऽसि ।
जगत्त्रयेऽस्मिन् परमुत्तमापि सूक्तिर्भवत्या सुतरामवापि ॥७५
तव प्रणोद्यचरणोऽधिगत्य वृद्धिं सदाजीवनकृत्तु सत्यः ।
वाच्यो न वा किं करता भवत्याः कर्णं त्वरं कर्तुमहो जगत्याः ७६
लेखीभवत्यत्र सदाचलानां समाश्रयायैवमथाखलानां ।
यामो वयं ते खलु यत्र भावमहोदयास्मासु महोदया वः ॥७७
तूर्णं ममात्मैव तवासनाय समञ्जलित्वं चलनोदकाय ।
मवृबुद्धिवीरुद्विदधातु कानि सम्माननार्थं न हि कौतुकानि ॥७८

+ सर्पचरा चेति पाठः स्यात् ।

यशसा श्रुतिः साचरा यासां दीव्यति दकपुनरच सुभासा ।
जयति प्रणोऽपरश्च शकासात्किन्तु पवित्रा पाशकला सा ॥७६
श्रियो निवासाय समस्ति साशिकाथ शर्वरीतो भुवनस्य भासिका ।
श्रिता भवत्या च गुणाधिकारिणी
विमानिनीयं न हि किन्तु मानिनी ॥८०
त्वया मरुत्सम्विदिते प्रमाणितां विमानिनीयं न च मानवीचिता ।
धराऽतरेऽस्मिन् समभावि मत्प्रिया
सुरोचिता नाम समस्ति यत्क्रिया ॥८१
यदस्ति भक्ताय समचताप्तिस्तवः स्वर्गिणि सूपकारः ।
व्यधायि अस्माभिरहोललामा शुभचणायाञ्जलिरेव सारः ॥८२
पत्युक्तिमर्थातिशयेन गुर्वी धृत्वा कराग्रेण मुदां स दुर्वी ।
स्वयं लघुत्वाचलनैकदक्षा बभूव सौभाग्यसुमैकसृक्षा ॥८३
ह्रीविस्मितिस्फीतियुजेत्रिनद्यां स्नात्वेव वृत्तोत्तमपुष्पभासा ।
चक्रे सुनेत्रा पतिदेवतार्चा रंदालिक्लप्ताभिनवांशुका सा ॥८४
आमन्त्रदाना किमुदेवताह महोमदिष्टा किमु देवताऽऽह ।
मश्रितमानासमुदेवतापि त्वं येन लोकेष्विन देवतापि ॥८५
देवीति यासौ नवनीतसम्पत्तयोदियायाभ्युदितानुकम्प ।
दुग्धस्य धारेन किलाल्पमूल्यस्तत्रानुयोगा मम तक्रतुल्यः ॥८६
त्वां मदनमनोहरं व्रजामि यथा तथा कुवलयेन यामि ।
किमुपवनश्रियमेनां स्वामिन् परमञ्जरीङ्कितं विदधामि ॥८७
त्वदंघ्रियुग्माय मयासनं ननकलाञ्जयुग्मं भुवि दीयते पुनः ।
न्यगाद्ययुक्तं खलु देवते क तत् विना ममोरः परमासनं च सत् ॥८८

सत्सुरतेयं तव सुमनास्त्वं कृत्वा मधुरचर्णैकतत्वम् ।
अभ्रमरीतिकरीनिगदामि मानवलोकमिमं शिवगामिन् ॥८९

सत्करोमि यत् पदयुगं सन्निधिरयमिहनाम् ।
मम कर्मासन्निष्टं तं सम्मधिगतं ललाम ॥९०

भक्तानामनुकूलसाधनकरम्वीक्ष्यार्हतां संस्तवं,
रङ्गत्तुङ्गलरङ्गभृद्घनवने पोतोपमं प्रीतिदं ।
तस्मिंस्तिग्मकरोदये च न इहास्त्वन्तस्तमोनाशनं ।
नर्मारम्भकसारमद्भुतगुणं वन्दे सदङ्कं पुनः ॥९१

(भरतवन्दमश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुज स सुषुवे भूरोमलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमश्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
सर्गः सम्प्रति याति विंशतितमस्तन्निर्मितेऽस्मिन्नयं,
स्फूर्जद्वारितरङ्गिताखिलजगत् चित्तः प्रतीतः स्वयं ॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये विंशतितम सर्गः



अथैकविंशतितमः सर्गः

शासनं समुपगम्य भूपतेः पत्तनं प्रति पुनर्विनिर्गतेः ।
इत्यमाह समनीकनीश्वरः गत्वर-वसमयाति सत्वरः ॥१

सज्जितास्सपदि हस्तिसश्चयाः स्युश्च कस्य कुथसंयुता हयाः ।
युग्यसंयुतयुगा अथोरथा गन्तुमाग्रहधराश्च सत्पथा ॥२

सर्व एव कटिबद्धतामतिसद्य एव निजपत्तनं प्रति ।
यान्तु सम्प्रति हि गम्यते विभोर्जायते समववाद एष भो ॥३

प्रस्फुरत्तरमुदङ्कुरश्रियं वर्मितुं वपुरनल्पसत्क्रियं ।
अद्भुता ननु जनेष्वभूत्त्वरा निर्गमक्षणसदेशतत्परा ॥४

आव्रजत्यतिजवेन पत्तनं माविचारमिह यांतु किश्चन ।
ग्रीवया लुलितया मुदं वहन् निर्ययावपि महाङ्गसंग्रहः ॥५

स्पर्द्धितापि पुनरग्रगामिता-सन्नियोगविषये मिथो रसात् ।
तद्रथस्य च मनोरथस्य चानन्यवेगिन इहाविराय सा ॥६

स्यन्दनं समधिरुह्य नायकः कौतुकाशुगसरूपकायकः ।
प्रीतिसूस्सुमृदुरूपिणी प्रिया स प्रतस्थ उचितादरस्तया ॥७

मत्स्यकैरपि वरासयस्सयास्सत्तरङ्गतरलास्तुरङ्गमाः ।
सामजा हि मकरानुकारिणः सैन्यसागर इहाधिकपूरिताः ॥८

राजते हि जगती रजस्वलाऽमीस्ततो हि तुरगास्सुपेशलाः ।
स्मास्पृशन्त इति मान्ति कष्मलाद्भीतिमन्त इव तावदुत्कलाः ॥९

मार्गमस्तमयितुं तुरङ्गमाः शीघ्रमेव मरुतो द्रुतं गमाः ।
उद्गिरन्त इव तुण्डतः क्षुराञ्चेलुरत्र तु परास्तमुर्मुराः ॥१०
कुर्वतीव हि खलीनकर्षणं सोढुमक्षमतया निघर्षणं ।
सत्तुरङ्गमगणस्स्म धावति स्वामिनि स्वयमयं लसद्गतिः ॥११
पादिनामतिजवेन गच्छतां तेच्छदारव तदा गरुन्मतां ।
रेजिरे भुवि भुजा निरन्तरं सञ्चलन्त उचिता इतादरं ॥१२
अध्वकर्तनविवर्तविग्रहास्तेऽपि वर्द्धितपरस्परस्पृहाः ।
शीघ्रमेव गमनश्रमं सहाः पत्तयोययुरमी समुन्महाः ॥१३
सच्चमूक्रमसमुच्चलद्रजो व्याजतो व्रजति स स्म भूभुजः ।
नीरुजोऽस्य विरहासहासती पृष्ठतो वसुमतीव सम्प्रति ॥१४
वायुवर्त्मनि चलन्त्यसौ बलात्केकपङ्क्तिरुडुपांशुनिर्मला ।
तस्य कीर्तिलतिका स्म भासते वर्द्धमानकतया महीपतेः ॥१५
निर्गलन्मदपयःप्रसारिणी मत्तवारणघटा भटेशिनः ।
भर्त्सिता भृशमथानुतापतोऽकीर्तिरेव किल सिप्रिणीजिनः ॥१६
भूयशोऽगुरुविलेपनश्रियं सन्दिशन्निव दिशामतिप्रियं ।
खातमर्वचरणैर्नमस्यद संजगाम जगती रजःपदं ॥१७
साङ्कुशं स च तिरोवहन् शिरोस्संप्रसारितकरो वशां पुरः ।
संगतां प्रतिनिवेदितुं गजः शीघ्रमर्दितसृणिग्रहो व्रजत् ॥१८
खादति स्म सरसं समीहया केनचिन्निजजनप्रतीक्षया ।
सादिनैव सरणौ मुहुर्धृतः सान्द्रपुष्ट्रकयुवेदमग्रतः ॥१९
लाघवप्रतिमितक्रियाजपिन् स्फालनानुकृतलालनानपि ।
अश्विनोधिरुरुहुर्हयान्स्वयंवङ्कशोङ्कितसवल्गपाणयः ॥२०

एक आपनबयोदरश्रिया शोभनाममलनाभिचक्रया ।
गन्तुमेव सुखतो रथस्थितिमात्मवानविधुरां वधूमिति ॥२१
सादिनो न हि दधुर्दवीयसे यावदासनकमध्वविप्रुषे ।
व्युत्थिता द्रुतमसह्यरंहमश्चेलुराशु करभाः सहस्रशः ॥२२
धीयमान इह सम्भरे तदोत्थाऽनुरेष विधृतो बलात्पुरः ।
सम्बभूव रवणो यथार्थक-निर्गलत्कवलकातरस्वरः ॥२३
आगतोपकृतये विचारिभिर्जन्मनश्च सफलत्वकारिभिः ।
शाखिभिः स सुखमापतत्वतः साम्प्रतं मदुलपल्लवत्वतः ॥२४
वंशसम्वृतिभवत्परिक्रमः श्रीमृदङ्गमितगोमयश्रमः ।
ग्रामधामनिचयेऽनुरागवान् सम्बभूव महतीश्वरो भवान् ॥२५
चापलात्समुदधूलयन् दिशः सैन्धवास्तु चरणैस्तदा स्तुताः ।
भद्रभाववशतस्स्म वारणास्स्नापयन्ति मदनिर्झरैस्तुताः ॥२६
स्यन्दनैरपि हरिद्भिरङ्कितं धन्विभिर्यदुतखड्गिभिर्मितं ॥
कक्षमात्मपरिणामवत्सलं दारुणोचितमवाप सद्बलं ॥२७
दृष्टिमेष परितः प्रसारयन्नित्युदीर्य गुणितां चा धारयन् ।
वाचमाचरितचापलो व्यभाद्भूपतिश्चरमयन्स्वबल्लभां ॥२८
अङ्कुशाहतिमुपेत्य वेगतश्चैक आत्तविरवोन्यतो गतः ।
एष चास्तभरमेप्यथादयोऽन्योन्यतश्च कितयोरिभोष्ट्रयोः ॥२९
हे सुकेशि करहाटसंयुतं सर्वतोऽलिपकपूरपूरितं ।
त्रोटिमत्सर इवेदमन्वितं रोचनादिभिरपेक्षिणां हितं ॥३०
राजते यदतिमुक्तमन्मथा सार उद्यदनुबन्धमोचकः ।
कक्षबन्ध इह तन्विरोचकः प्राणकप्रतिहितो यतीन्द्रवत् ॥३१

देववृन्दमहितो विराजते राजते च मुनिसंघसेवितः ।
नव्यभव्यनिवहैरूपासितो दृश्यते जिन इवेष्टिमानितः ॥३२
विक्रमातिशयसंयुतो धनुर्बाणसंहितसमन्वितः स्वयं ।
गौरिसज्जकवचप्रसाधनः प्रौढशूर इव राजतेप्ययं ॥३३
कर्णरूपपरिणामसंयुतः श्रोणिबद्धसुरसासमन्वितः ।
सर्वतश्च सकटाक्षदर्शनः कामिनीजन इवानुमानितः ॥३४
वातकेलिपरिवारितोप्यथालोक्यते कुहरिताश्रयस्तथा ।
सद्रसालसहितो महापथा राजते च सुरताश्रमो यथा ॥३५
सत्कुशासनविराजितस्तु न भूरिभूतकरुणान्वितः पुनः ।
सानुरेष तु सुखाशसंहतिः वर्णिवत्तरलकर्णिकावति ॥३६
भासतेऽखिलजलाशयाधिपः कर्बुरौघमपि यः किलाक्षिपत् ।
सिन्धुवद्वरुणवल्लभोभितस्सम्भवत्तरणिचारवारितः ॥३७
वेणुवारसहितश्च तन्निकापूरितः सघन इष्यतेऽन्वयः ।
नर्तकप्रतिगुणोऽस्य चोकाक्षीव भाव इव नतनालयः(?) ॥३८
वायुराहुरभिवादकौविदा आयुरेव पदवादसम्भिदा ।
अङ्गिनामनुवदाम्यहं महाभूतमेतदपि तन्विरेकहा ॥३९
नैककल्पतरुतर्पितस्थितीन्स्वप्सरोवरसमर्थितानिति ।
संजगाम पथि शक्रवद्र्याप्ताकनाम दधतो जनाश्रयान् ॥४०
श्रीधनुस्थितिमितः समुद्धरत् संगराश्रयतया वनं वरं ।
हे सुकेशि मदनैस्समन्वितं सैन्यवल्लसति विक्रमाङ्कितं ॥४१
रोमहर्षणसमन्वितत्वतः पश्यताच्छिखरिणीश्रितस्स्वतः ।
उल्लसन्मदनसारकारणादप्युपैत्यपि विलासधारणां ॥४२

हे प्रिये परमपावनोऽसकौ गन्धबन्धुपवनो वनस्य कौ ।
अत्र नः खलु पथः परिश्रमं दूरतो हरति वै ससम्भ्रमं ॥४३
तन्वि बालतनयान्विता हि तादृग्रतस्सहचरीसमाश्रिता ।
नेत्रभागकलिताञ्जनावनी राजते कुलवधूरिवाध्वनि ॥४४
काननावनिमतीत्य वेगतः स्मात्मवान्समवलम्बते ततः ।
काञ्चनस्थितिमती वसुंधरामुत्कतामनुभवन्नथो नृराट् ॥४५
तत्र सप्रभविधेऽनुगत्वतः स्नेहमाप वृषवत्सलत्वतः ।
शस्यतोयजनसंश्रयत्वतस्तुल्यतामनुभवन्महत्वतः ॥४६
हे सुकेशि तव केशपाशतो व्यस्तपिच्छ इव पश्यतादितः ।
सालशालिविपिनं विशत्यथासावपत्रपतया शिखावलः ॥४७
मन्दगामिनि तवालसां गतिं शिक्षतेऽथ कलभोऽसकावितः ।
वीक्षते दृशि पराजितो मृगोऽङ्कंपलायितुमयं द्रुतं व्रजन् ॥४८
सालकाननतया मनोहरामभ्युपेत्य नरनायको धरां ।
प्राप्तवान् सुरतरूपसम्पदा सन्निकृष्टविकशत्पयोधरां ॥४९
सौष्ठवेन तु सदिक्षु मानितां भूरिधान्यहितकद्गुणाङ्कितां ।
मेदिनी प्रभुमुदेव लोकयन् किन्न भद्रपरिणामभृज्जयः ॥५०
हस्तिमौक्तिकफलादिकं मुदा भूपतेः शबरनायकास्तदा ।
दर्शनार्थमभितस्समागतास्तत्रागुपायनमुपेत्य सन्नताः ॥५१
श्यामसुन्दरशरीरसम्पदोऽस्पष्टदृश्यमृदुरोममञ्जरी ।
कृष्णला रचितकण्ठभूषणा चञ्चलद्दलदुकूलमञ्जुलाः ॥५२
मण्डनार्थमथ वैणाभिकाश्चिन्वतीस्तनुतरावलग्नकाः ।
तत्र भील्लतनयाविलोकयँल्लोकराट् स मुमुदे वनस्थले ॥५३

मोदमाप महिषी मनोहरान् मातृसारखचितक्रियापरान् ।
प्रस्फुरद्धवलधाममण्डितान् वीक्ष्य गोपनिलयान् स्वसंहितान् ॥५४
भूरिशोभिनवनीतिचेष्टिताद्गोकुलाद्रितमधात् प्रजापिता ।
आत्मवत्सदधिकारवाञ्छितादेवमेव गुणितक्रमाश्रितात् ॥५५
घोषकोलुपलसत्कुटीरकप्रान्तमेवमवलम्ब्य बाहुना ।
वल्लवा नृपवरं सविस्मयं लोलयाथ ददृशुर्द्दशाधुना ॥५६

तेषु सन्निधिमुपाश्रितेषु चानेकधान्यगणकुष्टिमद्रुवा ।
ग्रामकेषु समुदारतां श्रियं वीक्षमाण उदगादपि ह्रियं ॥५७
मंथनश्रववशात्परिस्फुरत्सिप्रविन्दुवदनं महीभृता ।
प्रस्फुरामृतकणं सुधारुचो विम्बमैक्षि खलु गोपयोषितां ॥५८
मंथनातिशयतस्समुच्चलत्तक्रविन्दुनिकरोऽकरोद्भियः ।
पीवरस्तनतटेऽथ संसजन् यत्र मौक्तिकसुमण्डनश्रियं ॥५९
मन्थकर्मणि जुषः कुचद्वयं गर्गरीमतुलयत् यतः स्वयं ।
व्युत्थमस्तु लवयोगतो हसत् घूर्णते स्म किल विस्फुरदृशः ॥६०
मन्थिनीमुदधिसन्निभां महीशानसुन्दरगुणेन यत्र ताः ।
लोडयन्ति ललनास्स्म मन्दरप्रायमन्थकलिनामृतायतां ॥६१
शस्यवर्गविभवेन संभृताः कौशलेन समिता अदूरतां ।
संभविक्रमधराय पद्वतावीष्टवोऽकहरणार्थमस्यताः ॥६२
आगताश्च दधिभाजनादिभिर्घोषका नृपसुदृष्टये कृती ।
प्रीतितः कुशलपृच्छनादिभिर्न्यायवान् स विससर्ज भूपतिः ॥६३
रामनामदधतोदधुक्षतोऽभ्याजतोऽतियतिनीं सेहुकनि (?) ।
धेनुमैक्षत जयस्तदास्तनाभ्याससंकलिततूर्णतर्णकां ॥६४

प्रेयसीप्रणयपूर्णमानसः शीघ्रमेव निजमण्डलावधिं ।
सुचिदैकहृदयो मुनीश्वरः प्राप मुक्तिनगरीप्रघाणवत् ॥६५
आतपत्रमितफेनरङ्गिणी सञ्चलद्ध्वजवृहत्तरङ्गिणी ।
चन्द्रहासझषलासनाहिनी निस्ससार विभवेन वाहिनी ॥६६
अवलम्बितमत्तवारणस्रजमत्यादरतो महीपतिः ।
विरहादिव लम्बितालको नागरीमेष ददर्श सम्प्रति ॥६७
गगनं कषमन्दिरध्वजामरुता सत्तरलाञ्चला सती ।
प्रथमं खलु वीचिताजनैर्यदि वा स्वागतमेव तन्वती ॥६८
पुरसिम्नि पुनः पदातयोऽथ पदाश्चौ विनियम्य चक्रिरे ।
परिशोध्य हि पदरत्तिका उपसंव्यानकविस्तरंतराम् ॥६६
तुरगा अपि ते रजस्वलाऽवनिसम्पर्कत् आप्तकम्मला ।
श्रमवारिभिरेवमाप्लुताः प्रबभूवुः खलु तत्र विश्रुताः ॥७०
गमनातिशयाज्जनीजनः शिथिलं साम्प्रतयान्तरीयकं ।
दृढयन्नथवा प्रसाधयन् स्म मुहुः पश्यति लोलया दृशा ॥७१
पवनप्रतिभावितोप्ययात् परितोधूसरिताङ्कशङ्कया ।
रथराजवितानकं पथीत्यधुना शोधयति स्म सारथी ॥७२
मनुजास्तनुजायनश्रमं किमपीमं न हि मेनिरे तदा ।
निजपत्तनदत्तनर्मणां परिवारैः परिवारिसम्पदां ॥७३
चरणद्वितयेन पत्तिभिः पदवी संसृतिवद्वीयसी ।
स्वरमाभिगमाभिलाषिभिः सहजेनाप्यतिवर्तितारसिन् ॥७४
हृदयस्थितकामपाधकं कलयन्नञ्चलकैः किलावृतं ।
वनिताजन एकतस्तरां तनुते वाततति स्म साम्प्रतं ॥७५

अतिवर्त्य नदीवनादिकं पुरमात्मीयमवापि सेनया ।
नरपस्य यथा यतिस्थिति लभते संसृतितश्शिवं स्यात् ॥७६
समियाय स जाययाद्दतो नगरस्थापितमन्त्रिभिर्घनी ।
सहितः कुसुमश्रियामधुः कुतुकोत्कैश्र मरैरिवाध्वनि ॥७७
नगरं प्रविवेश वैभवाश्रिजवृत्तं कियदेषु सम्वदन् ।
अथ कर्णपथं नयन्नयं स्वयमेभ्यो निजदेशवृत्तकं ॥७८
नरनाथमनन्यचेतसोभयतस्तावदुपस्थिता नराः ।
प्रणमन्ति तथा स्म ते किलानरपद्वारमुदारगोपुरात् ॥७६
सरतो बलवारिधे स्थितो द्वयतः पौरगणः क्रमागतः ।
समतिक्रमरोध आदरादनुचक्रे सहितीरमन्तरा ॥८०
वाणिजोमणिजोषमादरादुपहारं ह्यनर्णौ वणिक्पथे ।
ददुरेव चिरादुपेयुषे सुयशः श्रीसहिताय सुप्रथे ॥८१
तदा वधूकान्तिसुधां निपातुमभ्यागतानां पुरसुंदरीणां ।
मुखेन्दुसन्तानवशाद्बभूवुरन्यर्थसंज्ञाः खलु चन्द्रशाला ॥८२
विलोक्य कान्तं सुरभिस्वरूपं प्रफुल्लिता गात्रलतालताङ्ग्याः ।
तदाननेन्दुं मधुरास्मितान्तं दृष्ट्वा समुद्रोऽमलतोऽयमिष्टः ॥८३
प्रियां समुद्दिश्य नरः स्वमास्यं समस्पृशच्छ्रांततयेव चास्य ।
विलोकनात्संघृणयेव वामाऽधरं परावृत्यतरां रराज ॥८४
वनिताजनितातरलागीतिस्स तु तूर्यरवः समुदात्तः ।
सुविकशि नृपाङ्गणमाभूद्धर्षमितः सकलश्च निशान्तः ॥८५
विशद्भिर्जनैर्निस्सरद्भिश्र शश्वन्नृपद्वारमाभूमियोगिप्रसिद्धैः ।
अतिव्याकुलं शब्दविस्तारयुक्तं तरङ्गैरिदानीमिवाम्भोधितीरं ॥८६

हेमाङ्गदादिष्वधुनास्थितेषु बबन्ध पट्टं पट्टरेष तस्याः ।
भाले विशाले दुरितान्तकाले भवन्ति भावारमिणां रमासु ॥८७
अथ कम्पनाधिनाथो भवेद्भवानेव देव भूमितले ।
भवदपरः कश्च नरोऽकम्पनसुततां व्रजेद् बन्धो ॥८८
अन्यदर्शकतया जगौ परः श्रूयते भुवि भवानहो करी ।
प्रत्युवाच पुनरेष साहसी त्वं च वाञ्छपितरां करेऽणुतां ॥८६
गोपतिर्जनतयासिभाषितोऽस्माकमाशु गुणवद्वृषस्तवकं ।
आहसोऽथ वदतीतरे जय किन्न गोत्रिगुण एव भो भवान् ॥६०
अस्मदत्र तु भवान् मृगनेत्री प्राप्य गच्छतु परम्परभावं ।
प्राहसोऽपि गदतीत्यपरस्मिन्नस्मि किन्तु भवतः सुहृदेव ॥६१
इत्युक्तिभिर्वक्रतराभिराभिर्बभूव भव्यापरिहासगोष्ठी ।
गूढार्थपूर्वाधपरार्द्धभाग्भिः श्यालैस्समं हस्तिपुराधिपस्य ॥६१
वापीतटाकतटिनीतटनिष्कुटेषु हेमाङ्गदप्रभृतिबन्धुसमाजराजं ।
त्रिक्षेप सोऽथ रमयन्समयं नरेन्द्रः
केन्द्रेऽरिवृद्धिकनिदानभिदामधीशः ॥६३
पुनरमून्बहुमानपुरस्सरं प्रतिविसर्जितवान् विहितादरः ।
विविधरत्नसुवर्णविभूषणैरतिथिसत्कृतिमन्मतिमान्तरः ॥६४
आशास्य चारुवचसां चयैः श्वसारं नयैकचित्तास्ते ।
प्रीत्याभिवाद्य च जयं विनिर्ययुः पत्तनात्तस्मात् ॥६५
गत्वान्तिकं तावदकम्पनस्य नत्वा स्वश्रुः स्वश्रूपतेर्वदित्वा ।
क्षमं गदित्वा च मिथोनुरक्तिं ते नीतवन्तोऽप्यमुकं प्रसक्तिं ॥६६

पुत्रीन्तु सुत्रितसद्गुणां विदुषीं सकाशीराड्डुप-
रम्याननां परिणाप्य सद्विधिनाधुना निपुणात्मजः ।
मानवशिरोमणिरात्मविभिन्नबन्धशर्मण्याशयं,
यशसां पुनस्तरसां समागमपण्डितो जगति स्वयः ॥९७

(पुरेमाप जयश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
द्वाविंशप्रथमो जयोदयमहाकाव्येऽतिनव्येऽसकौ,
सर्गस्तेन महोदयेन रचिते यत्कल्पमल्पं हि कौ ॥९८

इति श्री वाणीभूषण ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये एकविंशतितमः सर्गः



अथ द्वाविंशतितमः सर्गः

अथ भो भव्या भवेन्मुदे वः सारसबन्धुरयं जयदेवः ।
सा रजनी रामा बहुमानं तमनुबभूव च धामनिधानं ॥१
मधुरं वचो हैमसुत रङ्गं सातपमत्राखिलमप्यङ्गं ।
शरदमुपेत्य निगरमबलायाः सर्वर्तुमयामोदमथायात् ॥२
घनोदयं कुचमत्युत्तङ्गं मृदुशशिशिरसमवायमभङ्गं ।
यया सुविधया सम्पदाश्रयः समयमन्वयं नयन्नपि जयः ॥३
कापि मधुरता जगत्प्रसिद्धान्वभूद्यया सहकारमियद्धा ।
सोऽनुत्तरसुखवर्त्मसात्त्विकः विभवमयो रवसम्पदापि कः ॥४
अविकलिताम्बरमणिमयभूपालम्बितापि खलतापतनुः सा ।
पायं पायमधररसमस्य तृषमुदपाद यदाशु जयस्य ॥५
अभ्यन्तररुचाभवत्सपुपः स्थानमिहास्यत्कवचनवपुसः ।
अङ्गमाप्य नान्तलक्षणं सा रेजे गुणगुम्फितप्रशंसा ॥६
विलसद्धारपयोधरभावात्मारसातिशायिसम्पदा वा ।
नवधान्यस्य मुदं सौभाग्यमाजुहाव सहजे न हि राज्ञः ॥७
शस्यवृत्तिमभिवीक्ष्य सदा वा चातक इव चकितस्तृष्णावान् ।
स च शरदमिवेनां भुवने तु सदपघनत्वमगुष्याहेतुः ॥८
सुप्रसन्नभावेन हसन्ती सदुरोजातोष्मणा लसन्ती ।
पार्श्वे यस्य पवित्रा वारा सदा स्थितिस्तस्यापि तुषारा ॥९

सापत्रपता यत्र तदेनां जगतां कल्पतरुश्चनिरेनाः ।
नवप्रवालोपादानाय शिशिरश्रियमनुबभूव चायं ॥१०
कौमारं खलु लंघितवत्या नखाच्छिखान्तं जयः सुदत्याः ।
आलम्बितो हितोक्तसमाधावथ का कुसुमशरस्य च बाधा ॥११
स्त्रपोऽभवन्नादिमतेन खररुचिरिपुरिति सम्प्रति तेन ।
परिवारिता सुमध्या वारा संकुचतः कुड्मलादुदारा ॥१२
समुद्रसद्रसनादरतायामस्तु सज्जनाभिनर्मदायां ।
का निमज्य हा निदाघभीतिर्याविलग्नकेवलिप्रणीतिः ॥१३
सजयो महोदयोऽप्यपश्रमं प्रावृषि नाभिदरीमरीरमत् ।
मदनभुवो भववनेऽपि लब्ध्वा पृथुनितम्बभाजो नववध्वाः ॥१४
पद्मिनी शरदिसोऽन्वभूद्वशी संकुचद्विगुणकुड्मलां निशि ।
सुप्रसन्नमुखवारिजां जयः सौरभावगततृप्तिमप्ययं ॥१५
उच्चैस्तनमोदकाय सिद्धा निस्वेदया रुचा जगतीद्धा ।
हेमन्तश्रीरिवाभिरामा महीपतेः सा बभूव रामा ॥१६
उच्चैस्तनसानुनानुमातुं मरुतां विस्मयकरी प्रिया तु ।
किमस्तु माघस्याप्यसानं यदि तस्य वियत्रताभिमानं ॥१७
प्राप कौतुकातिशयधरं सच्चित्राख्यातमासिधृतशंसः ।
अनुमदनविकाशं विलसन्तं दारसारमवनौ च वसन्तम् ॥१८
शर्वरीति मृदुचलनासालं चक्रे विस्तृतकरं नृपालं ।
भास्वन्तं भुवि वेशश्चायं जेष्ठो जडतापकारणाय ॥१९
मनोमयूरमुदे साऽपापासरसेङ्कितापहृतसन्तापा ।
चपलापाङ्गकृतचमत्कारा सज्जघनोदयमुपेत्य वारा ॥२०

विशदाम्बरा च मञ्जुलतारा कमलान्वयिभ्रमरविस्तारा ॥
प्रातालङ्कृतमृदूदराऽराच्छरदिवान्वमानितेन वारा ॥२१
मकरकेतुसंक्रमोदितायाशीतश्रीरिव साऽभूज्जाया ।
कमलस्याभावार्थमवश्यं सरसमानसस्यावनिपस्य ॥२२
सकुचति कुड्मलेऽब्जास्या यः प्रससार करो राज्ञश्चायात् ।
हसतीह सतीर्थंजनतायाः सकोचं समये तूपायात् ॥२३
स्पर्शनेनरोमञ्चनभावाच्छिशिरश्रीरिव कम्पनदावा ।
विषमाशुगसाधितसीत्कारपुरस्सरं धृतरदच्छदारं ॥२४
ललितालकां मूर्धभुवमस्यामुक्ताश्रितामुरोजसमस्यां ।
अमृतमयं रदनच्छदविम्बं लब्ध्वा चाम्बरचुम्बिनितम्बं ॥२५
रामां च द्यामिव च निगद्यासौ सर्वेष्वङ्गे नवद्यां ।
नाकिजनानामाप समृद्धिमुक्तिरियं न तु विस्मयकृद्धि ॥२६
नाकमवापानुष्ठानेन सुदृशमाप्य किमु चित्रमनेन ।
निर्वाणिभवं शर्म तथापाद्व ततयालिङ्ग्यातमपापां ॥२७
सम्मिलदुच्चैस्तनकोकवतीमुषसमिवाप जयस्त्विषां पतिः ।
सम्प्रति कवरीकृतान्धकारामुत्फुल्लाम्बुजमुखाञ्च वारां ॥२८
सदसि यदपि भूभुजां च मान्यः सेवक इव खलु भुवो भवान्यः ।
आत्मानं पश्यतोऽपि नान्यः स नतस्य दृशीति यद्वदान्यः ॥२६
मदनधरा च धरम्व जयस्य द्वे प्रिये श्रियेऽभूतां तस्य ।
भूभुजे भुजे इवानुवृत्ते तुल्ये सन्निदधत्यौ हृत्ते ॥३०
रोमाञ्चनमालिङ्गनेऽन्तरं योजनवदमानीत्यतः परं ।
दृशि निमिषः सम्वत्सरतुल्यः लब्ध्वा ताभ्यां प्रेमामूल्यं ॥३१

वेणूदितसम्पदोऽबलाया गुणमाप्त्वाभूच्चापलता या ।
सरलं तरलं मनोवरस्य यदानङ्गमदहानिकरस्य ॥॥३२
हारमिवाह हृदः पतिमेषा तस्य दशस्तारेव स देशा ।
सगुणवृत्तकवलं मृदुवेशा जगदानन्दसमुद्धृतये सा ॥३३
अजवपुषा गोपता तथा या महिषीकामधेनुतां साऽयात् ।
अविकलहृदाऽमुना यदापि अविनीतां साक्कुतः कदापि ॥३४
मदनप्रेमसदनयोः साम्यात्संभोक्तुं न शशाक भिदां या ।
सन्दधार साध्वीद्वयमेषा कुचयुगपदि हृदि सापरिशेषात् ॥३५
यद्यपि साऽसीन्महिषीशस्तानावश्यककर्मणि परहस्ता ।
देवीत्युदितापि निजे हृदये स्वां राज्ञीं नान्वभूद्गुणमये ॥३६
तस्मिनसाधुसपर्याधीने तमनु च कारपथीहाहीने ।
देवाराधनसमये वारा ददती तस्मै सोपष्कारान् ॥३७
सेशमतिं सायं विधिमग्नामाप्याभूद्गृहकार्यनिमग्ना ।
सपदा प्रजाहितायनयात्री सापि तदोचितसम्मतिदात्री ॥३८
तेजस्विनः करेणापन्नामृत्तणतनुरासीत्सास्विन्ना ।
समुदियायतस्यापदपाङ्गश्चित्रं सोऽभूत्कण्टकिताङ्गः ॥३९
सविटपभावमवाप यदातुलताभूयमालिलिङ्ग सा तु ।
मोदमंदिरे तस्मिन्बालादीपशिखेवाह्लादरसाला ॥४०
खगतामाप यदा सुलक्षणी सहसैवासीत्सापि पक्षिणी ।
तडिल्लतालङ्करणायेव सा यदि मुदिरोऽभूज्जयदेवः ॥४१
जगदुद्योतनाय सति दीपे साभा सा भाति स्म समीपे ।
नरशिरोमणिर्भुवि निष्पापः सापि सदाचरणे गुणमाप ॥४२

अमरहृदो मृदुहारमणीया भवति स्म श्रीमहारमणीयान् ।
समय इवागाद्वाऽरमणीयान् शरदोऽस्य सुधा वा रमणीया ॥४३
परमापरागतोऽपि जयन्तं समधिगम्य समदृशा जयंतं ।
कुसुमलवामसमाश्रयमेषा परिदधनीह स्म रसविशेषा ॥४४
मध्यमवृत्तितयाकरमाप भुवनादधुना सकावपापः ।
कौतुकेन महता मुहुरध्याश्रिता सता समभूच्च विमध्या ॥४५
मोदसमुद्रसमृद्धयै तस्या मृतगुत्वं निदधत्यै न स्यात् ।
किमुद्रयाङ्कुरः परं पवित्रः कामधेनवे तस्यै मित्र ॥४६
कोमलपल्लववती सतीतः सच्छायः स च जयः प्रतीतः ।
अश्रुतपूर्वमुत्सवं व्रजतः स्म लतातरुणाक्रान्ता स्मरतः ॥४७
समहानसत्वमाप नयावत्साहारसं पदमधात्तावत् ।
बीजनंदधरैवमुदारं रसति तु तस्मिन्ननेकवारम् ॥४८
कौतुकतोऽपि करं सन्दधता कराटकितापि ततोनुमृदुलतां ।
तयाशयश्चेत्स्पृष्टुमदर्शिस्मितकुसुमं विटपेनाचर्षि ॥४६
तमस्युद्धतत्वेन खण्डितौ नखलेनकिलेनेशितुर्हितौ ।
दोषोज्झितौ कुचावववापतुर्हियेवावृत्तिं सुतनोरिह तौ ॥५०
स्वादिनैव मनसोऽनुभवेन तस्य रतेः कान्तताश्रयेन ।
सुलोचनायामभूद्विचारः इत्युभयोरुत्तमप्रकारः ॥५१
सुधालसत्कृतिमाञ्जयदेवः भो सुमनसोऽस्ति किन्न मुदे वः ।
सौवर्णेन हरिद्रवाराद्वयोपयोगेऽनुराग आरात् ॥५२
नागदलचणमाप्तवोदारं सुधावाक्तु सा सखदिरसारः ।
इयीत्यसौ समुदितप्रमाणा मुखमण्डनाय सत्पुरुषाणां ॥५३

श्रीहरेरुरसि शर्मापश्यत्साद्‌र्धभाव उमयापि मृडस्य ।
सातमाप सरिदम्बुधितुल्यं तत्त्वमत्र खलु जीवनमूल्यं ॥५४
सुरवरवंशमपूर्वख्यातिवनमपि नवनन्दनं स्म भाति ।
पुण्यसदनमिव तयोः सदा वा दम्पत्योः सत्कृतैकभावात् ॥५५
मीनमञ्जुचक्षुषे सुवस्तुजीवनमेव समादधतस्तु ।
भूमिपतेः साचासीन्नवलालोचनखञ्जनाय चन्द्रकला ॥५६
नावान्ता सा नदीजयेन सम्मानिता विचारमयेन ।
सागरमेनमवापामघ्यास्थितिस्तयोरित्यसाववध्या ॥५७
न स्वप्नेऽपि हृदौज्झि कदाचिन्नतभ्रुवः कथमस्तु स वाचि ।
कर्मणा तु विनयैकभुजापि व्यत्ययेन यज इत्यथवापि ॥५८
चलनमिहानुभूय गुणधामासनमाप सती राज्ञो वामा ।
अपि मुकुलितकलकमलललामा पद्मिनीव विनतयेऽभिरामा ॥५९
विस्तृतचरितेऽम्बर इव तस्मिन् सद्गुणगणिनीव स्मितरश्मिः ।
जल इव तृडपहारिणीशे तु स्वादुतेव सासीद्रुचिहेतुः ॥६०
समालोचकत्वं दधतीवामुष्मिन्साऽभूद्रूपाजीवा ।
मृदुवादित्रपरायणो सदाप्युच्चैस्तनढक्काशुसम्पदा ॥६१
भुवमनुमातुममुष्मिन् लम्बे साह हेमसूत्रं स्वनितम्बे ।
यदि गुणिनि स्वर्गेऽस्य विचारः निजमम्बरमियमिहोद्धधार ॥६२
मदनद्रुतत्वमभवच्च यतः सदापि कान्तामनुगम्य सतः ।
न कामधुरता बभावुदारात्र कामधुरतामवाप साऽऽरात् ॥६३
वलिसद्मनि तस्य यदा ध्यानं बभारोदरे सा सम्मानं ।
मुक्तालयमीक्षितुमुत्कस्यास्य मुदेस्तनमण्डलं तु तस्याः ॥६४

स्वमयं विश्वमियमिहोन्नेतुम्विश्वप्रेमपरे नृवरे तु ।
सदाशावती सदाशर्मणि तस्य शर्मभाक् किल सधर्मणी ॥६५
उरीकृतापि भुवमलञ्चक्रे वक्रभूः किल विधावक्रे ।
सर्वाशाभामामीशेन साशातीतमधुरिमा तेन ॥६६
जडलोकसुधारणे प्रचेताः धनदो दीनजनाय विजेता ।
दण्डधरोऽपराधिवर्गे तु तत्परोऽथ शतशः क्रतुमेतुं ॥६७
वीणावती स्वरेण सतोरीकृता तथा सास्मि तेन गौरी ।
हरिणीदृशोत्पादिताप्सरसां चयेनाधरीकृतामृतरसा ॥६८
सकलसन्निधिर्नृपो यदाऽरादप्सरोमयीङ्कितेनावारा ।
सुधारान्वयेऽस्मिं तु सुधाराधरेवाप्यभूत्प्रमोदसारा ॥६६
स तु निजपाणिपङ्कजाताभ्यां परिमातुमिव सुगभीरनाभ्याः ।
मीलनके लौलोचनोत्पले सन्दधार परिणामकोमले ॥७०
सा तूत्तुङ्गकुचतयापि तयात्र निषिद्धाविद्धाथोत्थितया ।
भुजयोर्नवनवकण्टकिततया मुद्रयतु किमीशदृशौ चरयात् ॥७१
सारसकेलिरापि मिथुनेन नदीपुलिनदेशेषु च तेन ।
यदङ्गभासुदिने सति कोक-लोकः प्रापाप्यशोकमोकः ॥७२
उच्चलदविरलकलकान्तिभले वानितायाः कोमले तनुतले ।
पातितमिति जलमपि नाज्ञासीज्जलकेलौ निरतश्च विलासी ॥७३
हीनताननाया अतिपीनस्तनतयापनापि करो दीनः ।
अभिषेक्तुं तावदितस्नात आनन्दाश्रुभिरीशो जातः ॥७४
मध्यस्थोऽसिर्वाशय आसीन् सम्प्रति सत्कृता यशसां राशिः ।
भुवो भाविते सुगुणादर्शे हितमनुचिन्तयतो राजर्षेः ॥७५

सुगुरुतरोरोजयोर्भरेण मा त्रुट्यतु मध्यः स्विदनेन ।
सुगुरूरुकसन्धृतानुबन्धं सास्य कदया व्यधात्प्रबन्धं ॥७६
रात्रौ राज्ञि तु कैरविणीया सस्मितामधुरसा रमणीया ।
साऽलिजने किमु मुद्रणामगात्पद्मिनीति च दिनेऽह्नी सुभगा ॥७७
विप्लवलवधूस्वरेण सासन्नाविप्रभावमापय दासः ।
कर्णधारकत्वं साप परं स यदा चारित्राख्यानकरः ॥७८
तरणिर्नवप्रभावत्वेन ससाभुववभानिनीगुणेन ।
जडधीति विधाकरः स सुमना अपि सा सुसज्जनौकस्तवना ॥७९
तामुच्चैस्तनकुम्भां च धरन्संचतुं बारिषु स धीवरः ।
कलाधरे रुचिमाप सुवासाः कौमुदाश्रिताभूद्रुचिरासा ॥८०
तं खलु विशेषकायानुमतं केशरमाहुः सुमनस्सुहितं ।
नाभिभवां च मरुद्भिः शस्ताकस्तूलिकां विदेहजनस्तां ॥८१
जात्यावृत्तेनापि लसन्तौ सालङ्कारतया खलु सन्तौ ।
सार्द्धं विरामावत्र जम्पतीश्रीच्छन्दसी गुणेन सम्प्रति ॥८२
जयः स्तभः सुवृत्तत्वाद्गार्हस्थ्यसद्मनोऽघृणी ।
अभ्यागतस्य विश्रान्त्यै साच्छायेवोपकारिणी ॥८३
माणिक्यनन्दितामाप सप्रमाणिपदेष्विति ।
सम्मानिता शुभार्याणां सा प्रभाचन्द्रसत्कृतिः ॥८४
सदेवागमसंख्याता सा विद्यानन्दसत्कृतिः ।
अकलङ्कस्य यशसः प्रतिष्ठानाय यन्मतिः ॥८५
तत्पादपद्माग्रलगत्परागिणी सासीत्तु सन्ध्येव सदानुरागिणी ।
विश्वैकभानोरुत सुप्तशायिनी पूर्वप्रबुद्धेति किलानुयायिनी ॥८६

गद्यचिन्तामणिर्वाला धर्मशर्माधिराट्परं ।
यशस्तिलकभावेनालंकरोतु भुवस्तलं ॥८७

सुमनस्सु वसन्तं च पवित्रं प्रतिजानामि जयं गुणिमित्रं ।
सारम्भाप्सरस्सु सदपघना संबभूव परमब्जलोचना ॥८८

जयः कराशीराजितो वारोचितात्र सापि ।
कविताश्रयदोहानयेऽघस्य श्रमो ममापि ॥८६

जयः समुद्रः समुदायिभावादियं घटोघ्नी गुणसम्पदा वा ।
मायान्वयाचारितया च वारिग्रचारिताप्यत्र रयादधारि ॥६०

मिथुनमिति भवत्प्रणयमुत्सवस्थले घृतसितावद्वगतहितं ।
प्रतिपद्य विभवममुकस्य पुनः नयामि कथने प्रणवमुत च नः ॥६१

(मिथःप्रवतनमिति चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुपुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
निर्याति द्व्यधिकोऽपि विंशतितमः सर्गोऽत्र भो सज्जन,
श्रीवीरोदयसोदरे शुभतमः शर्मैकसंसाधनः ॥६२

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये द्वाविंशतितम सर्ग



अथ त्रयोविंशतितमः सर्गः

समर्प्य राज्यं विजयाय नाकुलोऽनुजाय चामुत्र हितान्वितान्तरः
प्रजाप्रियोपायपरः प्रियाश्रयाभिमप्रहर्षेण सुखी व्यराजत ॥१

भयापहारिण्यमुकस्य शासने बभावपीयं प्रभयान्विता प्रजाः ।
अनारतं नीतिवलप्रचारकेऽप्यनीतिभावः प्रसृतोऽभवत् क्षितौ ॥२

अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा भृशं विचारदृक् चारदृगप्यवर्तत ।
न सन्निधौ मग्नमनाश्च सन्निधिप्रियश्च सम्वेगधरोऽपि वेगजित् ॥३

गिरं विचारेण गिरा श्रियां श्रिया सुलोचनामात्मवशं नयन्नयं ।
मिथः प्रतिष्ठाप्रदया दयाश्रयस्त्रिवर्गशक्त्या स रराज राजराट् ॥४

मुखारविन्दे शुचिहासके शरेऽलिवत्स मुग्धो मधुरे मृगीदृशः ।
प्रसन्नयोः पादसरोजयोर्दृशं विशेष्य पद्मापि जयस्य सम्बभौ ॥५

शाकल्यभाजहविषानतश्रवोरतीशयज्ञे सुरतीर्थनायकः ।
निजानि पञ्चायतनानि तर्पयन्नवाप पापं नमनागनाकुलः ॥६

सुलोचना कान्तिसुधासरोवरी रसैरमुष्याः परिणामकोमलैः ।
वहन्नभावङ्कुरितां वपुर्लतां सदैव मुक्ताफलपूरितां जयः ॥७

वधूमुखेन्दोः स्मितचन्द्रिकाचयैर्जयस्य नक्तं च दिवा च भूपतेः ।
स्वयं प्रजायाः कुशलानुचिन्तनैर्बभूव तावत्समयः समन्वयः ॥८

महामनास्सौधशिरोऽधिरोहितो हितोऽभितो यौवतसेवितः स्वतः ।
प्रजाजनानां सजयोदयोज्वलः सुखेन खेनाथ रराज राजधः ॥९

नभः सदा शर्मकरश्चरन्नरं विहायसा व्योमरथोवलोकितः ।
प्रभावतीत्युक्तवचा विचक्षणो मुमूर्च्छ जातिस्मरणं जयो व्रजत् ॥१०
जयोऽथ जातिस्मृतिमेव तां प्रियामलब्धपूर्वामिव सुन्दरीं श्रिया ।
किमेषु रन्तुं परदाभिदां ह्रिया बभार मूर्च्छामपि चावृतिक्रियां ।११
सुदृक्सदृक्षी युवतिं ह्युपेयुषः क्व मादृशो वृद्धतरेत्यहो रुषः ।
स्थलं न वा स्यादिति वासनावशस्त्वनन्यचेता भुवमालिलिङ्ग सः
श्रवद्रवेणस्थपुटेन चोरसः कृतेन लौकैर्मलयोद्भवैधसः ।
नृपस्य सन्तापतमासहिष्णुना विभिन्नमाराच्छतशोऽमुनाधुना ।१३
किमेतदेतत्प्रतिबोधनत्वरासुयष्टिवत्सम्पततोऽस्य सन्धरा ।
बभूव चित्तस्य गरुन्मतो जवे जनेषु सैवोद्धमनैकहेतवे ॥१४
शरीरमेतत्तमसोदरी पुनरगाच्च गां व्युत्थितवर्तिवेश्मनः ।
तदुत्थधूमा इव कुन्तलाश्चला विरेजुरे तस्य विभोर्मरुद्बलात् ॥१५
करं क्व यासीति तु कोऽप्यधादरं स्वरौ व्रजत्प्राणरुरुत्सया परः ।
किमागसा रुष्टमिपत्पदौ पुनरिति स्म सम्मर्दयतीतरो जनः ॥१६
मदेकनाम्नोऽपि विधोरुचं निधेर्दशा शुशोच्येयमहो वशाद्विधेः ।
द्रवीभवस्तत्परिचेतुमागतः किलाब्दसारः परिवारितावृतः ॥१७
इहैव जातिस्मृतिमाश्रितामति-परावृतिं प्राप सुलोचना सती ।
विलोक्य पारावतजम्पतीरतीत्युपांशु मुक्त्वा वरनाम सम्प्रति ॥१८
अभूत्सभायामनसोऽतिकम्पकृत्तदत्र कष्टेप्यतिकष्टमिष्टहृत् ।
यथैव कुष्ठे खलु पामयाऽजनि अहो दुरन्ताभवसम्भवाऽवनिः ॥१९
स्थितिः सतामेवमधीरता ह्रियाः विचार्यतामेव पुनः प्रतिक्रिया ।
कुतो विपत्तेस्तरणं भवेद्धिया तत्र त्रियुक्ता जनताऽगदाश्रियां ।२०

साऽभूत्वरासम्वरितस्वरायाः प्राणान्विदूगच्छत उज्वरायाः(?) ।
तदावचेतुं परितः प्रवृत्तिः सखीषु सख्यं व्यसनेऽनुवृत्तिः ॥२१
तदाथ तस्यै व्यजनः विनीतं कयाश्वसनर्पयितुं प्रणीतं ।
सन्तापमेका ःवपने तु माराद्दाविदानी हिमसारधारां ॥२२
कयैकिकाराजरमेति तन्तुमनोऽनयाऽकारि समन्तु गन्तुं ।
रेमे पुनः प्राणकथानिवान्याऽवचेतुमःयाश्च कथान्वदान्या ॥२३
पयोरुहालीपरिपूरितालीकुलैस्तगालीभवदङ्कपाली ।
म्लानं तदीयास्य कुशेशयं सा मुमूर्च्छ मत्वेव समानवंशा ॥२४
त्वया स्मृतः सोऽयमिह प्रशस्तौ येनापि तौ कुड्मलतोऽत्र हस्तौ ।
उरोजयोर्न्यःस्तपयोजयोगः ःवचेष्टया निर्वचनोपयोग ॥२५
स्फुटेऽपि तत्त्वे तु निमुह्यते मतिर्न दुर्विधानां किमितीष्टसम्मतिः ।
मयाप्यतेऽत्रैव पुनः प्रसज्जनमहोज्वरीचीरमियाद्विषं जनः ॥२६
बाल्ये चापल्येन यत्सहकृतं केनापि सम्वेशिना,
तन्नामस्खलनैकधामदुरितं संगाढ़सन्देशिना ।
तस्यैषा छदिरेवमाप दिगतिर्धी येन क्लप्तारया-
त्सम्रच्छन्नन एव यौवतमिदं संघोषयन् याऽनया ॥२८
तदन्यनारीनिकरः करोत्यसौ सहाथ पत्या विनिपातकैतवं ।
परस्परप्रेमपरा व्रतेहयाहपायमानेति मनःयतर्कयत् ॥२६
बभूव तस्या मनसोरसोधवं प्रतीह यावत्सुभगं पुराभवं ।
विनिर्ययौ चित्तदनन्यसेविका पिवातमन्वेष्टुमिवाधिदेविका ॥३०
चिदुभयोः शुभयोगवशान्नृणां समुदियाय निमज्य समुत्तृणा ।
निभृतमेवमयोनिपयोनिधावथ च कौतुकिकौतुकि यद्विधा ॥३१

य इमां प्रसिसादयिषुर्नरपः स कुतोऽपि भवत्यधुनाऽधरपः ।
खलु दोषगणोपि गुणो हि भवेच्चिरतायसमिष्टजनस्य भवे ॥३२
निजां तनुं स्नागभितः सभामनुसतां तमेषा च गुणोल्लसज्जनः ।
दशेति तौ साचिगतौ निरीक्षणं न वाचि साचिव्यमवापतुः क्षणं ॥
तदापविच्चं सतदात्मशुद्धितः श्रुतं च दृष्टं क्व कदाचबुद्धितः ।
तथा न शास्त्रेष्वपि लभ्यते मनागहो महो भातु सदा सदात्मनां ॥
स्वभूतजन्मोत्थकथा यथावरा बभूव चित्रोल्लिखितेव गोचरा ।
तया स सम्प्रापदगर्भसम्भवं भवान्तरं प्राप्त इवाधुना नवं ॥३५
क्व सा प्रियाथाद्दतजातसंस्क्रिया पुनर्मनोऽस्याप्यनुभावितं हिया ।
महात्मनामप्यनुशिष्यते धृतिरहो नयावद्धिनिरेति संसृतिः ॥३६
तदेकसंदेशमुपाहरत्परमुपेत्य बोधो वधिनामकश्वरः ।
अहो जगत्यां सुकृतैकसन्ततेरभीष्टसिद्धिः स्वयमेव जायते ॥३७
अतानि तेनावधिनात्र संक्रमस्त्वनन्य एवाभिनयो भवत्तमः ।
यदङ्कुरोत्पादनकृद्घनागमः फलत्यहो तच्च शरत्समागमः ॥३८
वैपुषास्तु च भिन्नता सदा न हृदा किन्तु कदापि सम्पदा ।
निरुवाच समं समुद्भवन्नवधिस्तेन सुचक्षुषो नवः ॥३९
यदसिश्चदहो भवस्मृतिः सुदृशस्तत्र सदाशिकावति ।
हृदि सम्पदि वाथदीपकः समभात्सोऽवधिरप्यहीनकः ॥४०
ममापि मे मण्डनकस्य शस्यते मनोऽन्यजन्मादि यतः समस्यते ।
अहोरहोऽदस्तु महोत्सवाय नस्तयोरभूदित्यनुशासनं मनः ॥४१
सुदृक्परान्तः प्रतिवेदको भवन्सुधीः सुधीरो वसुधावधूधवः ।
निजीयजन्मान्तरवृत्तपूरणे प्रियां स्म संप्रेरयतीष्टभूरणे ॥४२

वचोऽपि तस्या गुणभद्रभाषितं सितं तु सापत्न्यमनोगतं द्रुतं ।
चकर्ष मालिन्यमलिन्यपेक्षितं तदा ह्ययस्कान्त इवायसोंऽशकं ॥
अहो सज्जनसमायोगो हि जगतामापदुद्धर्ता ।
इतः शुश्रूणवेस्सभ्या प्रश्नकर्ताः स्वयं भर्त्ता ॥४४
विदेहपुण्डरीकिण्यामिहैव वृषानुरागिण्यां ।
एनसः संविरागिण्यां बभूव विभोः शुभावार्ता ॥४५
कुबेरस्य प्रियो नाम्ना धनीयति दक्षिक्रुद् धाम्नां ।
पतिः प्रतिसम्मतिः साम्नां सदारो धर्मसंधर्त्ता ॥४६
रतिवरः किंच रतिषेणाकपोतवरद्वयीमेनां ।
ररक्ष सुरक्षणोऽनेनास्तदापच्छापपरिहर्ता ॥४७
एकदा भ्रामरी दृष्ट्वाऽत्रागतौ तौ ऋषी हृष्ट्वा ।
भवस्मृतिमित्यतः सृष्ट्वा तयोस्समयो दुरितहर्ता ॥४८
पुरा जनु रागताप्रीतिः प्रबुद्धतया पुनः स्फीतिः ।
प्रसन्नतया तथाधीतिर्गणोऽयं सर्वशुभभर्ता ॥४६
ब्रह्मचर्यं समारब्धमितो भवतो भयो लब्धः ।
नृभवयोग्यो विधिर्दग्धः समन्ताच्छान्तिपरिकर्ता ॥५०
धर्मः खलु नर्महेतुरीष्यते जनानां
किरिरेव समस्तु हरिर्यस्य सन्निधानात् ।
प्राप्तोऽथ हिरण्यवर्मनाम रतिवरः सशर्म,
प्रभावती सा च धर्मकर्मसम्विधानात् ॥५१
तद्गतखगसानुमति ह्यादित्यगतिर्नृपतिः ।
शशिभायुवतिश्च सती तयोस्तुकूसवाना ॥५२

अपरोऽत्र नृपः समभाद्वायुरथः स्वयंप्रभा ।
राज्ञी चैतयोः प्रभा-व्रती जायमाना ॥५३
सम्भुक्तमनुष्यभवे या धिसतो सुभटरवे ! ।
पितराविनरौ तु नवे तीव्यते स्वमानात् ॥५४
दाम्पत्यमुपेत्यतरां विभवाधिगतिं प्रवरां ।
लब्धागुणततिः परा शान्तिसम्विताना ॥५५
एतावन्नकदेशिताविव गतौ सम्पादितुं सम्बलं,
जम्बूनामपुरे परेद्युरिह तु व्यापाद्य मानावलं ।
प्राग्जन्मप्रतिवैरिणा मृतिमितौ तत्रागते नौ तु ना,
प्रारब्धं ह्युपलभ्यते ननु जनैर्भो भो जवेनाधुना ॥५७
तव मम तव मम लपननियुक्त्याखिलमायुर्विगतं ।
हे मन आत्महितं न कृतं ॥ हा हे मन० ॥ स्थायी० ॥५८
नव मासा वासाय वसाभिर्मातृशकृतिसहितं ।
शैशवमपि शबलं किल खेलैः कृतोचितानुचितं ॥हे मन० ॥५६
तारुण्ये कारुण्येन विनोद्धृत्यमिहाचरितम् ।
मदमत्तस्य तत्राहर्निशमपि चित्तं युवतिरतं ॥ हे मन ॥६०
प्रौढिं गतस्य परिजनपुष्ट्यै शश्वत्कर्ममितं ।
एकैकया कपर्दिकया खलु वित्तं बहुनिचितं ॥ हे मन०॥६१
स्मृतमपि किं जिननाम कदाचिद्वाद्धं क्वेऽपि गतं ।
विकलतया हे शान्ते सम्प्रति संस्मर निजनिचितं ॥हे मन०॥६२
रट झटति मनो जिननाम, गतमायुर्नु दुर्गुणग्राम । स्थायी
आशापाशविलसतो द्रुतमधिकर्तुं धनधाम ।
निद्रापि क्षुद्रा भवद्भुवि नक्तं दिवमविराम ॥गतमायु० ॥६३

पुत्रमित्रपरिकरकृते बहुपरिश्रमतोऽतिललाम ।
रामानामारामरसतो हसतो वाश्रितकाम ॥गतमायु०॥६४
परहरणे भरणे स्वयं पुनरनुभवता दुर्नाम ।
अयशःपरिहरणाय दत्तं त्वया तु नैकविदाम ॥गतमायु०॥६५
बहु वलितं गलितं वयो रे सम्प्रति पलितं नाम ।
अलमालस्येनास्तु शठः ते स्वीकुरु शान्तिसुधाम ॥गतमायु० ॥
माया महतीयं मोहिनी जनतायां भो माया । स्थायी
भूरामाधामादिधरायां हृतसातङ्कजरायां ।
यतते परमर्मच्छिदिरायां करपत्रप्रसरायामिह जनताया भो माया
विषयरसाय दशा सकषाया शोच्या खलु विवशा या ।
गजवत्कपटकृताभ्रमुकायां प्रभवति बहुलापा या ॥इह०॥६८
मित्रकलत्रपुत्रविसरायां परिकरपरम्परायां ।
जरद्गवः कर्दमितधरायामिव सीदति विधुरायां ॥इह०॥६९
रता द्विरक्ताप्युनुरतिमायात्येषा जगत इच्छा या ।
ततो विरज्य पुमानमुकायां किमिव न शान्तिमथायात् ॥इह०॥
सौभाग्यशाली सुतरां यशस्वी वर्माथ शर्मार्थमभूत्तपस्वी ।
एवं जगत्तत्वमहो विचार्याप्यासीत्प्रभावस्त्यधुनामलार्या ॥७१
एतौ तपन्तौ समवाप्य विद्युच्चौरो रुषाप्लोषितवान् परेद्युः ।
भवान्तरारिः स्वरितौ च किन्तु महोजनास्सत्तपसा व्रजन्तु ॥७२
अथान्यदा स्वैरितया चरन्तौ संजग्मतुः सर्पसरोवरं तौ ।
प्रबुद्धय यत्रात्महिते विभूतिमेतां समेताविह शर्मसूतिं ॥७३

भूत्या जगच्चित्रमथाश्रयन्तं विभूतितः केवलमाह्वयन्तं ।
मुदं गतौ वीक्ष्य ततस्तपन्तं स्वमूर्तितः शान्तिमुदाहरन्तं ॥७४
दुरिङ्गितान्मैव समस्ति भीतितदन्यतः सैवमलं तु नीतिः ।
पराक्रमो यस्य तपस्यसीमश्चिरुच्चरन्तं स्वमतस्तु भीमं ॥७५
त्वत्ता च मत्ता पुनरत्र ताभ्यामागत्य हे देव सुदेवताभ्यां ।
स्वर्गान्निसर्गात्सुकृतैकवर्गादवाप्यते किन्न पुनीतसर्गा ॥७६

सौकान्ते भव देव एव च पुनः कापोतकेऽप्योतुकः,
हारिण्ये च भवे तवेश समभूद् विद्युच्चरः कौतुकः ।
स्वर्गीये त्वयि भीमनाममुनिराड् योऽसौ भवोच्छेदकः ।
सत्वानामिह संसृतौ परिणतेर्वै चित्र्यसंदेशकः ॥७८

सदा हे साधो प्रभवति असुमतिकर्म ॥स्थायी॥७९
कः खलु हर्ता को भुवि भर्ता कस्य विना निजकर्म ॥सदा हे०॥
भुक्तमिवोक्तममुष्य फलष्यति यदपि भवत्यपशर्म ॥सदा०॥८१
दुरितादुर्गतिमेति जनोऽसौ शुभतो विलसति नर्म ॥सदा०॥८२
भूरान्मन्यदि नैव रोचते सम्वरमुपसर वर्म । सदा०॥८३

दैवज्ञाऽन्यजनीषु च तासु संदेहोभ्युदियाय यदाशु ।
भर्तु रिष्टमुपलभ्य ससारं भावस्पष्टिमिति प्रचकार ॥८४
मिथोऽभिवर्द्धमानतः स्नेहादेवमुदारमुदाऽरमनेहाः ।
चन्द्रकतार्णवयोरिव याति तावदिहास्तिक्योप्यनुयाति ॥८५
स्वीयनभोगजनुष्यनुनीता विद्या अद्यागत्यविनीताः ।
सुकृतवशाः कृतिनोप्रणिपत्य दास्यमेतयोः स्वीकृतवत्यः ॥८६

वियोगदूनादयिता इवोररीकृतानृता तीर्थकृता महीभृता ।
सनाथतां प्राप्य गताः कृतार्थता-
मम्रुष्य वश्या अपि कामसिद्धये ॥८७

सत्कार्यसाधिकाश्चापि पथभ्रष्टा इवालिकाः ।
सुदृशा सुदृशादृत्य ता विद्याः सफलीकृताः ॥८८

हृदि प्रेमदुरासाद्य विस्मृताविव तावुभौ ।
ललाटलतिका चूडामणी ताः सुतरां शुभौ ॥८९

यदीयविद्या मुकुरायतेतरां परा पुराजन्मचरित्रवेदने ।
निवेद्य चोद्यं चतुरा तु राज्ञिका मनोविनोदं नयति स्म भूभुजा ॥९०

एतादृगिद्धविभवेऽपि भवेऽध्रुवत्वं
मत्वा पतुर्न च मनाङ् मनसा ममत्वं ।
धर्मे दृढावुत सुतत्वमवाप्य सत्वं
स्थाने मनःप्रणयनं हि भवेन्महत्वं ॥९१

हे नर निजशुद्धिमेव विद्धि सिद्धिहेतुं ।
परथाजलसम्बिलोडनास्तु सर्पिषे तु । स्थायी ॥९२

सात्यकिरतपुत्तरां दैवी सम्पश्च परा ।
लब्धा खलु मुग्धतरा चित्तदागने तु ॥ हे नर० ॥९३

मसकपूरणोऽपि यतिः समभूच्च तथाज्ञमतिः ।
उद्धतामथापगतिं भगवदागमे तु ॥ हे नर० ॥ ९४

तुषमाषवदज्ञविदोश्शिबघोषमुनिः सभिदो ।
न किमाप रहस्यमदो-भवसमुद्रसेतुं ॥ हे नर० ॥९५

भरतो जगदीशत्युतोऽखिलभूराज्येऽपि गतो ।
निजतत्त्वपथे निरतोऽन्ते शिवं त्वणे तु ॥ हे नर० ॥६६

दम्भातीतं कृत्वा मनोविशदभाविपथि वै पद्मासोमसुतौ सत्यारम्भं।
तिष्ठतः स्म सद्धर्मभावना सद्भावाधारादुदर्पकृतिताविभौ
भव्यौ वा ॥६७

(षडरचक्रबन्धः)

(एतस्य प्रत्यराग्राक्षरैःदम्पतिविभवा इति सर्गविषयसूची स्यात्)

स श्रीमान् सुषुवे चतुर्भुजवणिक् शान्ते कुमाराह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
विंशत्याग्निसमर्थनो जनमनोहारिण्यसौ निर्गतः,
दिव्यज्ञानविभूतिभर्तरि समुत्सर्गो निरुक्ते ततः ॥६८

इति श्री वाणीभूषण ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये त्रयोविंशतितमः सर्ग.



अथ चतुर्विंशतितमः सर्गः

अथात्र विद्या विशदानियोगिनीः क्रियाः प्रशस्तां सुरतोपयोगिनी।
प्रभावितुं भाविनमानसोऽभवन्नवा इवाशाद्य स वा भुवां धवः ॥१

अमूः समासाद्य चमूपतिः किलाधरमदेशे रमते स्म नित्यशः(?)।
सलीलमुच्चैस्तनपर्वतेष्वसौ यदृच्छया सज्जघनस्थलीष्वपि ॥२

जयोऽर्द्धयुक्ते कृतवान् गमं समं समन्तरीपद्वितये तयेहितः।
हितस्य वेत्ता प्रिययानया नतिर्नतिं सतीर्थेषु निजां समर्जयन् ॥३

विहाय सासौ विहरन्महाशयः शयद्वयं संकलयंश्च सावलः।
वलप्रभुश्चैत्यनिकेतनं प्रति प्रतिष्ठितो मेरुगिरौ विभाविहा ॥४

परीतपीताम्बरलुप्तदेहरुक् करद्वयी प्रापितचक्रकम्बुकः।
विराजते विष्णुरिवाजतेजसा गिरी रवीन्दू द्वयतः स उद्वहन् ॥५

पयोधराभोगसुयोगमञ्जुलां तटी समन्ताद् हरिचन्दनाश्रितां।
गिरीश्वरः सेवत एव सत्तमां निजार्द्धदेहानुमितां तु पार्वती ॥६

अथापि जम्बूपपदेऽन्तरीपके स एव सम्यक् खलु कर्णिकायते।
विदेहदेवोत्तरदेशपत्रकैः पयोधिमध्ये श्रिय आसनायते ॥७

चतुर्गुणीकृत्य जिनालयानसौ सदातनानन्दिषु महाजनाश्रितान्।
जिनश्रियः शोडषकारणानि वै बिभर्ति भव्यानि च तानि सर्वदा ॥८

यदन्तिके द्वौ द्विरदौ विमुञ्चतो जलोरुधारामपि नीलनैप्रधौ।
रवीन्दुबिम्बे द्वयतोऽब्जदर्पणे वहन्नसौ तल्लभते रमाकृतिं ॥९

तथैव सव्येतरनीलनैषधः सटायमानोडुपरम्परः परं ।
गिरीः सनीलाम्बरपीतवाससो विरञ्चिपुत्रस्य विभर्ति सच्छविं ॥१०
भियेव भव्यो भवभावितच्छलात्स्वयं महोद्यानचतुष्टयच्छलात् ।
सुवृत्त एताः परिवर्तिताकृती विभर्ति धर्मार्थनिकामनिर्वृतीः ॥११
सुकीर्तिगंगा जननाधिकारिणोऽथ देवतासम्भवनैकपूरकान् ।
ययौ समुद्यत्सवनाभिसातिकान् कुलाचलानेष कुलाचलानिव ॥१२
स्म राजते राजतपर्वतान् यजन् सुरासुराराध्यपदाननापदी ।
स्वनामवृत्यर्द्धतयातिवल्लभान् धरावधू हासविकासभासुरान् ॥१३
द्विदन्तदन्तान् स्म स वन्दते मुदा मुदारवक्षारगिरीनुताश्रयः ।
श्रयन्निपूर्वीधरणान्दयापरः परत्र तीर्थेऽपि च सन्दधद्विदं ॥१४
धराधवोऽवन्दत मानुषोत्तरं जगत्प्रसिद्धाखिलमानुषोत्तरः ।
महीभृतं सत्कटकानुकारिणं सधर्मभावादिव बल्लभं विदन् ॥१५
विहृत्य चान्या अपि तीर्थभूमिकाः सुसंकुचद्दुष्कृतकर्मकर्मिकाः ।
मनः पुनस्तस्य बभूव भूपतेर्महामतेः श्रीपुरुपर्वतार्चने ॥१६
प्रतिच्छविं हन्ति तिरोनिजाङ्गजां गजाधिपोऽद्रेः प्रतिदन्तिवित्तया ।
तया रिरिंसुः सुशिलासु सम्वशाद्राशाशयाभुग्नरदः स सम्प्रति ॥१७
भ्रमन्ति ये यत्परितो मदोत्कटाः कटाश्रयन्ते ननु चेतनात्मनां ।
मनांसि सेवार्थममुष्य पर्वतावतार उर्वीध्रपतेरिति भ्रमं ॥१८
निवारितातापतया घनाघना घना वनान्ते सुरतश्रमोद्भिदः ।
भिदस्तु किं वा निशि सङ्गतात्मनां मनागपि प्रेमवतामुताहि वा ॥१६
समस्ति शिल्पं यदयं स्वयम्भुवो भुवोर्द्धमर्द्धं नभसोऽपि संचयात् ।
चयाश्रयो भूरिदरोमयोऽसकौ सकौ पुनः कोऽस्य गिरेस्तु यः समः॥

निजीयनानामणिमण्डलांशुभिर्दिवौकसामीशधनुःश्रियं प्रियां ।
समातनोति प्रभुरेष भूभृतां स्वयं समापन्नपयोदमण्डले ॥२१
क्वचिन्महानीलमणिप्रभाभरे जलाकुलाम्भोदसमूहशङ्कया ।
अकाण्ड एवाथ शिखण्डिमण्डलस्तनोति नृत्यं मृदुमोदमेदुरः ॥२२
स्फुरन्ति नित्यं सुमणीमरीचयोऽमरीचयोऽपत्रपतां श्रयत्यतः ।
निजः प्रसङ्गेऽपि निजासुपर्वणां सुपर्वणां यस्य गुहासु निष्ठितः ॥२३
इतस्ततः सचमरीचयच्छलात्सुचारुनीहारविहारभासुरम् ।
परिभ्रमन्मूर्तिमदुत्तमं यशो बिभर्ति नित्यं धरणीधरेश्वरः ॥२४
सुनिर्मलेऽमुष्य तटे क्वचित्क्वचिन्नपत्य गुञ्जाभृशमुत्पतन्ति याः ।१
विभान्ति भव्यस्य किलान्तरात्मनि समुद्गता रागरुषोरिवाशकाः२५
दरीमुखात्सम्प्रति वार्दरीमुखातरङ्गिणीगैरिकजातरङ्गिणी ।
समुद्धतेः पत्रिण आसमुद्गतेः चर्ति गतेवाशनिनास्य पत्ततिः ॥२६
परिस्फुरच्छ्यामलताभिरन्वितः सुवर्णवर्णोऽपि च पाटलाश्रितः ।
सुलोहितः सद्धवलोऽपि पर्वतः परिस्थितिर्मेचकितास्य सर्वतः ॥२७
दिनात्यये प्रवृषि वारि वर्षति सति स्वसा नावनुपाति भव्रजं ।
व्रजन्ति विद्याधरकन्यकाः पुनः पुनश्च यस्मिन्करकेति नंदिना ॥२८
रुषाङ्कितह्लादिनिकोऽपि सोप्यसौ शिरस्स्त्रामुष्यामृतपूरमर्पयन् ।
पुनः सदोभ्रोत्तमतूलकल्पनो बिभर्ति कारुण्यक्रमेव देवराट् ॥२६
स्मरद्विडद्रिः खलु जैतुमुत्तटस्तटान्तसंलग्नवलाहकावलिः ।
वलिद्विषः पत्तनमात्तपत्तिः चर्ति निजां तेन कृतामनुस्मरन् ॥३०
गङ्गाम्बुशुम्भत्पुरुपर्वतन्तु तं क्षीरोदपूरोदरचिम्बमन्थरं ।
मन्ये सुरेभ्यः खलु तत्तदर्पणा पुण्येन कृत्वा यशसा सितीकृतं ॥३

सुरापगापूरमदूरवर्ति यत्समन्ततः कुण्डलमेव मण्डना ।
गिरिं निरीक्ष्यापि सुधाकरोपमं रसोदयाकांक्षि मनो मनस्विनां॥३२
जनैरविच्छिन्नतयापकर्षणात्स्वसारभारस्य निरस्यदङ्कतां ।
विलुप्तशून्यां लघुरीतिलक्षणं विशेषयत्येणगिरिर्दरिद्रतां ॥३३
तमप्यधिष्ठानमहीधरं पुरोः पुरो गतं योऽथ यशोऽङ्कमस्पृशन् ।
स्पृशत्सुरावासममन्दमन्दं ददर्श पद्मापतिरुत्तमोत्तमं ॥३४
निभाल्य शीतांशुमिवेममुज्वलं वलप्रभोराविरभूद्गिरस्तदा ।
तदाननात्संव्रजतोऽधुनामुदमुदन्वतः श्रीमत उर्मिसन्निभाः ॥३५
विभर्ति रीतिं महती मृगेक्षणे क्षणे नियुक्तो बहुलोहगोचरः ।
चरन्नितोऽष्टपदसम्पदं धरोधरोदये राजत भालसम्भिभः ॥३६
असौ हिमारातिविवस्वतो गतिं हिमालयो वारयितुं समुद्धरन् ।
उपर्युपर्य्यम्बुमुचो दृषद्धृचस्समुन्नतोऽभ्युन्नयतीति सुन्दरि ॥३७
परिस्फुरच्छ्रीमणिमेखलाश्चिता विभर्ति या सम्प्रति सालकाननं ।
असौ महाभोगनियोगिनीगिरेस्तटीतुलां ते प्रकटीकरोति भोः ॥३८
महत्त्वमासाद्य महीभृतां च ये विराजते भूमिभृतामधीश्वरः ।
हिमच्छला प्रापितमूर्तिनाप्रिये निषेव्यतेऽसौ यशसा हि नित्यशः ३९
अपामपायादुधवलावलाहकावलिः सुखात्सम्वृतिका विलोक्यते ।
सुरैरमुष्मिन्विवृतेऽपि पर्वते स्वयं सयोषैः सुरताभिसन्धिभिः ॥४०
मणीनिहान्तः सहस्रानि गोपयन् शिलातलानि प्रकृतानि दर्शयन्
दरीभृटभ्यागततनुः परस्परं सुकेशिकूटस्थतया विराजते ॥४१
झरैरविच्छिन्नतिपातशालिभिर्महीभृतामीशतयायमीष्यते ।
परिस्फुरद्भिर्विशदैर्ध्वजांशुकैरिवातिमात्रोन्नतिमञ्चितम्विनि ॥४२

समाप शस्त्रेण सता शतक्रतोरयश्च युग्धे महती हतिं पुरा ।
व्रणानि नानोपहतानि जन्तुभिर्विभान्ति भो गह्वरनामतोऽधुना ४३
पविच्छविं देवपतौ प्रदर्शयन्नयं पुनः स्विन्नतनुर्भयाढ्यतां ।
सगैरिकाम्भोभरदम्भतो गुहामुखाद्विनिर्यद्रसनो व्यनक्ति भोः ॥४४
सुकेशि उन्मुद्रय मुद्रणां गिरां सुधाकरास्त्वद्वदनादनाविलां ।
इहेङ्गुदीचागुरुगौरवास्पदां नियच्छपिच्छां मम तृप्तिकारणं ॥४५
प्रसारयामास समात्तसम्भ्रमप्रिये हियेदत्तसुविभ्रमाक्रमात् ।
सती सतीर्था मधुनोऽथ भारतीरतीति हेतुं श्रियमेव बिभ्रती ॥४६
गिरीश्वरः सोमसमृद्धभालभृत् त्वमस्ति सेयं गिरिजापि जायते ।
सुरापगास्पर्द्धनकारिणी गुणैर्मदुक्तिमुक्तावलिका तव प्रिया ॥४७
किमु प्रजादुष्कृतभस्मसञ्चयः किमादिसूनोः सुकृतोच्चयोदयः ।
भवद्यशस्तोमसमन्वयो ह्ययं घनायितः किन्नु विधोः सुधोदयः॥४८
अनर्गलौद्धत्यवते महीपते कुतः कुजातीन् शतशः पलाशिनः ।
स्वपल्लवैः स पथसम्विरोधिनोऽधिकुर्वते भूमिभृते न ते भयः ॥४९
अमुष्य भूभृत्वविधायि चामरानुपाततुल्यः शुचिनीरनिर्भरः ।
किमस्ति नः स्वागतसम्विनोदिनो
जिनोक्तिभृद्धासविकाश एष भोः ॥५०
अधस्तनाऽरम्भनिरुद्धभूतलः प्रयाति कूटैः पुरुहूतपत्तनम् ।
कुतः सरन्ध्रोऽवनिभृत्सुमानितोऽथवा पुरोः पादसमन्वयो ह्यसौ ।५१
बृहन्नितम्बातिलकाङ्कभृच्छिरानिरन्तरोदारपयोधरातरां ।
सविभ्रमापाङ्गतयान्विताश्रिया
विभाति भित्तिः सुभगास्य भूभृतः ॥५२

निशास्वसौ संज्वलदोषधिव्रजैर्ज्वलन्तमात्मानमनल्पकल्पकृत् ।
शलोपलेभ्यो विगलज्जलप्लवैरनल्पशस्तावदिहाभिसिश्चति ॥५३
गवाक्षपूर्णो धृतमत्तवारणः समुर्जनिश्रेणिरुपात्ततोरणः ।
समुद्धनिर्पूहधरो महीधरः प्रियप्रतीतोऽस्तु यथास्मदालयः ॥५४
विपल्लवानामिह सम्भवोऽपि न विपल्लवानामुत शाखिनामपि ।
सदा रमन्तेऽस्य विहाय नन्दनं सदा रमन्ते रुचितस्ततः सुरा ॥५५
गुणाकरांगूदपयोधरां नराधिराट् गिरां नव्यवधूमिवादरात् ।
ह्रियेव संक्षिप्तपदां स्वयं तदानुभूय भूयः प्रतिभूरभून्मुदां ॥५६
शिलोच्चयं साम्प्रतमप्रमत्तवानुरोहसच्छुल्कमिवात्मचिन्तनं ।
यती विशुद्धये व महागुणाश्रयः समन्वितः सोऽथ नतभ्रु वा जयः५७
ददर्श देवालयमुत्तमं तदा तदाचरन्सत्वरमुद्भवन्महाः ।
महामना मूर्तिमदेव सत्कृतं कृतं परैः श्रीधरभूप्रमोददः ॥५८
कलं वनेऽसावविलम्बनेन तद्गिरेर्बलं देवलमाप पापहृत् ।
धृतावधानः सुनिधानवद्बुधः सदायकं वाञ्छितदायकं तदा ॥५९
जयः प्रचक्राम जिनेश्वरालयं नयप्रधानः सुदृशा समन्वितः ।
महाप्रभावच्छविरुन्नतावधिं यथा सुमेरुं प्रभयान्वितो रविः ॥६०
अथेममभ्यङ्गरुचिः पुनः शुचिः पयोधरोदारघटावभाज सा ।
विधूपमानार्हमुखासुखाशिका समाप्लवश्रीर्वरवर्णराशिका ॥६१
तदास्य संशोधनसाधनाम्बुरं छविच्छलेनावतरन्त्यदः करे ।
पचेलिमां द्यौर्निजगाद सत्कृतिममुष्य हृतापि परैरनागतिः ॥६२
असौ समङ्गेष्वथ काशिभूपभू-परी परीरम्भपरोऽधिराट् चिरात् ।
यतः किलाप्तः परिरम्भितोऽभितः समार्द्रया भालमुखेषु मृत्स्नया ६३

अथामले वारिविलासिपल्वले विचारयंस्तद्व्यपदेशसंहतिं ।
निरञ्जनैः स्नातकमन्त्रसंस्कृतैस्तनुं स्म तोयैः स्नपयत्यसौ निजां६४

अनेकधातानितसंगुणोक्तिभृत् पवित्रितान्तःकरणप्रसक्तिमत् ।
विशालमालम्बितवान् दुकूलकं सुनिर्मलं जैनवचोऽनुकूलकं ॥६५

चिरन्तनाभ्यासनिबन्धनेरितं बहिर्न भूतेषु भवेत्प्रसङ्गितम् ।
निजीयमेवं किल भावशुद्धिमान् हृदुत्तरीयेण बबन्ध बुद्धिमान्॥६६

महामना मन्दपदप्रचारणां समुल्ललंघार्हतगेहपद्धतिं ।
विलोकयन् विच्युतरत्नवद्भुवमनन्यवृत्त्या प्रकृतं विचारयन् ॥६७

पुनश्च विघ्नप्रतिरोधि निःसहीति मन्त्रसूत्रं रुचितः समुच्चरन् ।
निधानधाम्नो हि जिनालयस्य स
कवाटमुद्घाटयति स्म धीरराट् ॥६८

निपूतपादाभिगमाभिलाषुको निपूतपादः स्वयमप्यथासकौ ।
जयेति वाचा कथितः श्रिया युतं
जयेति वाचा गृहमाविशत्तरां ॥६९

समुन्नतामातिलघुप्रभोः पुरो द्वयं मिलित्वा शपयोश्च साम्प्रतं ।
शिरः स्वयं भक्तितुलाधिरोपितं गुरुत्वतश्चावननाम भूपतेः ॥७०

लुठन्भुवीह प्रणनाम दण्डवजिनं यथासौ शरणागतः स्मरः ।
तदंघ्रियुग्मे कुसुमानि साम्प्रतं
निजीय शस्त्राणि समर्प्य सादरः ॥७१

निजोत्तमाङ्गत्वमुवाच तच्छिरोऽधुनोन्नतं प्राप्य पदद्वयं गुरोः ।
तनुस्तु भूमेरुपगम्य सङ्गमं समाप सख्यादिव कण्टकोद्गमं ॥७२

त्रिधा परिक्रम्य जयः क्रमादयं महामनास्तस्य जगत्पतेः पुरः ।
तदागतानागतवर्त्तमानकान् परिभ्रमान् सूचयति स्म चात्मनः॥७३
समापतापत्रयभिच्छवेर्भवे जिनेन्द्रचन्द्रस्य मुदं सुदर्शने ।
निधेरिवाराज्जनुषाप्यकिञ्चनसकिञ्चनर्मप्रतिकर्मवित्तदा ॥७४
क्रमोऽश्चनैवेद्यसुराजिराजितैः पुमानमत्रैः पुरतः प्रसारितैः ।
बबन्ध तां स्वर्गमनाय पद्धतिमिवेशसेवा स मितात्मसम्मतिः ॥७५
गुरोरिहाग्रे खलु लज्जितेव भू बभूव गुप्तावथवा समग्रजैः ।
धवं समालोक्य निरन्तरागतसदर्चनावर्तनवर्तनव्रजैः ॥७६
जलाञ्जलिः स्वस्य किलाघकर्मणे समर्पितः श्रीपतिपादतर्पणे ।
मनस्विनासौ शलिलार्पणच्छला-

धृतः समन्तात्कलिलावनं बलात् ॥७७
समर्पितो वारिजरागभाजने जनेन सम्यग्घरिचन्दनद्रवः ।
जिनेशमादर्शमवेत्य सङ्गतः किलासकौ भास्वति चन्द्रमण्डलं ।७८
समर्पणां प्राप्य मनस्विना परां यदक्षताः श्रीशपदाग्रतो धरां ।
विभूषयन्तोऽनुभवन्ति ते तरां शुभस्य च स्माङ्कुरतां महत्तरां ८६
समर्पितं तेन सुमं सुमञ्जुलं जिनेशपादाम्बुजयोरभात्तरां ।
मनस्तदीयं परिचेतुमागतं किलात्मसज्जातिकथोः प्रसन्नयोः ॥८०
जिनेश्वराग्रे जवलेविकामसौ न तावदावर्त्तवती जयाह्वयः ।
समुत्ससर्जाशु विनेयताश्रितो महामनाः संसृतिमेव केवलां ॥८१
व्यमुञ्चदेकार्थितयैकतां गतौ स रागरोषाविव दीपदम्भतः ।
निजक्रियासम्भ्रमिदर्शिनौ पुनर्जवाज्जयः स्वस्वकवर्णलक्षणौ ॥८२

जिनेश्वराग्रे बहुशस्यवृत्ति नाथ तेन कृष्णागुरुणा महात्मना ।
आमोदिना संप्रति कृष्णवर्त्मनि
जवेन नीलाम्बरता प्रकाशिता ॥८३
सुनालिकेरं निजमस्तकाकृति समीरयामास पुनः समीरयात् ।
स्वयंभुवः सन्दयिता स्वयम्भुवः पदेषु सन्देशपदेषु च श्रियः ॥८४
पदारविन्देषु पदारविन्दको मनोहराष्टाङ्गमयीमयं जयः ।
तनुं स्वकीयामिव चातनूत्तमां समर्पयामास समग्रतो बलिं ॥८५
सुदेवमन्त्राजपतः सुरीतितः शये समापुर्गुणिनोवतारणां ।
सितोपला चावलि दम्भसम्भवा विशुद्धबीजस्फुटशुद्धवर्णकाः ।८६
तदागसां संहरणाभिलाषिणः पयोजलक्ष्मीमुषिपाणिपल्लवे ।
षडंघ्रिमाला ह्यनुषङ्गजन्मिनां रराज रुद्राक्षपरम्परातरा ॥८७
बभाज भाजन्मभुवं तु बन्धुरं स्वरिन्दिराकृषिकृतः करं वरं [?] ।
सुशिक्षितुं लोहितिमानमुश्चकैः प्रवालवालावलिरेनसां रिपोः॥८८
प्रपश्चशाखौ ग्रहणौ जपस्य तौ गुणेन बद्धौ सहसां बभूवतुः ।
तदैव भक्तेम्तु भयाकुलाथ गीरपादयादाशु महात्मनः पुरः ॥८६
तत्याज शक्रः शकनाभिमानं पुनीत यावत्तव कीर्तिगानं ।
स्वल्पेन बोधेन तथापि नामिन्वातायनेनेव निरूपयामि ॥६०
तवावतारो हृदि मे प्रशस्यः क्षुद्रेऽपि वाऽऽदर्शं इव द्विपस्य ।
गुणांस्तु सूक्ष्मानपि सालसंज्ञासूची न गृह्णाति कुतो रसज्ञा॥६१
शुद्धात्मसम्वित्तिरिहाभिरामा तवाथ मे रागरुषोः सदाऽऽमाः ।
नामासकौ सम्प्रति वाक्प्रवृत्तिरेकस्य लब्धिर्न युगस्य दक्षिः ॥६२

कुदेवतानामधुनाधिद वा दत्तार्थभूताधिचिकित्सकत्वात् ।
इन्द्रादिभिः स्तुत्यतया त्रिधा त्वां देवाधिदेवं मनुजा मनन्ति ९३
मोहस्तु सोहस्त्वयि वीतरागे रागश्च सागस्त्वमगाज्जिनेन्द्र ।
कामो निकामोऽथ वयं वदामस्त्वयानुविद्धाकमलाऽमलाऽभूत् ९४
निजं जिनं त्वां प्रवदामि भक्त्या
स्वार्थी परः सम्भविताऽस्ति शक्त्या ।
विलोमतास्मिन्नखरप्रयुक्त्या त्वदादरीयोऽनुगतः सभुक्त्या ॥९५
नमत्किरीटोचितरत्नरोचिः सम्मिश्रणं तेऽध्रिभुवीन्दुशोचिः ।
समागमे स्वस्तिकमेव वस्तु समस्तु पुंसां सुकृतश्रियस्तु ॥९६
भास्वत्प्ररोहन्त्यपि मानसाब्धावनेकशो ये कमलप्रबन्धाः ।
त्वद्दर्शनेनाशु पुनः स्फुटन्ति आमोदवादा स्वयमुद्भवन्ति ॥९७
निरीहमाराध्य सुसिद्धसाध्यस्त्वामस्तु भक्तो विगुणं विराध्य ।
चिन्तामणिं प्राप्य नरः कृतार्थः किमेष न स्ताद्विदिताखिलार्थः ॥
त्वदीयपादाम्बुजराजभाजां भुवां भवन्तीह महःसमाजाः ।
सुमानि सम्प्राप्य सुगन्धिमन्ति सौगन्ध्यमारान्नृशयं नयन्ति ॥९९
नरोत्तम. प्रार्थयितेति नाथमनाकुलोऽसावनवद्यगाथः ।
स्वर्गाश्रियोऽपांगशरौघलक्षः संसिद्धिसंदेशपुनीतपक्षः ॥१००
जिनेशरूपं सुतरामदुष्टमापीय पीयूषमिवाभिपुष्टः ।
पुनश्च निर्गन्तुमशक्नुवानस्ततो बभूवोचितसम्विधानः ॥१०१
सूक्ष्मत्वतो लुप्तमवेत्य चेतः श्रीपादयोर्निभ्रजताथवेतः ।
अत्रापि तत्रत्य रजस्तु तेन संशोधनाधीनगुणस्तु तेन ॥१०२

अनुष्ठितं यद्यदधीश्वरेण तत्तत्कृतं श्रीसुदृशाऽऽदरेण ।
येनाध्वना गच्छति चित्रभानुस्तेनैव तारातितिरेति साऽनु ॥१०३

वेला बभूव व्यवधानहेतुः सुलोचना तद्भवयोर्द्वये तु ।
सन्ध्यानिशावासरयोरिवाथानुगच्छतोर्निम्ननिवद्धगाथा ॥१०४

सौधर्मसंसदि निशम्य तयोः प्रशसां शीले परीक्षितुमुपात्तमनास्त्विदेव
भार्यां निजस्य चतुरामिह काञ्चनाख्यां
स्याज्ञापयन्यपि रविप्रभनामदेवः ॥१०५

सदम्भाऽऽगत्य सारम्भा जयभूजानि सन्निधौ ।
उवाच वाचमित्येवं सविलासदयोदयाम् ॥१०६

मम वृत्तकुसुममालाऽऽमोदमयी भाग्यशालिना त्वकया ।
हृदयेऽवधारणीया नररत्नकयत्नतो लभ्या ॥१०७

विजयार्द्धोत्तरभागे रत्नपुरेन्द्रो मनोहरे विषये ।
पिङ्गलगान्धाराख्यः सुलक्षणा सुप्रभा महिषी ॥१०८

विद्युत्प्रभा सुपुत्री ह्यन्वितनामानयोर्नमेर्भार्या ।
त्वामेकदा सुमेरोर्विहरंतं नन्दने वनेऽपश्यत् ॥१०९

वनं मनोज्ञं बहुकल्पवृक्षं हरिप्रियानीत इहास्ति शक्रः ।
प्रसन्न ऐरावत एष किं वा कुवेरको नन्दनवत्तचो यत् ।.११०

लतानि कुञ्जेषु घनप्रसूनपदेन पुष्पायुधलुब्धकेन ।
प्रसारिता सम्प्रति संग्रहीतुं पाशा हि पान्थे क्षणपक्षिमालां ॥१११

परिभ्रमत्षट्पदराजिकायामन्तर्गतं मौक्तिकपुष्पमद्य ।
मौर्व्यामनङ्गस्य नियुक्तबाणाग्रारोपितं पुङ्खमिवावभाति ॥११२

समुत्सुकानामथवा शुकानां पङ्क्तिः पतन्ती परमप्रसन्ना ।
मनोहरत्येव हरिन्मणीनां विनिर्मिता तोरणसन्ततिर्वा ॥११३
पुरापुरारेरुपरि प्रकोपान्मुक्तेषु कामस्य हि मार्गणेषु ।
इदं परागोपचयापदेशात्तदङ्गभस्मैव समस्ति लग्नं ॥११४
मुहुर्मरुद्धङ्गिभिरङ्ग यत्र अभ्यद्रजाः श्रीस्थलपद्म आस्ते ।
समुद्वमत्सद्रुतमुकणान्स शाणोपलः स्मारशिलीमुखानां ॥११५
चाम्पेयपुष्पं परमप्रसन्नमन्तर्निलीनालिकुलं विभाति ।
आरोपितं साशुगसञ्चयं च तूणीरमेतद्रतिनायकस्य ॥११६
सुसज्जगुञ्जा परितो भ्रमन्ती रजस्तटे षट्पदधोरिणीति ।
अयोमयीयं खलु शृङ्खला स्यादिध्माधिपस्याध्वगबन्धनाय ॥११७
प्रान्तभ्रमद्भृङ्गनिनाददम्भादतिप्रसन्ना खलु पाटला तु ।
जगज्जिगीषोर्मदनामरस्य निरन्तरं कूजति का हलेव ॥११८
दृष्टा मुहुर्या कुसुमप्रदेशे भृङ्गैः सदङ्गैरथ पल्लवानाम् ।
कुलैरिदानीमुपलालितापि विभान्ति सद्यो गणिकाः प्रसन्नाः ॥११९
गतो भवान् दृक्पथमात्रमित्थं मनोभवारामं इवाभिरामे ।
त्वत्सन्निधौ विक्रिययातांगपत्नी समापाशु गुणेश तस्याः[?]॥१२०
यतः प्रभृत्येव भवानवश्यं सुदर्शनीयोऽपि बभावदृश्यः ।
नितम्बिनीनां मणिकाभिजाताहो साम्प्रतं सा कणिकेव जाता ॥१२१
यावन्न दीनं दिनमुत्ततार कथं कथं साप्यबलाप्युदार ।
भयङ्करा प्रत्युत सा विशेषाद्धनी पुनः सारजनिश्च केषां ॥१२२
अन्तोम्बुजस्थोप्यखिलप्रदेशव्यपेक्षणीयः खलु विष्णुवेषः ।
अर्द्धावशिष्टा भवता महेशाव्हो त्वां त्रिमूर्तिं निजगाद चैषा ॥१२३

विचाश्रितं चित्तमभूच्च तस्य भवत्समीपेऽथ पुनः कुतस्यात् ।
अर्थक्रियाकारि शरीरमेतदकारणं कार्यमिवार्द्रचेतः ॥१२४
आह्वानने तां भवतः प्रवृत्तां त्यत्वा क्षुधाद्या अपि ता निवृत्ताः ।
संख्यस्तदीया नपुस्त्वदीया दृक् तद् हृदा जीवनदायिनीया ॥१२५
अद्यायमास्ते समयः सहायः येनाभ्युपात्तः समरूपकायः ।
मया शरोपाधिकया स्मरस्य त्वं निर्जरप्राय इह प्रशस्य ॥१२६
स्वमिन्दकान्तत्वमहो जगाद मुखं मृगाक्ष्याः प्रकृतप्रसाद ।
विधूदये सुश्रुवदश्रुकायः स्वतोस्रुतो येन पयोनिकायः ॥१२७
निशो निवृत्तेयमुषो गता वा रुषो विधिं पूर्वदिशोनुभावात् ।
तत्राथ च त्रासमवाप शापसम्बेशिनस्ते सुतरामपाप ॥१२८
इत्येवमेषा ललनाविशेषात्प्रवर्तते तत्स्मरणावशेषा ।
स्माहारमप्युज्झति नैति हारं गतावतारान्मदनाधिकारं ॥१२९
स्परोहितः पीत इतः स यावन्नं कान्तकस्तिष्ठति शुद्धवर्णः ।
श्यामापि सा रक्ततया लसन्ती चित्रानुरूपा धवला बभूव ॥१३०
पुनः सखीनामनुशासनेन चिरेण चाशासहिता सती सा ।
विराजिता धामनि धावमूर्तेर्मू तिंन्तु चित्ते बत चिन्तयन्ती ॥१३१
भाग्यानुयोगात्सहसाभ्युपात्तस्तयाथ चिन्तामणिरित्युदात्तः ।
समर्थयत्वर्थमथानवद्या प्रवर्तते चेदिह भावविद्या ॥१३२
निकागुणेनास्मि भवानिदानीमेकायते तावदथात्ममानिन् ।
समाश्रयान् साधुदशत्वमस्तु नो चेत्पुनः शून्यतयास्म्यवस्तु॥१३३
यदभून्मदभूतिरात्मनस्तद्भूस्तिष्ठतु सोधुना तु नः ।
भवतां भवतादसौ रुचिस्त्विद् हिंसावशवर्तिनां शुचिः ॥१३४

निजः परो वेति न वेत्ति सत्तम उदेत्युतस्वित्कतमेषु हृत्तमः ।
त्वमेव विश्वं वदतेऽधुना नमः समस्तु तस्मै समदर्शिने मम ॥१३५
तनुरेषा परिशेषा सदाऽवदाता न धीमतां किमुचित् ।
तारुण्ये कारुण्यं विधेहि सुविधे निधेहि रुचिं ॥१३६
इत्यादि वेदवाक्यैरमुकमनोऽमरवरप्रसादाय ।
काममखं सा विदधे निजशक्त्याऽङ्गानुयोगमयं ॥१३७
प्रखरैः शरैरिवामुं भदन्ती सुन्दरी दृगन्तैः सा ।
स्मरशासनवत्सघनं जघनं समदर्शयत्तावत् ॥१३८
स्मैषाभ्यञ्चति निम्नगा प्रथमतः फेनायमानं स्मितं,
पश्चान्निर्मलनीरनिर्झरनिभेऽस्याः स्वंसमानेंऽशुके ।
सद्योऽप्यभ्युदियाय कामिरमणद्वीपप्रतीपः स्तनः,
व्यक्तोऽतो बलिबद्धनाभिकुहरः कल्लोलितावर्तवत् ॥१३९
नाङ्कं टङ्कमिवाशनिप्रतिकृतौ लेभे वचस्तद् हृदि,
हावादीह मनाङ् न तत्परिणतिं प्रापोषरे बीजवत् ।
तस्याः किञ्च मनोरथोन्नतगिरिं भेत्तुं वचोवज्रराट्,
श्रीस्तम्बेरमपत्तनेश्वरमुखादेवं पुनर्निर्ययौ ॥१४०
रसहितं नवनीतमगान्मनोवचनचक्रमभूत्कडतक्रवत् ।
किलकिलाटवदङ्गगतन्तु ते किमु न पश्यसि गोरससारिके ॥१४१
अहो धुरि कुलस्त्रीणां प्राप्तयापि पराप्तया ।
अनङ्गरूपमङ्गादस्त्वयाऽभापि सुभाषिणि ॥१४२
शुचेस्तव मुखाम्भोजान्तिरेति किमिदं वचः ।
दूरे तिष्ठति हे देवि रेफगर्भादतः सुधीः ॥१४३

विरम विरमतः सुरमेऽमुकतः सुकतत्वमत्र न हि जातु ।
हा तुच्छविषयसुखतः क्रीणात्युरुदुर्गतेदु ःखम् ॥१४४
रेफमञ्जुलयोः साम्यभृतामाज्ञापरत्वतः ।
नररामां सदा देवि नररामामुपैमि भोः ॥१४५
औदासिन्यवचोऽवचाय कुणपीप्राया भवन्तीति सा–
दायामु ं परिगत्वरी तु सहसा सचक्षुषा भर्त्सिता ।
त्यक्त्वाऽगात्तमहो सुशीलमहिमार्ता येन संजायते,
सर्पो हारतयाऽनलो जलतयाऽसिः पुष्पमालातया ॥१४६
निष्कामितामिति समीक्ष्य सुपर्वणाथ
हर्षप्रफुल्लवदनेन सजानिनाऽऽरात् ।
आगत्य तेन समपूजि स जानिरेष
यो ब्रह्मणापि महितः स न मह्यते कैः ॥ १४७
गच्छन्नै सह तीर्थदेशमनयासौ हंसगत्याऽखिलं,
जन्मानर्घमथ व्रजन्नमलहृत्प्रालब्धबोधोऽवनेः ।
पुण्यात्प्रापितविद्य एवमनिशं प्राणप्रियः पूजितु ं,
तुष्ट्या प्रागमयज्जयः सुपुरुषो रक्त्या ह्यनेहोऽपि तु ॥१४८
स श्रीमान् सुपुत्रे चतुस्रु जवणिक् शान्ते कुमाराह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।

काव्ये तद्गदिते निरेति च चतुर्विंशः पुनीताशयः,
श्रीवीरोदयसोदरेऽतिललिते सर्गोऽरिदुर्गेऽप्ययं ॥१४६

(एतचक्रबन्धस्याग्राक्षरैः षष्ठाक्षरैश्च गजपूरपतेस्तीर्थ-
विहरणमिति निर्गच्छति)

इति श्री वाणीभूषण ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये चतुर्विंशतितम सर्ग.



अथ पञ्चविंशतितमः सर्गः

बहुसुमत्यवरोधिविधेः चयप्रशमतः शमतः स्विदयं जयः ।
झगिति निर्विविदेऽथ भवच्छिदे क्वचिदचित्तरुचिर्निजसम्बिदे ॥१

अनुभवानिलजालसमीरिते हृदयसारगभीरसरस्वति ।
जनिमवापमवापदुदीरिणः स्फुटविचारतरङ्गततिः सती ॥२

क्षणरुचिः कमला प्रतिदिङ्मुखं सुरधनुश्चलमैन्द्रियकं सुखं ।
विभव एष च सुप्तविकल्पवदहह दृश्यमदोऽखिलमध्रुवं ॥३

युवतयो मृगमञ्जुललोचनाः कृतरवाद्विरदामदरोचनाः ।
लहरिवत्तरलास्तुरगाश्चमू समुदये किमु दृक् झपनेऽप्यमूः ॥४

लवणिमाब्जदलस्थजलस्थितिस्तरुणिमायमुषोरुणिमन्विति ।
भजति जीवनमञ्जलिजीवनमिह दधात्ववधिं न सुधीजनः ॥५

न भविनो दिवसा इव शाश्वतामिति रहर्निशयोरिह सम्मताः ।
स्फुटमनाथ इतो नरनाथतां प्रमुदितोरुदितं पुनरीक्षयतां ॥६

समपहाय जवादहमिन्द्रतां पणपणत्वमुरीक्रियतेऽर्वता ।
व्रजति किञ्चिदवाप्य मुदं पुनस्तदपि पर्ययबुद्धिरयं जनः ॥७

भृतिकवत्खलु षष्ठसतों (दं) शतः समनुपालयता जनतां ततः ।
नृपतिरित्युररीक्रियते जिन धिगपि धिग्जडतामिति देहिनः ॥८

त्रिभववानहमित्यनिसाहसी सुभग किं तनुषे ननु सेमुषीं ।
कुटकुटीघटमैतु नु यो मृतः स वशिको वशिकोऽथ भृशं भृतः ॥९

किमु भवेद्विपदामपि सम्पदां भुवि शुचापि रुचापि जगत्सदां ।
करतलाहतकन्दुकवत्पुनः पतनमुत्पतनं च समस्तु नः ॥१०
ननु जनो भुवि सम्पदुपार्जने प्रयततां विपदामुत वर्जने ।
मिलति लाङ्गलिकाफलवारिवद् व्रजति यद् गजभुक्तकपित्थवत्॥११
तृणवदुत् पणमेव पुरः पुरः समुपदर्श्य च मादृशयं नरः ।
छगलवद्विपदेकविकृष्णया सपदि दूरमनायि च तृष्णया ॥१२
तरुरुचावसनं शयनं तथावनितले खलु याचनयाशनं ।
परिकरं तनुमात्रमितोऽप्यहो भवितुमिच्छति चक्रपतिर्जनः ॥१३
जडजनो विमनाकितवासवे नरमते रमते द्रविणोत्सवे ।
कनकनाम समेत्य समं द्वयोर्न कियदन्तरमेति बुधोऽनयोः ॥१४
मन इयान् प्रतिहारक एतकप्रतिहृतेर्नटताद्वशगः सकः ।
भुवि जनाभ्यनुरञ्जनतत्परः भवति वानर इत्यथवा नरः ॥१५
वदसि शाकलवैरपि पूर्यते तदुदरं दुरितं ननु दुर्मते ।
किमु बदान्यधिकाधिकलालसमहह हृद्भरितं च सहस्रशः ॥१६
अपि तु तृप्तिमियाच्छुचिरिन्धनैरथ शतैः सरितामपि सागरः ।
न पुनरेष पुमान् विषयाशयैरिति समञ्चति मोहमहागरः ॥१७
जगदिदं सकलं हरिणाङ्गना खुरमितेन हितेन हि चर्मणा ।
सपदि वञ्चितमस्ति विगर्हिणा न हि परन्तु निमित्तमितोऽङ्गिनां
मृदुतनौ तरसातरसीति मानवयवावयवीति परिश्रमात् ।
बत सुखायत एव जनोऽहह विलसितं तदिदं तमसो महत् ॥१८
पिशितशोणितसान्द्रमिह स्त्रियावपुरहोत्तुलितं सुखसत्क्रिया ।
भवति नस्तददन्ति निशम्यतां पशव एवमिहास्ति न रम्यता ॥२०

अपि तु पूतिपरं बनितात्रणं यदसृगाभिषकीकशयन्त्रणं ।
कृमिषु तत्र त्वगत्सु किमन्तरं ननु वदन्तु विदामधिपा अरं ॥२१
मधुरसा करटस्य तु निम्बिका धनमहोदु रितस्य कपर्दिका ।
बिडशनं हि किरेः रसनन्दनं विषयतो हि तथा हृदि रञ्जनं ॥२२
विषयमप्रकृतात्मरसो मतेर्न रमणी रमणीयमुपासते ।
मधुरमेव हि सर्पिरपश्यते भवति तैलमपीति निदृश्यते ॥२३
विषयमस्तमतिः प्रतिमुह्यति(ते) न हि विपन्न इतोऽपि विमुञ्चति ।
मुहुरहो स्वदते ज्वलिताधरः स्विदभिलाषवरो मरिची नरः ॥२४
गणयतीति चणोविपदां भरं न विषयी विषयीषितया नरः ।
असुहताविव दीपशिखास्वरं सलभ आनिपतत्यपसम्बरं ॥२५
वकुलमप्यतिमुक्तकमात्विपत्तिलकमप्यधुना मधुलोलुपः ।
कमलमेत्य पुनः शशिना धृतः मधुकरोऽनिविरौति विलम्बितः ॥२६
अयमहो मलिनो बलिभुग्जनः शमलमूत्रमये सुदृशः पुमः ।
अनुपतन्नियतः खलु घर्षणे मुदमियात्सघृणे जघनत्रणे ॥२७
ननु परिग्रह एष महानकृदथ दारजनः खलु दारकः ।
स परितः परिवारिजनोऽभवद् गृहमिदं स्फुरबन्धनगेहवत् ॥२८
यदपि दस्युतया हितमात्मने तदपहृतु महो भवकानने ।
परिजने परिगच्छति मुह्यतं विमतिरेव गतिस्तु कुत. सतां ॥२६
परिजनाः कुलपादपके चणमधिवसन्ति च सन्ति च पत्तिणः ।
फलमवाप्य किमप्यथ ते रयाज्जगति यान्ति महीन्द्र यदृच्छया ॥३०
अयि सुवंशज वंशमहीरुहि स्वगतवातवशेन मिथो द्रुहि ।
अपरमत्र न किञ्चिदये फलं कलहवह्निमुपैमि तु केवलं ॥३१

अभिमतस्य मुदो यदि संगमे दरद एवममुष्य विनिर्गमे ।
इति विनिर्वृतये खलु सम्मुखा विगतसंगमुखाः पुरुराणमुखाः॥३२
सुखमतीतमतीतमभान्वयः किमुत भाविनि तत्र किलेत्ययं ।
हृतमतिः क्षणसौख्यविमोहितः श्रममुपैति वृथैव तरामितः ॥३३
यदनुलोमतया पठितं वताक्षरयुगं त्रिषयेषु मुदेऽर्वताम् ।
मम च मर्मभिदद्य तदर्हतां प्रतिविरोधिविलोमतयेत्त्यतां ॥३४
जगति दिव्यतनुश्च सुधान्धसां गलति सा च सुदीन दिवौकसान्
क्षणत एव तु मृत्युमुखे स्थितां
किमुत मर्त्यगणस्य निरुच्यतां ॥३५
भजति हा विषयानसुमांस्तकं न लभते च पुरः स्थितमन्तकं ।
शिरसि सन्निहितांश्च्छगलो वलावपि धृतोऽत्ति मुदा यवतन्दुलान्३६
नर नवाध्वयुते ननु ते किल स्थितिमुपैति सुगो विहगोऽनिलः ।
तदिदमेवमहो भुवि पञ्जरे किमुत चित्रमितो यदि निस्सरत् ॥३७
शशिहरो भविता सविता पिता तदुदयेन हसिष्यति पङ्कजं ।
अलिनि चिन्तयतीति विषस्थिते द्रुतमिहोद्धजतेऽम्बुजिनी गजः ॥३८
गतगदोऽशनिर्नैष कटाक्ष्यते तदहतोभुजगाग्निविषादिभिः ।
इति कृतान्तसमाजभये भवे स्थितिरहोऽस्य कियच्चिरमस्तभीः ॥३९
गृहमिदं वृषवास्तु न वास्तु किं विशति निर्व्रजतीति यदृच्छया ।
हसति रौति च मत्त इवात्र तु निजधियं प्रतिपद्य जनोऽन्वयात् ॥४०
शमनमेष शिरस्थितमीक्षतां न हि पुनः कवलेऽपि रुचिस्तता ।
प्रतिभवेत्किमुतापरसम्पदि पतति किन्तु न सन्मतिसंसदि ॥४१
ननु मनोरथपूर्तिपरायणः सपुलकः कदलीदलजालवत् ।
विकलयन्कलनानि भवस्य वा परिभवं परमेति किलाङ्कभृत् ॥४२

चतुरशीतिगुणाङ्कितलक्षणेऽत्र तु चतुष्पथके विचरन्क्षणे ।
जनिमुतैति मूर्ति दुरिताद्वतः न पुनरेति परं पदमुद्धतः ॥४३
भ्रमणमेति जनः खलु मायमाङ्कितगुणस्तरुणोऽपि च तृष्णया ।
अपि तु जातु च यातु मरीचिकाविवरणे हरिणः किमु वीचिकां॥४४
पिहितदृष्टिरसौ परतन्त्रितः सपदि मर्मणि दण्डनियन्त्रितः ।
बहुभरं भ्रमतीत्थमथोद्धरञ्जगति तैलिकगौरिव हा नरः ॥४५
ननु सहस्व गुणिन्सहसा स्वयं किमु विलक्षतया व्रजताज्जयं ।
तव पुराकृतमेतदुदीरितं न हि परन्तु कदापि लभे हितं ॥४६
भृतिमितीच्छति च स परिच्छदः शशिमुखी शुचिभूषणसम्पदः ।
तनय एष परं परिपोषणं स्वमथास्तु पुमान्विधिचर्वणं ॥४७
अपि परेतरथान्तमथाङ्गना पितृवनान्तममीः परिवारिणः ।
पुरुष एष हि दुर्गतिगव्हरे स्वकृतदुष्कृतमेष्यति निर्घृणः ॥४८
निजनिजोचितचेष्टितवागुरावकलिता कलिता न विपद्धुरा ।
सुविधुरा हि नरास्तु नराधिप किमिव तत्र कदर्थनमाक्षिप ॥४६
तनयवत्वनयोऽरमनुव्रजत्ययि बुधेश विधिश्च यदात्मजः ।
परिनिमन्त्रितभूतवदेतकमतिचरत्यपि भो भुवने सकः ॥५०
तनुरनन्यतयानुगताऽऽदरिन्नपि न चेत्परलोकमुपेतरि ।
समितिमेति कुतोऽथ परिच्छदे समुपपत्तिमहो विबुधो वदेत् ॥५१
अमुकतः खलु विग्रहतो बुधः पृथगिवाञ्चति कोशत आयुधः ।
अनवबुद्धय परस्परसम्विशः स्खलतु केवलमेव तु बालिशः ॥५२
वसुरजोगुणकोरजसोऽञ्चति पय इवाथ जलाद्धरटापतिः ।
विभजते जडतः खलु चिंतनमिति विवेकबलादसकौ जनः ॥५३

न खलु कञ्चुकमुञ्चनतः क्षतिरहिवरस्य भवत्यपि सन्मतिः ।
अयि सखेशमखण्डसुखो वहेत्तदिव विग्रहभारविनिग्रहे ॥५४
यदपि भूमितले तुषकण्डनं तदपि सम्प्रति तण्डुलमण्डनं ।
तदिव वा जडपिण्डविवेचनं सुखवतस्तदखण्डनिवेदनं ॥५५
यदपि चेतनको गहनं श्रयत्यहह विग्रहसंग्रहतोद्यमम् ।
घनविघातमुपैति तनूनपात्किमयसाभिगमस्य न चेत्कृपा ॥५६
जगति दीव्यतनुश्च सुधान्धसां गलति सा च सुदीन दिवौकसाम्
क्षणत एव तु मृत्युमुखे स्थिता किमुत मर्त्यगणस्य निरुच्यतां ॥५७
बसति यावदयं खलु चेतनस्तनुरियं घृणितापि हरेन्मन ।
मृगमदाभिपदाकिलकूपिकान्तसमये सुसमस्तु दशा हि का ॥५८
निजमतिं वपुषीति जडात्मके परिकरे च सहायधियं न के ।
विषयसन्निचये सुखसेमुषी समुपगम्य हताः वदसम्वशिन् ॥५९
इत इदन्तु कलेवरमुद्धृतं इतरतः सकलं समलं कृतं ।
तदपि याति जनः समलङ्कृतं न पुनरीक्षणमेवमलङ्कृतं ॥६०
परिचरत्यपि रासकदासवन्निजनिवेदमृते धरणीधवः ।
अयमतो निवसन्वलयेऽवनेः प्रतियतेत मतेरथ शोधने ॥६१
सपदिमन्थ इतः प्रतिमन्थिनि भ्रमति तद्धृदयं जगदध्वनि ।
अरुणतो गुणतः स्वयमात्मनः विरम भो विरमेति मनः पुनः ॥६२
सुखमवैति तु नात्मगुणं जडो बहुपरेषु परं प्रतिपद्यते ।
अविदितात्मगतोत्तसौरभो मृगवरः परितोऽपि विपद्यते ॥६३
बहिरमीष्वसमेषु समन्ततः परिचयं रचयन्न विचारतः ।
न परमात्मपथे रतिमेत्ययं रस इयात्रसितः किमपि स्वयं ॥६४

सपदि मन्थगुणेन गवीश्वरो यदिव दध्न उपैति नवोद्घृतं ।
परमपास्य गुणी सहसात्मनो रसितिरूपमवैति नवोद्धृतं ॥६५
न हि विषादमियादशुभोदये न हि शुभे सुभगो मुदमानयेत् ।
भवति सम्प्रति सव्यतदन्ययोः क्वचिदहो कियदन्तरमङ्गयोः ॥६६
वृषलपालित आसवमश्नुते द्विजमितस्त्यजतीत्युपसंश्रुतेः ।
दृशि तु दासिसुतौ सुदृशासुभौ निगदितौ च तथैव शुभाशुभौ ॥६७
न तु निदृष्टमितः शयनाश्रमे नयति नाविनयं नयनोद्गमे ।
सुनयनिर्णयसम्वयने जयत्यथ बुधो नयनेङ्गितमप्ययं ॥६८
रजक एष गुणी स्वगुणाम्बरं समरसेण रसेण सतावरं ।
झगिति धावति नावति कष्मलं न तु विवेक मुपैमि च फेनिलं ॥६९
अयि विवेकितयैव वसेर्मन इह च किं वसतोऽपि विपत्पुनः ।
किमुत गारुडिनो विलसन्मतेर्भुजगभुक्तमपीति विषायते ॥६९॥
भुवि वृथा सुकृतं च कृतं भवेद्भवि जनस्य तरामविवेकतः ।
अनयनस्य बटीवलनं पुनः कवलितं च शकृत्करिणा ततः ॥७०
न खलु स्नेहमथो न दशान्तरमपि तु मोहतमोहरणादरः ।
लसति बोधनदीप इयान्यतः विधिपतङ्गगणः पतति स्वतः ॥७१
अपि तु बाह्यकवस्तुनिबन्धनेऽभ्यनुरतस्तनुमात्रनु धन्धने ।
अनयनो नितरां निजगन्धने भ्रमति हा विपदामनुबन्धने ॥७२
हसति रौति च मूर्च्छति वेपते तनुभृदेष किलापगतो धृतेः ।
भ्रमति सर्वत एव भियासकौ भवति भूतनिवास इवासकौ ॥७३
हितमवैति न कश्चन वै जनस्तदितरस्य तु संशयितं मनः ।
परमये विपरीतरुचा धृतं जगदिदं सकलं तमसावृतं ॥७४

वयनकीटवदात्मनिवेष्टितैर्विपदमेति जनो निजचेष्टितैः ।
प्रभवतीह हितैरसिकैर्जितैर्जगति मत्कुणवन्म्रियते नतैः ॥७५
सपदि मल्लमहावपि + युद्ध्यतो भवति ×दीपकजीवयुतो नरः ।
लगति तस्य तनौ हि रजः कुजं तदितरो विलसत्यपि केवलं ॥७६
विषयजातिशयाश्रयिहृद्वता जनुरिदं ननु नीतमपार्थतां ।
गतधियापि मया समयः श्रियां पणमितो मुकुरेण मणीरयात् ॥७७
श्रुतमधीत्य यथाविधि बुद्धिमान् समधिगम्य च साधुसमागमान् ।
जगदुदीक्ष्य च भंगुरमूढ्यतां मदपरः क इवेह विमुह्यतां ॥७८
अनवयन् दहनं सलभोऽततिवडिशमांसमितश्च झषोऽमतिः ।
न विषयान् गहनांश्च सुचिन्निधिस्त्यजति मादृगहो निविडो विधिः ॥
स दिवसः समयः समयाञ्चितः सपदि सोहमपीति कथाश्रितः ।
उपहतः पुनरुक्तपरिश्रमैररकवद्भ्रवतीह परिश्रमैः ॥८०
न हि कृतं मदनारिकमाजनुस्मृतमहो न जिनेन्द्रपदावनु ।
युवतिमार्दवकदमकेऽर्दितं किमु कथेयमथो भसदोऽग्रतः ॥८१
स्मरशराशरसाशयितान्विता नियमितावमिता भ्रमिता मिता ।
जडतयापि तथापि तु चिन्तया किमधुना समये* च शिवं रयात् ८२
अधम यौवनमापलयाश्रितं बहुमयौवन एव मता स्थितिः ।
क्षण इतो मृदुहारमणीभृतः स खलु हारमणीसदसोऽप्यतः ॥८३
अखिलमेव तु वस्तुपुरःस्फुरन्निजनिजोचितधर्मधुरंधुरं ।
अहह धर्ममृतेऽपि पुमानतिविकलितः खलु जीवितुमिच्छति ॥८४

+ व्यायामभूमौ, महिशब्द इकारान्तोऽपि प्रयुज्यते वृद्धैः ।
× तैलयुक्तः ।
* गच्छामि ।

न वृषमेत्यनुषङ्गजमप्यथ सततमेनसि सम्विलसत्कथः ।
अहह मूढमना मनुजोऽमृतं समपहाय विषं पिवति स्वतः ॥८५
यदि हृषीकसुखान्यपि हे जिन किल फलानि वृषस्य हि शाखिनः ।
न किममीः सहिताश्च सुखाशया वृषमुषन्ति नु सन्ति मलाशयाः ८६
स सुतत्वमहत्वदायिनीवृषचिन्तामणिसम्बिधायिनी ।
भवभोगवपुष्षु निष्पृहो हृदि चिन्तामणिमित्यगादहो ॥८७
यदुपश्रुतिनिर्वृतिश्रिया कृतसकेत इवाथ कौ धियां ।
विजनं हि जनैकनायकः सहसैवामिललाषचायकः ॥८८
जन्मातङ्कजरादितः समयभृच्चितामथागाच्छुमां,
यत्नोद्वाह्यमिदन्तु राज्यभरकं स्थाने समाने ध्रुवं ।
सद्भूयामहमत्र कुत्र भवतो निक्षिप्य सम्यङ्मनाः,
नानिष्टं जनताऽऽयतिं प्रसरताद् भातूत्सवश्चात्मनां ॥८६

[जयसद्भावना इति चक्रबन्धः]

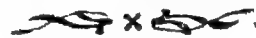
श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमित्रियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
ज्ञानानन्दपदानुयायिनि गतः सर्गोः निसर्गोज्वलः,
तत्प्रोक्तेऽत्र जयोदये सुललितो वाणाक्षिभृत्सम्बलः ॥६०

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामल-शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये पञ्चविंशतितम. सर्ग



भजन

संसृतिमुत्सृतिमेहि च सर्वं स्वार्थमुदीक्ष्य भरन्तं ।
भवितुरेव तृप्तिरिति सुलभे पृथगखिलं गुणवन्तं ।
समवेतेव तनुश्च गलिष्यति तत्कचिदेतु भदन्तं ॥२॥
एभ्यो बहुकुकर्मसङ्कलितं संहृतमपि न हृदन्तम् ।
येन दुरितमतिवर्त्य समस्तं यायाः स्वसुखमनन्तम् ॥३॥
जगति शबलितेऽमुष्मिन् कृच्छ्राल्लब्धं त्वया सदन्तम् ।
वृषमकृशं परिपारय सारय जनुरपि शान्तिकृदन्तम् ॥४॥
यदुपश्रुतिं निर्वृतिश्रिया कृतसकेत इवाथ कौ धियां ।
विजनं हि जनैकनायकः महमेवाभिललाषचायकः ॥५॥



अथ षड्विंशतितमः सर्गः

समभूत्समभूतरक्षणः स्वसमुत्सर्गविसर्गलक्षणः ।
शिवमानवमानवक्षणः नृपतेरुत्सवदुत्सवक्षणः ॥१
अनुनामगुणैकभूरभूदथ शर्वं करिरेत तदङ्गभूः ।
न हि शत्रुभिरन्ततामितः स्विदनन्तोत्तरवीर्यसंज्ञितः ॥२
स बभूव कुलानुमानतः सवभूश्च प्रतिपत्तिमानतः ।
नृपतीर्थपतिर्न्ययोजयन्नृपतीनां धुरि सन्नयो जयः ॥३
वरदक्षरसौधसत्वरा परितश्चत्वरपूरणत्वरा ।
सुदृशां नरवरेषु सोमता प्रजयाऽचिप्रजयादसौ मता ॥४

त्वकयित्वकजिच्चनस्ततां लभतां स्नेहगुणोऽप्यनन्ततां ।
अभिषेकनिषेकसम्पदः स्फुरदभ्यङ्ककृता व्यभान्यदः ॥५
लसताल्लसता त्वदाश्रिते विषतासम्बिशताचथाजिते ।
यदुपेत्यतरामवातरन्नकिमुद्वर्तनमित्युदाहरत् ॥६
सहते सहते जसा स्थितः कुत एतन्मलिनत्वमित्यतः ।
कचसन्निचयः समस्तुतः समभादुत्तमभावतः स्तुतः ॥७
ललिता दलिताखिलैनसश्चलिता संकलिताप्यनेकशः ।
परितोषयितुं प्रजा अभाद्वदनेन्दोरमृतस्त्रुतिः शुभा ॥८
अपकर्षणसन्निर्षया हरिपीठे परिपीतसर्षपाः ।
पुलकांकुलका इवोत्थिताः परिवर्द्धिष्णुतया बभुः सिता ॥६
सममाश्रममादिशन्गुरुप्रकृताज्ञानृकृताशिषोरुरु ।
शिरसीष्टिरसोपुरोहितस्तिलकं स्रागलिखत्तरामितः ॥१०
उपकुक्ष्मुप्तवान्बलादिह बीजानि सुतण्डुलच्छलात् ।
फलतूत्तलतुष्टिबल्लरीति तदाभालभुवीष्टिकृद्धरिः ॥११
धरणीभरणीति सत्क्रियां प्रततां साम्प्रतमिन्धिकां श्रियां ।
धृतवान्धृतवानमुद्धनीमृदुमौलिच्छलतोऽस्य मूर्धनि ॥१२
हरिपीठगतः स राजतामनुकुर्वन्विशदांशुकस्ततां ।
उदयाचलचुम्बिचन्द्रवत्कुमुदालम्बनलभ्यनोऽभवत् ॥१३
सुतरामुत राज्यसम्पदः समितायाः समदश्रुसंविदः ।
जरतीकरतीर्थलम्भितान् भरति स्म द्रुतमक्षतान्हितान् ॥१४
मृदुकेशनिवेशलक्षणं प्रतिराड्हसदाप्रदक्षिणं ।
शशिबिम्बवदातपत्रकं भवतः प्राभवतः किलानकम् ॥१५

सुरसिन्धुरसिश्च देवतं नृपतीनामवतीर्य दैवतं ।
प्रतिपन्नवतीव सम्मदाद्विलसच्चामलसम्पदः पदात् ॥१६
स्वजनोपहृतातिविस्तृतामलमुक्ताफलभाजनैस्तता ।
धवमाप्यनवं नु शम्फली सहसाभूत्सहसा तदास्थली ॥१७
जय वारय वारसम्पदा परिषत्सा परिसञ्चरन्मदा ।
मृदुलोमदलोमयाश्चितानवराज्ञः सवराजसान्मिता ॥१८
सुभगाशुभगान्धिकार्पितपिचुकासंक्रमतो द्विषज्जितः ।
विरदस्फुरदङ्कुरास्पदाऽभवदेवं भवतः सभा तदा ॥१६
अथ दृक्पथ एव संकथः खलु नः पल्लवितो मनोरथः ।
प्रभवे नृभवे च सम्पदादिति ताम्बूलदलानिकोऽप्यदात् ॥२०
अवतरयति स्म हृत्तु नः शशिनो बिम्बवदुन्नयत् पुनः ।
अम्बुकाननशाननंदनं शुचिनिराजनभाजनं जनः ॥२१
प्रमितं शमितन्मनाभवन्नगदं सन्नगदर्शवन्नवम् ।
वचनं स च नर्महेतवे समयच्छत्तुज आजवंजवे ॥२२
अपि केन न वीक्ष्यते रविशशिनीत्थं बशिनिन्दितो भवी ।
जनतावनता न सन्दिशोवयमेतद्द्वयमेचकाः शिशो ॥२३
जनतां च नतां समाश्वसेः स्वमनस्यप्यम नैव विश्वसेः ।
नटवत्तटवर्तिदृक्त्या रहितो हर्षविमर्षसूक्त्या ॥२४
स्वयमन्तरितोऽस्तु शल्यवज्जययुक्त्यैव मदादिकान्ध्रुवं ।
अरिमग्निमिवोपतापकं जलवच्चूद्गलनाश्रयः स्वकं ॥२५
प्रकृतीरनुरञ्जयञ्जयन्द्विषतो भद्र सतो मुदं नयन् ।
प्ररुजोऽङ्गजराजयत्क्षमणः पृथिवीं रक्ष विपक्षलक्ष्मणः ॥२६

श्रुतमात्र्तमात्रकं सकः प्रवहन्नञ्जलिनालिनाशकः ।
निजमूर्ध्नि जवेन तीर्थतः स्वमतः पूततमं त्वमत्यत ॥२७
परिपीय हितोपदेशितं सहसा स्वस्थतयास्थितेऽन्वितम् ।
इह वन्दिजनस्य चाभवज्जय नन्देति वचोऽपि पथ्यवत् ॥२८
भयविस्मयसंरसाद्रसापतिता प्रेतपतेरिवात्र सा ।
कथिताऽसिलतातपोभृताभ्युपलभ्यास्य करेऽर्पिता सता ॥२६
प्रतियच्छत भो यथोचितामिह सन्मातृपदे नियोजिताः ।
सचिवाः शुचिवाचमास्पदे रुचिवानेष यतोऽस्तु नापदे ॥३०
प्रभवेन्नृभवेऽयमुत्थितः स्वप्ने शुद्धिदशेऽथयाचितः ।
जगतोऽपगतोघचर्वणं प्रचरार्थवण तद्धि कामणं ॥३१
सुभटाः शुभतारतम्यतः प्रकृतं पश्यत किन्न दस्यतः ।
प्रभवत्सुभवत्सुबोधवत् भवति स्तम्भगतैकसौधवत् ॥३२
इति वः प्रतिवर्मयुक्तये परिगन्तास्म्यहमत्र मुक्तये ।
विनतोऽस्मि पुराधयुक्त्ये ह्यनुमन्येत च तन्नियुक्तये ॥३३
इति तन्मिततत्ववद्वचः परिपीयारिपिपत्रवत् क्व च ।
वचनन्तु सभाजने पुनः स्थितिरन्यैव बभूव वस्तुनः ॥३४
क्व स मिष्टविशिष्टपारणा क्व च तन्निष्ठघनिष्टधारणा ।
द्वितयेऽपि च येऽर्पितश्रिया खलु दोलायितमङ्गिनां धिया ॥३५
जगतस्तु सबाधकार्यतां नितरां स्वैरितरां तथार्यताम् ।
अवधार्य च कार्यकोविदाः समिताः किन्तु रहस्यसम्भिदा ॥३६
पदयोसदयोपयोगिनः परिपेतुर्निखिला नियोगिनः ।
वचसा न च साक्षिणोऽप्यमीर्जयतादेव भवादृशो यमी ॥३७

तनयाभिषवोत्सवक्रिया नृपतेर्निगमसम्भवद् ह्रिया ।
गरलोत्तरलड्डुभुक्तिवदभवत्सभ्यजनाय पक्तिभृत् ॥३८
अदयं हृदयं च योगिनां परिगीयेत गुणानुयोगिनां ।
परिदैविनि दूयते न यन्निजबन्धौ ममतामहो जयत् ॥३९
जनलोचनशुक्तिमन्ततौ विदिते स्वातिहिते महीपतौ ।
श्रुतयाऽश्रुतया किलाऽभवदिह मुक्ताफलताश्रवो नवः ॥४०
गजवत्सजवं विबन्धनः स्फुरिताशं दुरितानिबन्धनः ।
अपरायपरायणस्तथा वनमानन्दनमाप सत्पथा ॥४१
सकृपः सनृपः परिव्रजन् कृतिभिः सन्मतिभिस्त्वभिप्रज ।
अजितोऽत्र जितोर्जितैनसः सुखिनः सम्मुखिनः किमेकशः ॥४२
कुरुराट् पुरुराडुपाश्रयं परमार्थी परमा तत्रानयम् ।
निधिवद्विधिबन्धुरोदयी समभूतेन तदा मुदन्वयी ॥४३
सहजा सहजातिवैरिभिर्हृदि मैत्री यदिमैर्धृताङ्गिभिः ।
यदिवाय दिवाकरो जिनः क तदाशात्र वसाद्रवोऽपि नः ॥४४
अमरैः समरैकवेदिभिः क्रियते कर्मसुमर्मवेदिभित् ।
मुहुरेव जयेति शार्मणं परमुच्चाटनमेव कार्मणम् ॥४५
जिनतोऽभिमतः पराजयः स्वयमस्मान्नयमञ्जुलोलयः ।
कुसुमानि सुमायुधस्य तत् करतश्चाम्बरतः पतन्त्यतः ॥४६
परिधौतमिवाम्बरं शुचिहरितां तीर्थसवोद्भवा रुचिः ।
धरणीतलमब्दनिर्मलं जगतां सम्मदसृष्टये बलम् ॥४७
कमनःशमनन्दिनामुनाऽपहतास्त्रस्त्वनुकम्पयाधुना ।
समिताश्च मिताः सुमश्रियामृतवस्तद्धितवस्तुदित्सया ॥४८

अखिभिर्मखिमिभ्रमालतस्त्ववधूतो नवधूलिशालतः ।
स्फुरतः स्फुरतः स्तवः सतां जगतोऽभावगतोऽस्तु तावता ॥४६
समचिन्मम चित्तवृत्तितः सुगभीराऽशुगभीधराऽभितः ।
विशदा हि सदा तथाकृतेः परिखासम्बरिखा विराजते ॥५०
किमुना करमाश्रमाम्भसः किमु सिद्धे मदभृद्दृशो रसः ।
नभसो रभसोदयी पतत्यपि गन्धोदकबिन्दुरूपतः ॥५१
विचलद्वल्लतावनं मरुता चालिरुताप्तकीर्तनम् ।
धृतहास्यमिवास्य दृश्यतां परिफुल्लास्यमहो प्रशस्यता ॥५२
वरणत्रमत्रयन्मतं जिनरत्नत्रयवत्समुन्नतम् ।
परिनिर्वृतिसाधनत्वतस्त्रिजगन्मोहकरं महत्वतः ॥५३
गरवद्वरवस्तुयोगतः प्रकृतं तीर्थकृतः प्रयोगतः ।
अपवृत्य हि कर्मकाष्ठकं भवतीदं भुवि मङ्गलाष्टकम् ॥५४
सुचिरं शुचिरद्य कुम्भिनीस्थितिरस्यां न ममावलम्बिनी ।
इति धूपघटास्यधूमकच्छलतश्चोच्चलदेवमस्यक ॥५५
प्रतिलासनिवासमाश्रयाम्बुधिमानन्दधियायमत्र वा ।
करचारतयारमुत्तरत्यनुतारं नटदप्सरोभरः ॥५६
सुमनोभिरुपासिता हितामनुजेभ्यश्च फलोदयान्विताः ।
परितापहरा महीरुहाः परितः श्रीशगुणोपमावहाः ॥५७
जिनसम्बिनयेन पूततामुपलिप्सूनि किलाप वृत्यतां ।
भवनानि बनानि भूभृतः क्रमशः सन्ति जगन्ति किन्वितः ॥५८
क्रमशः श्रमशर्मतोऽर्हतां दशधर्मै रवकृत्य सन्धृताः ।
त्व च एव च सन्त्यमीर्ध्वजादुरितानां सितकम्पितं रुजा ॥५६

अविवादधराश्चराशयस्त्वनुग्रहणाति यकान् महाशयः ।
युगपच्च युगादिभास्करः स गतान्द्वादशतां सतां वरः ॥६०
जिनसाज्जगतां तु दुर्जयी स हि मोही महिमोहविस्मयी ।
न हि दुन्दुभिकः समस्ति तद् हृदयोद्भेदरवस्तु वस्तुतः ॥६१
नितरामितरायितायते रथमासौ कथमासनायते ।
अधरायत ईशिताऽहता क रहोनीतिरहो निरीहता ॥६२
मनसा वचसा च कर्मणार्चन इन्दुः प्रतिपद्य शर्मणा ।
त्रिगुणं वपुराप्य घूर्णते त्रयजिच्छत्रतया जगत्पतेः ॥६३
शमशोऽयमशोकपादपः ह्ययतीतो जयति प्रमाणपः ।
भविनां कविनामिनां चलन्निजशाखाशयचालनैर्दलं ॥६४
सुमनः सुरभि किलानिलाविनयन्ति त्रिपुरारिराड्गिरां ।
कुसुमाञ्जलिवन्मुदाधिकामभितः स्वर्गिवराः समाशिकां ॥६५
जिनशासनमेव मूर्तिमद् वृषचक्राव्हयतस्तरां लसत् ।
निवहन्ति सुरादुरासदमितरेभ्योऽमितरेत इत्यदः ॥६६
जिनचरणवराणामर्चनातत्पराणां,
किमिति न हि सुराणां सत्कृतस्याङ्कुराणां ।
उदय इह ततानां मूर्तभावं गतानां,
चमरमिषमितानां घूर्णते मुञ्जितानाम् ॥६७
भवान्तरोद्बोधनमङ्गिनामतः प्रभोः प्रमावृत्ततया प्रभावतः ।
महोप्यहो कोटिगुणं गतोऽनया रविस्सविचापकृतापकृत्तया ॥६८
ध्वनिरयं निरयन्द्रुतमर्हतां रसमयं समयं तनुते सतां ।
गतिरयं तिरयस्तु पयोमुचः पृथगतोऽनुजनं रुचः (?) ॥६९

समवसरणमेवं वीक्षमाणोऽथ देवं,
गुणमणिमनुलेभे हर्षमेते न रेभे।
पुलककुलकशंसामन्तरे नो दुरंशाः,
सपदि बहिरुदीर्णाः पुण्यपाकेऽवतीर्णात् ॥७०
संसारसागरसुतीरवदादिवीरश्रीपादपादपपदं समदेन धीरः।
तत्रानमंस्तु भरदुत्तरलाक्षिमत्वा—
न्मुक्ताफलानि निपतन्ति समाप गत्वा ॥७१
प्रसन्नाम्बरपुष्पाणां मालाथालापशालिना।
गुणैरावर्तितादेनु श्रीवाजीवासुशाखिनां ॥७२
जयस्यहो आदिमतीर्थनाथः शक्रादिभिस्त्वं परिणीतगाथः।
हितस्य वर्त्मत्वकया पवित्रं न्यदेशि तत्त्वं भुवनस्य मित्रं ॥७३
हे देव दोषावरणप्रहीण त्वामाश्रयेद्भक्तिवशः प्रवीणः।
नमामि तत्त्वाधिगमार्थमारान्न मामितः पश्यतु मारधारा ॥७४
भवन्ति भो रागरुषामधीना दीना जना ये विषयेषु लीनाः।
त्वां वीतरागं च वृथा लपन्ति चौरा यथा चन्द्रमसं शपन्ति ॥७५
राज्ञामिवाज्ञा भवतां जगन्ति गताऽविसम्वादतया लसन्ती।
शिशोरिवान्यस्य वचोऽस्त्वपार्थं मोहाय सम्मोहवतां कृतार्थं ॥७६
विरागमेकान्ततया प्रतीमः सिद्धौ रतः किन्तु भवान् सुसीम।
विश्वस्य सञ्जीवनमात्मनीनं स्याद्वादमुज्झेत्किमहो अहीन ॥७७
अहो यदेवास्ति तदेव नास्ति तवाद्भुतेयं प्रतिभाति शास्तिः।
यद्वा स्मरामोऽत्र तमीनरेभ्यः निशापि सा नास्ति निशाचरेभ्यः
तुलान्तवत्तद्द्वयमस्तु वस्तु प्रतिष्ठितं विज्ञहृदीह वस्तुम्।
न पश्चिमाशेन विना बिभर्ति समग्रमंशं खलु यास्ति भित्तिः ॥७८

अभेदभेदात्मकमर्थमिर्हंचयोदितं सम्यगिहानुमिन्दन् ।
शक्नोमि पत्नीसुतवन्न वक्तुं किलेह खङ्गेन नभो विभक्तुम् ॥८०
द्वयात्मनोऽप्यस्ति जनो यदर्थी श्रीवस्तुनः सम्प्रति तत्समर्थी ।
वमेर्विधौ यद्यपि वक्त्रमुहयं विरेचने किन्तु तथानगुह्यम् ॥८१
तत्त्वं त्वदुक्तं सदसत्स्वरूपं तथापि धत्ते परमेव रूपम् ।
युक्ताप्यहो जम्भरसेन हि द्रागुपैति सा कुङ्कुमतां हरिद्रा ॥८२
अङ्गाङ्गिनोर्नैक्यमितीह रीतिर्न भो प्रभो भाति यथाप्रतीति ।
सत्या तदुक्तिः शतपत्रनीतिगु गोषु नष्टेषु परेऽपि हीतिः ॥८३
येषां मतेनाथ गुणः स्वधाम्ना सम्बद्धयते वै समवायनाम्ना ।
तेषां तदैक्यात्किल संकृतिर्वानवस्थितिः पक्षपरिच्युतिर्वा ॥८४
सम्मेलनं नो तिलवत्प्रसक्तिर्नान्धाश्मवच्चैतदशक्यभक्तिः ।
सत्तत्वयोरस्ति तदात्मशक्तिः प्रदीपदीप्त्योरिव तेऽनुशक्तिः ॥८५
न सत्सदेकं गुणसंग्रहत्वाद् घृतादयो मोदकमस्तु तत्वात् ।
अनैक्यमेवास्य तथैतु किञ्चिदेकैकतो नैक्यमुपैति किंचित् ॥८६
दारा इवारात्पदवाच्यमेकमनेकमप्येतितरां विवेकः ।
समस्तु वस्तु प्रतिरूपवेशमुद्बोधनायास्त्वथवैकशेषः ॥८७
अद्वैतवादोऽपरिणामभृत्स्यादहष्टहृद् दृष्टविरोधकृत् स्यात् ।
किं यातु सेतुं च तदीयहेतुर्विरुद्धता द्वीपवती भरेतु ॥८८
भावैकतायामखिलानुवृत्तिर्भवे च भावेऽथ कुतः प्रवृत्तिः ।
यतः पटार्थी न घटं प्रयाति हे नाथ तत्त्वं तदुभानुपाति ॥८९
अंशीह तर्कः खलु यत्र दृष्टिः शेषः समन्ताचदनन्यसृष्टिः ।
स आगतोऽसौ पुनरागतो वा परं तमन्वेति जनोऽत्र यद्वाक् ॥९०

नित्यैकतायाः परिहारकोऽब्दः क्षणस्थितेस्तद्विनिवेदि शब्दः ।
सिद्धोऽधुनार्थः पुनरात्मभूप संज्ञानतो नित्यतदन्यरूपः ॥६१
काष्ठं यदादाय सदाक्षिणोति हलं तटस्थो रथकृत्करोति ।
कृष्टा सुखी सारथिरेव रौति न कस्त्रिधातत्वमुरीकरोति ॥६२
निःशेषतद्व्यक्तिगतं नरत्वं विशिष्यते गोकुलतस्ततस्त्वं ।
सामान्यशेषौ तु सतः समृद्धौ मिथोऽनुविद्धौ गतवान्प्रसिद्धौ ॥६३
सदेतदेकं च नयादभेदात् द्विधाप्यधास्त्वं चिदचित्प्रभेदात् ।
विलोडनाभिर्भवतादवश्यमाज्यञ्च तक्रं भुवि गोरसस्य ॥६४
भवन्ति भूतानि चितोप्यकस्मात्तेभ्योऽथ सा साम्प्रतमस्तु कस्मात्
स्वलक्षणं सम्भवितास्ति यस्मादनादिसिद्धं द्वयमेव तस्मात् ॥६५
यद्गोमयोदाविह वृश्चिकादिश्चिच्छक्तिरायाति विभो अनादिः ।
जनोऽप्युपादानविहीनवादी वह्निं च पश्यन्नरणेः प्रमादी ॥६६
शरीरमात्रानुभवात्सुनामिन्नव्यापकं नाप्यणुकं भणामि ।
आत्मानमात्माङ्गनयाथ कामी नखाच्छिखान्तं पुलकाभिरामी ६७
स्वतन्त्रतान्यङ् नियतेस्तु का वा दोषैकता वा प्रतिकर्मभावात् ।
भुक्तौ प्रयुक्तौ न पराश्रया वाक् सरित्त्ववाध्यं शुचिबुद्धिनावा ॥६८
अहो कथञ्चिद्विभवेत्प्रकृत्या पङ्क्तिर्जलस्यानलवत्प्रवृत्या ।
अमत्रवत्तत्र परत्रनिष्ठां स मुक्तवाँस्त्वं जगतः प्रतिष्ठां ॥६६
स.धो सुधाहं ममकारवेशं संक्लेशदेशं जितवानशेषम् ।
प्रक्षीणदोषावरणोऽथ चिद्वान्समस्तमारात्स्फुटमेव विद्वान् ॥१००
यन्मीयते वस्त्वखिलप्रमाता भवेदमेयस्य तु को विधाता ।
श्रुत्याखिलार्थाधिगमोऽप्यशक्त्या–
वलोक्यते मुव्युपनेत्रयुक्त्या ॥१०१

संबोधयत्वत्र न सम्पदेव गुरुर्विवाचामिह कश्चिदेव ।
युक्त्यागमाभ्यामविरुद्धको स भवेद्भवानेव विमुक्तदोषः ॥१०२

सेवन्तु देवन्तु परः परोक्षेऽप्यनन्यवित्कायदिवादरोऽक्षो ।
त्वच्छासनैकाशनकाभियुक्ती हे देव देव्यावपि भुक्तिमुक्ती ॥१०३

साधीयसी भो भवतः समाधिर्व्याधिस्तमाधिर्न कदाप्यबाधीत् ।
चिकित्सको निर्विचिकित्सकोऽसि,
पापात्मनामप्युत हे सुतोषिन् ॥१०४

भगवत्सुभक्तिगङ्गा समुत्तरङ्गा त्वदंघ्रिहितरङ्गात् ।
मां वामदेवमारात् पुनातु चातुच्छविस्तारा ॥१०५

संन्यासिनां जगति मृत्तृणमेव मूल्यं
शक्रादिजीवनमवैमि च तक्रतुल्यं ।
ह्याच्छाणशं परिवदाम्यपरन्त्वशस्य–
मेवं सुघोष समयस्तव गोरसस्य १०६

निर्विण्णस्य जयस्य संसृतिपथः सिद्धिं समिच्छोः पुनः,
गम्भीरां समवाप्य सम्मतिमतः पृच्छां स साक्षात्कविः ।
मर्मस्पर्शितया प्रबन्धति सतां यं कश्चिदीशो विधिं,
धिष्ण्योत्तानितसङ्कतैः स महितो नर्मण्यविघ्नोनिधिः ॥१०७

(षडरचक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं।
तेनोक्ते द्विगुणत्रयोदश इतः सर्गः श्रियामध्वनि,
साम्राज्याभिषवैकभूतिभवने श्रव्येषु चौजस्विनि ॥१०८

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामल-शास्त्रि-विरचिते सुलोचना-
स्वयम्वरापरनामजयोदयमहाकाव्ये
षड्विंशतितमः सर्गः



अथ सप्तविंशतितमः सर्गः

अथानुजग्राह सभाभृदेव नराधिराजं जगदेकदेवः ।
स्वभावतः सद्भिभवाय चारी तमोनुदेवं च मुदेधिकारी ॥१
सम्पद्यतामद्य विपद्युदारमाचारसारं विलसद्विचारं ।
निवेदयाभ्यङ्गगुणाधिकार-मारम्भणीयं खलु योगिनाऽरम् ॥२
सौधायतेऽयं समयः स्वपाता पुराकृतिस्ते वृतिरेव जाता ।
ध्वजत्यजत्वप्रकृतिः कृतिन्ते धियोऽधियोगं स्फुटतां यजन्ते ॥३
समाः समाप्तं किमु विस्मरन्तु मुक्तस्य युक्तं न विवेचनन्तु ।
भविष्यते स्फीतिमितस्य फालः फलत्यनल्पं किमु नो नृपाल ॥४
दृष्टा प्रवृत्तिः खलु कर्मकृत्तिस्तत्त्वं निवृत्तिर्जगते प्रवृत्तिः ।
भवेद्वेदः परथानिवेदः प्रपेदने नास्तु भवानखेदः ॥५
रामोऽथ मोक्तुं परमोऽस्ति भोगी कुतो रहस्यं ममतां वियोगी ।
यथोदितं लंघनमेति रोगी नो गीयते वर्त्मनि वासिनोगी ॥६
यथा प्रथा येन जनस्य दृश्यान्यथा कथा भो यतिनश्तुशस्या ।
पूर्वस्य यत्संग्रहणानुरागौ त्यागं परत्राह विरागतांगौ ॥७
महद्भिराराध्यतमाशमारात्समर्पयन्ती निरवद्य धारा ।
न यत्र संसारिजनप्रवृत्तिरलौकिकी भातु मुनेर्हि वृत्तिः ॥८
संचालनप्रोञ्छनयोः प्रवृत्तस्तनोर्जनोऽयं प्रतिभाति हृत्तः ।
यतिः सदात्मैकमतिः शरीरसेवासु रे वां न समेति धीरः ॥९
भोगेषु भो गेहभृदस्ति गत्वाघनिग्रहं विग्रहमेव मत्वा ।
भोगे नियोगेन मुनिः प्रवृत आत्मप्रतिष्ठः खलु तान्निवृत्तः ॥१०

जनस्य तु स्याद्विजनेऽभियोग ऋषेरुषेवार्तिशयाभियोगः ।
शरीरवाधास्वयतेस्तु रोगः साधोः पुनः सुष्ठु समस्ति योगः ॥११
मृदुन्युदङ् मृदणगुदुगुदानेऽप्युरस्युरोजे शुचि चूतताने ।
पुष्पोपगोऽपि स्वकरौ प्रियायाः प्रयोजयन्योजयति व्यवायान् ॥१२
सकंकरप्रस्तरशंकुनोदप्रतोदयोर्यच्छतु सप्रमोदः ।
कठोरयोः श्रीपदयोः कशंसच्छीतातपप्रायसहः स हंसः ॥१३
रसत्यसत्यप्रतिमः समश्नन् जनो मनोहार्यशनोन्चितः सन् ।
अस्वादनस्वादनवृत्तिरस्य तस्मादनाचर्वणमस्त्यवश्यः ॥१४
कचेषु तेलं श्रवसोः फुलेलं ताम्बूलमास्ये हृदि पुष्पितेऽलं ।
नासाधिवासार्थमसौ समासात्समस्ति लोकस्य किलाभिलाषा ॥१५
शिरोगुरोरंघ्रिधुरोरजोभिरुरः पुरः पांशु परं सुशोभि ।
फूत्कारपुत्का खलु कर्णपालीत्यदन्तमृष्टस्य मुनेः प्रणाली ॥१६
सारं सतारं लसदङ्गहारं मञ्जीरशिञ्जानमयोपहारम् ।
मित्रैः पवित्रैकतलेऽभिलाष्यं दशां दशाङ्ग सुदृशां क्व लास्यं ॥१७
शार्दूलसिंहादिपरम्पराणां भयङ्कराणां क्व वनेचराणां ।
स्फीत्कारचीत्कारपरं तु नृत्यं हृत्कम्पकृद्धीरतयाधिकृत्यं १८
श्रवः सुचानन्यरुचा पुनीता सुधेव पीता वसुधेश गीता ।
मितामरीभिर्मधुराधरीभिर्या वागया वा सदने परीभिः ॥१९
कृतान्तवृत्तान्तसुभैरवारवाभवात्र वाक्मर्मनिकर्मवैभवा ।
द्रुतं नुतं धारय मारयेरणा निशम्यतां लुब्धकलुब्धकर्मिणां ॥२०
विरुद्धवृत्तौ रुषमेति लोकश्छन्दोऽनुगे तर्षनिदर्षनौकः ।
रोषो न तोषो जगदेकपोष ऋषेर्भवत्येव भवोऽपदोषः ॥२१

प्रवञ्चनार्थं स्वसमञ्चनार्थं वचोऽङ्गिनः स्तागजगतो हितार्थं ।
आख्याति विख्यातिमनिच्छुरेव निःस्वार्थविश्वा-मतयर्षिदेवः २२
स्ववैभवे दैवभवेऽप्यरङ्गी परश्रिया संस्पृहयाप्तुरङ्गी ।
त्यक्त्वा स्वसर्वस्वमपि प्रवृत्तः पुनः परोर्थेषु यतिः सुवृत्तः ॥२३
अभिन्नभावः स्विदनीदृशीषु भासा समासाद्विजितोर्वशीषु ।
अङ्गेन रङ्गे नरराडमीषु धनी घनीभावमपि प्रलिप्सुः ॥२४
कामारितायां निलयः सुधामा रामापि सामायिकवृत्तिनामा ।
तस्यामतः स्यामतदन्यवृत्तिः सावश्यकस्येति मुनेस्तु वृत्तिः ॥२५
रमासु रामास्वसमास्वमासु ग्रप्नो जनोऽनित्यमतासु तासु ।
स किञ्चनो तावदकिञ्चनोऽपि योगी नियोग्यङ्गममत्वलोपी ॥२६
धृतः क्षतत्राणकचर्मपाशः करेऽसिरासीदथ चन्द्रहासः ।
मातङ्गमातम्भितवान्सुपाणे सरोषहुंकारपरः प्रयाणे ॥२७
तुम्बी सपिच्छा हृदि सासमिच्छा पुरः पथिच्छादितचक्षुरिच्छा ।
दिवाविहारो दलिताध्वचारो मुनेः समारोपहृतः कुठारो ॥२८
इतस्ततो भा परिमार्जनीवाविदग्धनुःसावगुणार्जिनी वाक् ।
वेश्येव विज्ञस्य पुनर्मनुष्यान्सम्मोहयन्ती भृतिकामनुस्यात् ॥२९
मुनिस्तु मौनं मनुतेऽञ्जनोनं क्वचिद्धितार्थस्वमुखादथो न ।
निःसारयेद्रत्नमिवातियत्नपुरस्सरं प्रत्नपदं विनूत्नं ॥३०
हन्तोदरायास्तिकृताऽपराधः पतत्यतत्वात्तृणतोऽपि नाधः ।
बन्धूनपि द्वेष्टि कदन्नकेष्टिर्यद्येकवेलामपि नाशनेष्टिः ॥३१
आपन्नमासं व्रजतोऽपि मन्तुगुरुनुरूद्योगपरोऽपि गन्तुं ।
लेश्याविशुद्धिं लभते सुबुद्धिर्नैवापराध्यत्यपि भैक्ष्यशुद्धिं ॥३२

यथा सुखं कौतुकि कौ तु किन्न स्वशर्मतोऽन्यासु दशायवस्नः ।
कुशो विशत्येव करोति हीयदक्लेशयन्वेशमपि स्वकीयं ॥३३
न चापलं शापलमात्तजन्तोस्तनोश्चनोद्वेगमृतोऽप्यमन्तोः ।
कदापि चेदासनवैपरीत्यं ध्रुवं विशोध्याङ्गमथापचित्यं ॥३४
लालाविलौष्टादिनिचूष्यको न सुधेति बुद्धया प्रवरो मघोनः ।
तदाशये चाशयमृत्स्वरेतस्त्यक्त्वा तु केभ्योऽधिकतासमेतः ॥३५
शरीरमात्रं मलमूत्रकुण्डं समीक्षमाणोऽपि मलादिभुण्डं ।
त्यजेदजेतव्यतया विरोध्यमेकान्तमेकान्ततया विशोध्य ॥३६
चित्तं कुवित्तेन तनोः समित्ते विकारभृद्वारभृतिस्तु तत्ते ।
पटेन यद्वद्व्रणवत्पदादिरङ्गादिना वेष्टयते खरीदी ॥३७
विकारवर्ज्यं वपुराविभाति महामुनेर्हं ममिवाभिजाति ।
यज्जातुषं चेन्मणिकारवारैः रज्येत किं मौतिकमप्युदारैः ॥३८
सुदर्पणे स्वास्यसमर्पणेन स्वैरं समालम्ब्य ममादरेण ।
विभर्त्ति तैलाद्यलकेषु वस्तु शृङ्गारसौंदर्यपरो नरस्तु ॥३९
क्षुरो न रोचिष्णुरवद्यजिष्णुरिरांतरिष्णुः सहजं चरिष्णुः ।
यूकादिशूकाचरणं न मुञ्चेत्कचा न चापल्ययुगेष लञ्चेत् ॥४०
परः परागः प्रकृतः प्रयागः स्फुरन्शरीरे सहजोऽनुरागः ।
सौवर्ण्यमायात्वधुनेति मे हि संस्नाति मृत्स्नाति शयेन गेही ॥४१
सदेहदेहं मलमूत्रगेहं ब्रूयांसुरामत्रमिवापदेऽहं ।
तद्योगयुक्त्या निवदेहपांशु यतिः श्रवत्स्वेदनिपाति पान्शु ॥४२
मृष्टाशनत्रं रुचिवित्कलत्रन्यस्तं त्वमत्रं ग्रसते समित्रं ।
सुविष्टरे स्पष्टतया प्रविष्टः सानुग्रहं सत्यजनेष्टिदिष्टः ॥४३

स्वपाणिपात्रं पुनरल्पमात्रं स्थित्वात्तिकात्रं परतन्त्रसात्रं ।
तत्राप्यथ त्रस्तविजन्तुमात्रं क भोजनं भोजनरञ्जनात्र ॥४४
एतावती स्यादुदरेऽभिवृद्धिर्मृष्टेऽशने सत्यसनेति गृद्धि ।
नक्तं दिवं व्यक्तमहो चरिष्णो भवित्यवसाविषयावि जिष्णो (?) ॥४५
स्फूर्तिस्त्वजग्धावृतभाति मूर्तिर्न घ्यानजूर्तीति सुगर्तपूर्ति ।
सकृत्समश्नातु यथा न दातुः कष्टं निजस्यावनतिश्च जातु ॥४६
सुचिर्वितं चर्वितमित्यतुष्यन्नदान्विशोध्यान्तरदान् मनुष्यः ।
सदारुणान्निष्कशदारुणापि कलङ्कयेन्मंजनतोऽप्यपापिन् ॥४७
श्रुतिस्तु सत्वानखिलान्समेति द्विजानवध्यान्स्मृतिरप्यथेति ।
द्विजान्वयेष्वेष निजान्वयेषु कुतोऽङ्गलिस्पर्शनमेतु तेषु ॥४८
अनल्पतल्पे तलुनस्त्रियामामङ्गीकरोतीव तु कान्तयाऽमा ।
जयत्यशर्करिलेशयानःकिलैकपार्श्वेन चिदेकतानः (?) ॥४६
स्वमास्यमादर्शतलेऽभिपश्यँस्तल्पोत्थितो नैश्यरहस्यमस्यन् ।
प्रवर्तते सज्जनतासमक्षमसौ मनुष्यो व्यवहारदक्षः ॥५०
साम्ये समुत्थाय धृतावधान इष्टेप्यनिष्टेऽपि कृतावसानः ।
अबुद्धिपूर्वं च समुत्थमागः संशोधयत्यध्वविदस्तरागः ॥५१
प्रयोजनाधीनकबन्दनस्तु विलोकते क्वापि जनो न वस्तु ।
मुद्धापि रामांघ्रिनलेषु दीनः रतेष्टिमान्योऽलिखिन्व्यलीनः (?) ॥५२
यतिस्तु तत्वैकमतिर्जिनादिष्वास्ते गुणाधीनतयाऽभिवादी ।
आदीनवादीनतया प्रसादीष्वेकान्ततः स्वान्त इहाप्रमादि ॥५३
स्तवोऽथ बोधस्य समाश्रमे तु निरीहतायाः स समस्ति हेतुः ।
मनस्वनः काञ्चन काञ्चनाप्य यो वा यदर्थी सतदभ्युपायः ॥५४

सम्पादयाम्यद्य तदेतदादावपूर्णमग्ताह्वि अहो प्रमादात् ।
तत्कृत्यमित्थं च तदित्युपायपरो नरोऽयं भविता सुखाय ॥५५
यतिः सदैवं यततेऽनवद्यपथा प्रथावानहमद्य सद्यः ।
त्यजामि यद् ह्यः स्खलितं ह्यसद्यं स्वस्तावदास्ते रुचिकृन्तमद्यं ॥५६
स्वबन्धने स्वार्थनिबन्धनेन शास्त्राणि शस्त्राणि वदत्यकेन ।
कदापि चेदाश्रयतीष्टसिद्धिकराणि तानीति नरेश बिद्धि ॥५७
निराश्रयत्वेन समाधिजानि समुत्तरस्तान्यथ दुःश्रुतानि ।
ध्यानात्यये श्रम्यति चागमेषु स्वभावसम्भावनयान्वितेषु ॥५८
तत्तत्समाधानविधावनेनादेहाय हा कर्मकरायते ना ।
विपद्यतेऽतीव विपद्यमानेऽमुष्मिन्नहो किन्तु रहो न जाने ॥५९
श्रमैकसम्वाहि किलाभिजल्पन्विनिर्वहत्याप्तकलत्रकल्प ।
ज्वलत्कुटीरोपममेतदङ्गमापत्त्वणे मोक्तुमुदेत्यसङ्गः ॥६०
स्वयरतः परतर्षयुद्धरोऽनुभवतो भवतोऽथ तरद्गुरोः (?) ।
समुदितो मुदितोऽपि नयोऽसकौ तनुचितोऽनुचितो हि महीशकौ ॥६१

आपातमात्ररमणीयमणीयसे तत्,
किंपाकवत्परमपाकरणीयमेतत् ।
पातुं नृपातुरयातु न यातु कश्चित् (?),
यद्वद्विपाकपटुकं कटुकं विपश्चित् ॥६२

अनन्यमान्या स्वगुणैकधान्या मुनेः सदा न्यायपथानुमान्या ।
जनस्य नौतिः परतः प्रणीतिसमीतिरास्ते विकलप्रतीतिः ॥६३
पादुके बसति कराटकाततेऽप्यस्तिचिज्जगति गुप्तये यतः ।
दीपिकेव जगतः प्रकाशिनी नाङ्गिनः स्वतलमन्नभासिनी ॥६४

धर्मस्वरूपमिति सैष निशम्य सम्य-
ग्नर्मप्रसाधनकरं करणं नियम्य ।
कर्मप्रणाशनकशासनकृद्धुरीणं,
शर्मैकसाधनतयाथितवान् प्रवीणः ॥६५

जग्मुर्निवृत्तिसत्सुखं समधिकं निर्दैशतातीतियं,
यस्मादुत्तमधर्मतः सुमनसस्ते शश्वदुद्भाषितं ।
कुज्ञानातिगमन्तिमं सुमनसा तेनार्जितः सिद्धये,
येनासौ जनिरायति. सकुशला पश्चाय तच्छित्तये ॥६६

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं धृतवरी देवी च यं धीचयं ।
काव्यमञ्जुतमेऽस्य विंशतितमः सप्ताधिकोऽत्येति यः,
सत्कर्तव्यपथोपदेशनपरो लब्धोऽप्यवर्गश्रियः ॥६७॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये सप्तविंशतितमः सर्गः



अथाष्टाविंशतितमः सर्गः

सदारुणोदितां वृत्तिं परिवर्त्य सतां पतिः ।
गुरोरनुग्रहप्राप्त्या समवापाच्छतामथ ॥१
राजतन्त्रपरित्यागात्समिनोदितवर्णता ।
पश्यतो हरतो जाताथानिद्रालोः स्वशर्मणि ॥२
स्फोटयितुं तु कमलं कौमुदं नान्वमन्यतः ।
सानुग्रहतयार्हन्तमुपेत्यासीत्तपोधनः ॥३
सहसा सह सारेणा-पदूषणमभूषणं ।
जातरूपमसौ भेजे रेजे स्वगुणपूषणः ॥४
सदाचारविहीनोऽपि सदाचारपरायणः ।
स राजापि तपस्वी सन् समक्षोऽप्यक्षरोधकः ॥५
हेरयैवेरयाव्याप्तं भोगिनामधिनायकः ।
अहीनः सर्पवत्तावत्कञ्चुकं परिमुक्तवान् ॥६
पञ्चमुष्टिस्फुरद्दिष्टि प्रवृत्तोखिलसंयमे ।
उत्थानमहाभागो वृजिनान्वृजिनोपमान् ॥७
कृताभिसन्धिरभ्यङ्गनीरागमहितोदयः ।
मुक्ताहारतया रेजे मुक्तिकान्ताकरग्रहे ॥८
प्रायश्चित्तं चकारैष विनयेन समन्वितं ।
स्वाध्यायसहितं धीरः परिणामानुयोगवान् ॥९
मारवाराभ्यतीतस्सन्नथो नोदलतां श्रितः ।
निवृत्तिपथनिष्ठोऽतिवृत्तिसंख्यानवानभूत् ॥१०

अनेकान्तप्रतिष्ठोऽपि चैकान्तस्थितिमभ्यगात् ।
अकायक्लेशसम्भूतः कायक्लेशमपि श्रयन् ॥११
नीरसत्वमथावाञ्छत्समीनपरिणामवान् ।
नदीनभावमापापि निर्जरोक्तगुणाश्रयात् ॥१२
नानात्मवर्त्तनोप्यासीद् बहुलोहमयत्वतः ।
समुज्ज्वलगुणस्थानग्रहोऽभूत्तन्तुवायवत् ॥१३
राजसत्वमतीयाय सत्वरं जितभावनः ।
कञ्जातमधिकुर्वाणस्तमोपहतया स्थितः ॥१४
दिन एव व्यभात्सद्यगोचरीकृतभक्षणः ।
रात्रावविधुरत्वेन स्थितिमा त्वेत्यथाद्भुतं ॥१५
अपूर्वकरणं कर्तुं स पृथक्त्ववितर्कतः ।
अप्रमत्तदशाविष्ट आत्मानं विचचार सः ॥१६
निवृत्तीच्छुरपीत्यत्र निवृत्तिकरणं गतः ।
जातुचित्पसंरायत्वमित्यतोऽस्य बभूव तत् ॥१७
स मोहं पातयामास समोऽहं जिनपैरितः ।
अनुभूतात्मसामर्थ्यश्चानुभूतदयाश्रयः ॥१८
अशिष्टमन्त्यजं स्पृष्टा वर्णतो यस्तदादिजः ।
तत्क्षणात्केवलं धृत्वा स्नातकत्वमगादसौ ॥ १९
प्रहाणाय तुरुष्कस्येत्यवाप गुरुणानकः ।
शान्तिसंस्थापनायैवं न रागोऽपि विधीयतां ॥२०
विलोमगामिनं चैव निजं मत्वा जिनोऽभवत् ।
सहिष्णुभावतः स्वीयां शक्तिमुद्योतयन्नयं ॥२१

विनतात्मभुवा किञ्च साम्प्रतमजपक्षिणा ।
अहिन्दुरयताऽवापि हिन्दुता तेन धीमता ॥२२
सुगर्तसमिताङ्गानां कृणानां तेन साधुना ।
निस्तुषीकरणायाथ धृता मुशलमानता ॥२३
अन्यापोहतया चित्तलक्षणेऽथ क्षणे स्थितिं ।
धृत्वा तथागतस्यापि तत्वन्ते न भविष्यतः ॥२४
ईशायितां त्रिसन्ध्यं हि स्वीचकार महामनाः ।
नयेनावर्णवादश्च जनेषु प्रतिपादितः ॥२५
आत्मादरयुतेनापि सान्तस्थोष्मविहीनता ।
समवलक्षणार्थेषु वैकल्यमधिगच्छता ॥२६
नमस्तुतोऽयमोंकारो विसर्गान्तस्वरूपतः ।
तेनानन्दमयेनापि रूपापभ्रंशवेदिना ॥२७
तपसाधिगतामेव काञ्चनस्थितिमादधत् ।
मुद्रोचितं प्रयोगेण कंकणं कृतवानसौ ॥२८
यो नाभिजातपत्रात्तं सिकत्वाथो मानसामृतैः ।
शिखाद्युतां नयन्वातं कल्पद्रुममिवान्वयात् ॥२६
यावद् घनं नेत्रवालं तावद् धान्यहितेरतः ।
विश्वतः श्रीस्थितिं मत्वा न तदातिससार सः ॥३०
प्रत्याहारमुपेतो वा यमिताद्युपयोगवान् ।
तत्रान्तरायमासाद्य धारणाख्यातिमादधौ ॥३१
जगतां विमुखेनापि सतां मार्गे सपक्षता ।
साधनेन बिना साध्यसिद्धिरासीदहोऽस्य तु ॥३२

अपत्रपाज्जगद्वृत्तात्संत्रस्तहृदयो भवन् ।
सम्पल्लवसमालब्धां योऽगच्छायामुपाविशत् ॥३३
भक्तात्मनास्फुरद् पाराधितान्नूपयोगिता ।
व्यञ्जनं वास्तुकोद्भूतलवणं तत्र सम्मतं ॥३४
क्षमाशीलोऽपि सन् कोपकरणैकपरायणः ।
बभूव मार्दवोपेतोऽप्यतीव दृढधारणः ॥३५
अप्यार्जवश्रिया नित्यं समुत्सवक्रमङ्गतः ।
पावनप्रक्रियोऽप्यासीत्तदाशौचपरायणः ॥३६
श्यामतां नान्वगाच्चित्ते सत्यानुगतवृत्तिमान् ।
यमादभीत एवासीत्संयमप्रभयान्वितः ॥३७
असन्तप्तान्तरङ्गोपि तपसि प्रणिधिं गतः ।
न त्यागमहितोऽप्यासीत्त्यक्ताशेषपरिग्रहः ॥३८
संगीतगुणसंस्थोऽपि सन्नकिञ्चनरागवान् ।
वर्णनातीतमाहात्म्यो वर्णितोचितसंस्थितिः ॥३९
श्रीयुक्तदशधर्मोऽपि नवनीताधिकारवान् ।
तत्वस्थितिप्रकाशाय स्वात्मनैकायितोऽप्यभूत् ॥४०
विनयाधिगतः सत्सु नयाधीनोप्यसौ सदा ।
सर्वारम्भवियुक्तः सन् योगमालब्धवान्मुहुः ॥४१
प्रायश्चित्तमधात्स्वस्मिन्प्रायश्चित्तातिदूरगः ।
सोऽहमित्यप्यनुध्यायन्नहंकारातिगोऽभवत् ॥४२
हंसोऽप्यवापि काकस्य रीतिः सौवर्ण्यभागिति ।
प्रतिलोमविचारेण सोहमित्यनुवादिना ॥४३

समारोहक्रमोप्येवं नयतो वस्तुसम्विदः ।
तस्यासीत्सकलादेशो विधुतादृष्टभावतः ॥४४
नभोगतत्वसंग्राही नित्यमेव निरम्बरः ।
परमागमतल्लीनः परमामहरन्नपि ॥४५
आदिनाथोक्तमादेशं गतोऽनादिस्थलं दधत् ।
अजपोक्तविधिं वाञ्छन् स जयेऽभूत् परायणः ॥४६
शिवार्थं वृषमारूढः सदन्नपदमाश्रितः ।
सोमलब्धोत्तमाङ्गोऽपि यदहीनगुणाश्रयः ॥४७
ज्ञानार्णवोदयापासीदमुष्य शुभचन्द्रता ।
योगतत्वसमग्रत्वभागजायत सर्वतः ॥४८
सुरतोचितचेष्टस्य नरतासु गुणस्थितिः ।
समुल्लंघनभाजोपि विनयाचारधारिणः ॥४९
सुमता स्वीकृता तेनासुमताप्यधुना पुनः ।
कुलता सुलता येनामानिमानि जनुः कृतं ॥५०
सजताप्यजतावापि येनात्मनि नयेन तु ।
निश्चयेन चयेनापि भूर्विभूक्तिभृता तदा ॥५१
देहेऽपि निर्ममत्वेन ममत्वे नो व्यथाकरः ।
न तत्वमपि बिभ्राणस्तत्वमपि गुरूक्तिषु ॥५२
समरूपगतां वृत्तिं दधानो न लताश्रितां ।
वारितापक्रमोप्येवं नतरूपगतिं दधौ ॥५३
मरुताश्रितसम्पत्तिमिच्छताथ स्वरङ्गता ।
साधूरीक्रियते स्मैवं निर्जराशयसंजुषा ॥५४

सज्जातस्यास्य क्लृप्तिश्च विटपत्वातिगास्य तु ।
सदारतास्थितिस्त्यक्तदारस्यापि सदध्वनि ॥५५
सनस्तेनोपकाराय विधिरङ्गीकृतः सदा ।
भीमयमङ्गतानां च भीमुपेदमिहाद्भुतं ॥५६
अग्रे सतस्करद्युतिं लेभे नादत्तमागपि ।
न दैवस्यानुमोदाय सदैव गणभृच्च सन् ॥५७
आत्मवृत्तिरखातत्वभृता गौरविणीकृता ।
तेनाविकृतमित्येवं वृषभावमुपेयुषा ॥५८
पूरणायेत्यथोवाच्छन् घटकं प्राप्य चात्मनः ।
वनस्थानमभिज्ञोऽभूत्स प्रमोचोपसंगृही ॥५६
आत्मानमभ्युपेतस्सन् गत्वाहमिति साम्प्रतं ।
सम्प्राप वर्णनातीतं सम्बिचत्वं समन्ततः ॥६०
विधोरमृतमासाद्य सन्तापं त्यजतोऽर्कतः ।
पूरणाय प्रभातोऽपि सन्ध्यानन्दी चितश्रियः ॥६१
सावश्यकोऽपि गुप्तिस्थस्त्यक्तर्द्धिश्च महर्द्धिकः ।
मनःपर्ययसंरोधी मनःपर्ययमाप्तवान् ॥६२
स निर्ग्रन्थोऽपि सम्प्राप्तनिखिलग्रन्थविस्तरः ।
गणितामाप देवस्य गणितातीतसद्गुणः ॥६३
सुदयानवलोप्यत्र न दयानवलोऽङ्गिनां ।
अलीकविप्रियोप्येष रेजे नालीकविप्रियः ॥६४
तपःश्रियाश्रितोप्येष जगदातपवारणः ।
निस्तृष्णोऽपि सदैवासीदमृताप्तिपरायणः ॥६५

द्वादशात्मतपनक्रमं विदन्नष्टविंशमगुणादरीतरां ।
सम्व्रजञ्जगति तारकाशयं प्राप्तवानिति दिगम्बरप्रभां ॥६६
स्वष्टदलं कमलं मलयन्ती कौमुदमत्कलमुत्कलयन्ती ।
वृत्तिमवन्द्वणदां स्वकलाभिः सोऽभिरराज सुधांशुसनाभिः ॥६७
सकलं सकलङ्कमात्मनोपहरन्मानहरो हरद्विषः ।
समवाक् समवाप योगिभिः प्रतिपत्तिं प्रतिपत्तितिश्रितः ॥६८
चक्रिस्त्रीन्दुसुभद्रयार्पितत्तमादेशा सुशेषावती,
ब्राह्मीदेशितमेषितं सुमतिभिस्तप्त्वा समग्रं सती ।
दोषायात्र कलत्रतेति किल संसिद्धेः समृद्धयेकभूः,
सम्बिभ्रच्युतमच्युतेन्द्रविभवं सल्लोचना चान्वभूत् ॥६९
संसारतोभूद्भवतोऽन्यरूपम्य परस्य हि ।
के चामृते क्रियाधातुः पुनरुक्तविधायिनः ॥७०
तज्जन्मोत्थितमित्थमुन्मदसुखं लब्ध्वा यथापाकलि,
पश्चात् सम्प्रति जम्पती अदमतामेवं हृदा चारुणा ।
पञ्चाक्षाणि निजानि निर्मदतया तद्वृत्तमत्युत्तमं,
मंक्षूद्गीतमिहोपवीतपदकैरित्युत्तृणाङ्कं मम ॥७१

(तपःपरिणामश्चक्रबन्धः)

यं पूर्वजमहं वन्दे स वृषोत्तमपादपः ।
एतदीयोपयोगायेयं सम्पल्लवता मम ॥७२
इतीयं कवितावल्ली भूयः पल्लविता रसैः ।
त्रिवर्गं सन्निपातघ्नं फलताद्वलतां सतां ॥७३
अहो काव्यरसः श्रीमान्यदस्य पृषता व्रजेत् ।
दुर्वर्णतां दुर्जनस्य मुखं साधोः सुवर्णतां ॥७४

कथाप्यवितथा जीयादात्मकल्याणकारिणी ।
परिक्लेशकरी वार्ता भूरिभिः क्रियते जनैः ॥७५
गुरोरनुग्रहः सेतुः स हेतुर्मे तु जायते ।
प्रबन्धवारिधेः पारं गतो येनास्मि हेलया ॥७६
प्रसादात्पूज्यपादानां शब्दार्णवमयं गतः ।
लघुप्रक्रियया ख्यातो यातु किं गुणनन्दितां ॥७७
इहोक्तवृत्तरत्नानां परीक्षामुखतां दधत् ।
माणिक्यनन्दितामेतु योऽकलङ्कधियं गतः ॥७८
पूर्वजानां सतां सूक्तं समाराध्यापि सुस्थिता ।
मदीयोक्तिर्न किं स्वाद्या गुडाज्जातेव शर्करा ॥७९
न चक्रमानन्दमुदाहरन्तीममूनि चेच्छ्रीकवितां श्रयन्ति ।
सुधामपि प्रार्थयितुं जयन्ति पुनर्न भोगाश्रयिणो जगन्ति ॥८०
घटिका घटिकार्थस्य समयः समयोऽसकौ ।
परत्राणिः परत्राणिर्भास्करो भास्करोप्यहो ॥८१
सालङ्कारा सुवर्णा च सरसा चानुगामिनी ।
कामिनीव कृतिर्लोके कस्य नो कामसिद्धये ॥८२
कवितायाः कविः कर्ता रसिकः कोविदः पुनः ।
रमणीरमणीयत्वं पतिर्जानाति नो पिता ॥८३
सद्वृत्तकुसुममाला सुरभिकथाधारिणी महत्येषा ।
पुरुषोत्तमैः सुरागात्सततं कण्ठीकृता भातु ॥८४
यदालोकनतः सद्यः सरलं तरलं तरां ।
रसिकस्य मनो भूयात्कविता वनितेव सा ॥८५

सदुक्तिमपि गृह्णाति प्राज्ञो नाज्ञो जनः पुनः ।
किमकूपारवत्कूपं वर्द्धयेद्विधुदीधितिः ॥८६
कवयो जिनसेनाद्याः कवयो वयमप्यहो ।
कौस्तुभोऽपि मणिर्यद्वन्मणिः काचापि नामतः ॥८७
गुणभद्राः कथयन्ति कथां यां तत्र कुतः प्रवृत्तिर्मम भूयात् ।
गुरुमनुगच्छन्सूक्समवाये मालिकस्तनुरनुग्रहमेति ॥८८
विशेषयन्कथाभागं कविः कश्चित्कलागुणैः ।
पिवन्तः पर्वतापायं कपयोऽन्ये सहस्रशः ॥८६
लोके समन्तभद्रोऽसौ प्रबन्धो जयताच्चिरं ।
सम्भवन्नकलङ्कश्च विद्यानन्दः शिवायनः ॥६०
महापुराणं मधुरं विलोड्य क्षीरवन्मया ।
नवनीतमिवारब्धं प्रीत्यै भूयात्सतामिदम् ॥६१
गुणविगुणविदन्तु स्रागपि ख्यापयन्तु,
विशदिमविशदंशाः पेयताङ्केऽत्र हंसाः ।
अशुचिपदकतुष्टा आत्मघोषाः सुदुष्टाः,
किमिव न हि वराकाः काकुमायान्तु काकाः ॥६२
कार्पासविशदाः सन्तो नानापत्तिसहा अहा ।
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये ॥६३
अपरार्तिपरत्वतः सुवर्णं बहु सन्तापय भो सुवर्णकार ।
अमुकस्य गुणोऽतिरिच्यतेऽस्मात्तव तुण्डे खलु भस्मसन्निपातः ॥६४
आशिक्षाधारभूतेभ्यः शीलवृत्तेभ्य उत्तमं ।
कथमप्यैमि गुर्वीकः शस्यसम्पत्करं खलं ॥६५

गवामाधारभूतास्ते यद्यपीह सदङ्कुराः ।
खलं लब्ध्वा भवन्ती मा रससंचरणक्षमाः ॥९६
विरजाः प्रभुरज्ञानध्वान्तभित्परमारवः ।
परमारवतान्मोहनिद्रालुं स प्रजां रविः ॥९७
राजते योगदक्षो यः सामायकनिलिम्पिनः ।
सृजत्वयोक्तिदः प्रायः स मां पाकं कलिस्थितं ॥९८
नयमानपरं स्वानं न स्वालम्बाणिमान् पुनः ।
स पुमान्याति स वननवसं प्रशमायन. ॥९९
जीवानां जीवनाधारस्तदचरयुगं प्रभो ।
तवास्माकं मिथो भूयादनुलोमविलोमतः ॥१००
विनमामि तु सन्मतिक्रमकामं धामितकैमहितं जगति तमां ।
गुणिनं ज्ञानानन्दमुदासं रुचां सुचारुं पूर्तिकरं कौ ॥१०१
जयतात्सुनिबन्धोऽयं पुष्यन्सन्निगलं चिरं ।
राष्ट्रं प्रवर्ततामिज्यां तन्वन्निर्वाधमुद्धुरं ॥१०२
गणसेवी नृपो जातराष्ट्रस्नेहो वृषैषणां ।
वहन्निर्णयधीशाली ग्राम्यदोषातिगः क्षमः ॥१०३
स्थिरत्वं मनुजाश्चेतः श्रीमन्तोवन्तु सूक्तिमत् ।
चमत्कुर्याज्जगन्नेतुर्भुवनेषु वृषो निजः ॥१०४
नित्यमभ्येयं संसर्गं महतां शुभकर्मसु ।
तताधीस्स्याच्च चित्तश्रीर्भूयाच्छ्रीश्रुततत्परा ॥१०५
मनागपि न संचारः कुक्षेषु मम धीमतः ।
प्रसादादर्हतां शम्बधोरिणी स्यादिति स्वयं ॥१०६

श्रयणीयास्तु का शुद्धा ब्रह्मविद्धिः किमर्जितं।
विद्वद्भिः का सदा वन्द्या मण्डितं तैः किमस्तु नः ॥१०७
किमन्यदुच्यतामत्र सफलं समितिस्थले।
सदुक्तेर्वाचनं यावदाद्यन्तं जन्मिनो भवेत् ॥१०८
जनयतु पुरुरभिरामज्येष्ठो रावणावनसरी पुनराग-
स्तोरण च चातुयभुवा जटितं जनतायतभूनीराग।
मधुर आदिवागडिम्बकरणकथाविसरशुचिताततिसुज्ञा,
लोकचक्रनाथः स्वमयं नवलोऽरं ध्वनिशिवं बुधमनस्सु ॥१०६
पुरुषपदार्थधरालोकमिते विक्रमोक्तसम्वत्सरे हिते।
श्रावणमासिमितिं प्रतियाति पूर्णां निजपरहितैकजाति ॥११०
श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं।
तत्काव्यं लसता स्वयंवरविधिश्रीलोचनाया जय-
राजस्याभ्युदयं दधत् वसुदगित्याख्यं च सर्गं जयत् ॥१११

नोटः—१ एतद्वृत्तस्य एकान्तरिताक्षरैः कवेः प्रशस्तिर्निगच्छति

—— ——

जयोदय महाकाव्यस्य शुद्धयशुद्धिपत्रम्



पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२	३	स मासाद्य	समासाद्य
३	६	घ निष्ठा	घनिष्ठा
४	११	मद्दुर्हृदां	यद्दुर्हृदां
५	१८	संसारणात्	संसरणात्
५	४	द्रुतमीर्षमार्य ?	द्रुतमीर्षयार्य !
५	५	गोधं	गोघं
५	१७	मन्तु मदद्वराणां	मन्तु-मदद्वराणां
६	६	सौराष्ठवस्य	सौष्ठवस्य
६	१४	दम्बुदञ्चं	दम्बुजञ्च
६	२५	चपल्लत्व	चपलत्व
८	१३	संखन्यगुणो	शंखस्यगुणो
६	१०	मूर्तयातं	मूर्तया तं
१०	१२	मङ्गीचकार	मङ्गीचकार
११	१८	विभवोः	विभवाः
१५	४	परिपूर्णास्थिनिः	परिपूर्णास्थितिः
१५	७	नृणासयेमार्पशीति	नृणा-मार्परीति
१५	८	द्रुद्रु खुर्जने	दद्रुखुर्जन

पृष्ठा	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१५	१४	पौत्रिका	पैत्रिका
१५	१८	मय्युराश्रय	मय्युपाश्रय
१६	१९	धर्मकमसु	धर्मकर्मसु
१६	२१	वाष्ट वद्	वाण्ट वाद्
१६	२१	धासव	धासव
१६	२२	पाशवेद	पाशवद्
१८	१२	रमतीर	रमितीर
१८	१४	अनपापिनी	अनपायिनी
१९	७	सम्पठेत्	सम्पठेत्
१९	२०	सदसदीयते	सदसदीच्यते
१९	२२	पदवी	पदवीं
१९	२२	विशुद्ध	विशुद्धि
२४	१९	तानवोमिति	तानवोपमिति
२५	३	रससान्	रसतान्
२७	९	यङ्गा	भङ्गा
३२	१२	दृष्टिमान्	इष्टिमान्
३३	८	तदास्या	तदास्मा
३३	१६	पथामाततया	पथायाततया
३३	१९	वैरीशवाशिफरराजि	वैरीशवाजिशफराजि
३४	११	मस्थितस्य	प्रस्थितस्य
३४	१२	कुशलं	कुशल

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
३४	१३	वपत्त्रेऽपि	विपत्त्रेऽपि
३४	१४	अथत्रपतया	अपत्रपतया
३५	१५	रपूत्रे वा .	रपूर्वें वा
३६	६	वसन्तो	वसन्ते
३७	२	साच्व्यायंतो	साच्व्या यतो
३७	१४	मूर्धनिघूर्णा	मूर्धनिघूर्णा
३८	१	न्ये बिहुला	म्यो बहुला
३८	१०	मानसः	मानः सः
३८	१६	भेदकं	भद्रकं
३८	१६	सुभ्रषो	सुभ्रु वो
४०	३	तन्ता	तान्ता
४०	१४	सुद्दक सुस्रक्	सुदक्कुसुमस्रक्
४०	२१	मुदि रोमानस	मुदिरो मानस
४१	१	संस्त्रोतया	संस्त्रोतसा
४१	५	समवाप	समवाप्य
४१	१३	मनीपिणां	मनीषिणा
४१	१४	मग्रगयिना	मग्रगाभिना
४१	१५	तिलकोचितः	तिलकोञ्चितः
४१	२२	शाचिषां	शोचिषां
४२	१	मज्जुला	मञ्जुलः
४२	१४	परपराद्वैरी	परराड्वैरी

पृष्ठा'	पंक्तयः	अशुद्धा.	शुद्धाः
४३	४	तेनाराट्	तेनारात
४३	५	तत्रागतं	तत्रागतं
४३	६	स्वथाव।धिपः •	स्वभावाधिपः
४४	१२	नु या	नु मा
४४	१४	यश्चतुष्पथक	यच्चतुष्पथक
४४	१८	नप्युपचारः	नाप्यपचारः
४५	१	हिमवान्	हि भवान्
४५	६	निर्निमिन्त्रणतया	निर्निमन्त्रणतया
४५	१५	आग्रतं	आगतं
४६	४	ग्लौकाः	मौकाः
४६	७	मयापः	मपापः
४६	२१	भर्त्तर्मानसं	भर्त्तु र्मानसं
४६	१७	मपात्	मयात्
४८	६	रसानुपभोग्यः	रसात्रुपभोग्यः
४८	७	मुवेतः	मुपेतः
४८	१३	फुल्लदान	फुल्लदानन
४६	१८	आपगामगत	आपगापगत
४६	१०	युवतीर्या	युवतिर्या
५०	२	तमिस्त्राभ्यापुष्ट	तमिस्त्राभ्यामपुष्ट
५०	६	वत्संस्मृतये	बल संस्मृये

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
५२	१०	याप	यांषुः
५२	१५	खचिसानि भमानि	खचितानि मतानि
५२	१६	भवादृशापि	भावदृशापि
५२	१७	तत्सुख	तत्सुप
५३	१	आत्मता	आत्मसा
५३	५	सा मग्नौ	स ममौ
५३	१४	वगः	वर्गः
५६	१५	कुतं नगल	कृतं न गल
५७	४	व्यवहृता	व्यवहृतो
५८	१	लमार्जैः	समार्जैः
५६	११	विषयात्तग्रजं	विशात्तदग्रजं
६१	५	नभ्युगपमम्य	नभ्युपगम्य
६१	२२	मिदंघ्रि	मदंघ्रि
६२	८	सुदश्रुवाहा	सुदश्रुवा हा
६३	१६	स्वजनजित	स्वनजित
६३	८	वरदासान्वसमायात्	स्ववरदा सास्तस मायाम्
६३	८	शुभाषाः	शुमायाः
६४	६	अनषन्ताम्बर	अमयन्ताम्बर
६४	१२	षरभे	चरथे
६४	१३	न मावर	नभादर
६४	१६	तवामरतेः	तवाथ रतेः

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
६५	१६	च भवानिह	चयवानिह
६६	१५	नमति	नयति
६७	६	वशैमितमिञ्जितं च चारायाः	वशैर्मितमिञ्जिलं-वारायाः
६७	१४	सखि	सुखि
६८	१	रसनाभिके	रसनाभिक नाभिके
६८	५	सरात्	सारात्
६८	७	तश्च	ततश्च
६८	१५	मद्गज	यद्गज
६९	६	हलगज	हतगज
६६	६	नमि	नपि
७१	२०	वारिजलैः	वासिजलैः
७३	१	अन्नधराधीश्वराः	अत्रधराधीश्वराः
७५	१८	विरे स	विरेत
७८	२	सम्यगुल्कलितं	सम्यगुत्कलितं
८२	६	दशोविष्टो	दशाविष्टो
८२	१५	करणे	कारणे
८३	४	पद्यत्	पादयत्
८३	७	समेथ	समेघ
८३	६	सेजसा	तेजसा

पृष्ठाः	पङ्क्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
८४	१४	मृशाल	मृणाल
८४	२०	करियरीति	करिपरोति
८५	२	धनोचिते	घनेन्चितें
८६	७	संगव्रणैः	संगरव्रणैः
८६	१३	व्यावशे	व्यनशे
८७	१	कारिणि	कारिणो
८८	१	पूष्यतिः	पुष्पति
८९	२	भकत्र	मेकत्र
९२	५	विलूनि	विलून
९२	८	निकम्भा	निकुम्भा
९२	२०	वक्रौ	वक्रै
९३	१५	प्रवतमानन्तु	प्रवर्तमानन्तु
१००	१७	भुवीदृशी	भुवीदृशी
१००	२२	कौकुरुते	कोकरुते
१०१	१६	कथामिवा	कथमिवा
१०१	१७	ग्तुतमतास्तु तदैव शं	स्तुतमतोऽस्तु तदैव वर्श
१०२	११	मच्चुमुगच्यदः	मश्रुमुगच्यदः
१०२	१७	महीपतुजोविलसत्	महीपतुर्विलसत्
१०३	३	तापरपेक्ष	तापरयेक्ष
१०३	१३	मृदुनादि वा	मृदुनादिना
१०४	१	तर्कौ	तर्कै

पृष्ठाः	पङ्क्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१०५	१६	मयितुं	ययितुं
१०७	६	वा मपि	वा गपि
१०७	१४	सोरभावममनेन	सोरभावगमनेन
१०६	१६	यथादरात्	घृतादरात्
११०	'	नगरीयसा	च गरीयसा
११०	२	मृदीसा	मृदीयसा
११०	१०	मोक्तस्रजां	मौक्तिस्रजां
११०	१०	रचिभि	रुचिभि
१११	५	भवच्च	भवञ्च
१११	१२	नतभ्रुस्तयोः	नतभ्रु वस्तयोः
१११	१३	शील।म्भ	शीतलाम्भ
१११	१७	जरतीतीष्टि	जरतीष्टि
१११	१८	मुञ्चलद्रुचः	मुञ्चलद्रुचः
१११	१८	प्रोच्छनकेत	प्रोच्छनकेन
१११	२१	प्रावृडमृत्	प्रावृडभृत्
१११	२२	मुज।म्बरा	मुज्वलाम्बरा
११२	१०	विधत्व	विधवत्व
११२	१३	कंजलस्य	कज्जलस्य
११२	१८	तत्समरूपणी	तत्समरूणी
११२	१६	महर्पतां	महर्घतां
११३	७	यन्त्रिक	यत्रिक

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धा.	शुद्धाः
११३	१३	श्रियमति	श्रियमेति
११४	१५	कपोलने	कपोलके
११५	४	सन्दिच्चया	सन्दिदृक्षया
११५	१४	साणृषत्	सास्पृषत्
११५	२०	चित्तमूहे	चितमूहे
११६	१७	सद्भिराशसितः	सद्भिराशासितः
११६	१७	भुवनं	भवनं
११६	२	योद्धुं	योद्धुः
११६	६	वक्र	ववज्र
१२२	७	सन्द्रस	सद्रस
१२२	१५	मामिः	माभिः
१२३	११	भुजात्र भूतः	भुजाभि भूतः
१२३	२१	शिरस्तु	शिरस्सु
१२४	१५	गुरोर्भवत्यः	गुरो र्भवान्यः
१२६	१०	न्युच्छ्रभता	न्युच्छूभता
१२६	११	स जयन्तु	सञ्जयन्तु
१२६	१४	यमकस्तु माथोः	यमकस्तु भाजोः
१२७	१०	सौन्दयसिन्धोः	सौन्दर्यसिन्धोः
१२८	६	पौड	पौढ्र
१२६	८	अवत्य	अश्वत्य
१२६	१०	रथां	व्रथां

पृष्ठा.	पङ्क्य.	अशुद्धाः	शुद्धाः
१३१	११	सुवेषु	सुमेषु
१३१	१५	स्वरुक्	स्वारुक्
१३१	२०	स्मृत्मैव	स्मृत्यैव
१३२	१	पश्चाय	पश्चाप
१३२	५	कौतुतधृक्	कौतुकधृक्
१३२	१६	चश्चयते	चञ्चूयते
१३३	११	भीसुदृशः	श्रीसुदृशः
१३४	४	देवऽतेम्बा	देवतेऽम्ब
१३४	८	मेत्तु	भेत्तु
१३४	११	च्छयतया	च्छायतया
१३४	१२	समतं	समेतं
१३४	१२	मेतात्	मेतत्
१३४	१६	यर्तते	वर्तते
१३५	६	दियमव	दियमेव
१३५	१४	चातकापनोदं	चातकायनोदं
१३५	१८	मङ्कितैकनम्ना	मङ्कितैकनाम्ना
१३६	६	विलसत्रिवलीष्टि	विलसत्त्रिवलीष्ट
१३६	६	पुष्या	पुष्पा
१३६	१२	त्रिपरस्त्रीति	त्रिपूरषीति
१३७	८	जायते	जयते
१३७	१६	सेतु	केतु

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१३८	४	दोहा	
१३८	११	समुदङ्कर	समदङ्कुर
१३८	२१	दर्धाष्ठविन्दुः	दधीष्टविन्दुः
१३८	२२	जिनपाग्रो	जिनपाग्रपो
१३९	११	शास्तां	शस्तां
१४०	१	शुमायाः	शुभायाः
१४०	३	मणिरस्या	पाणिरस्या
१४०	७	मनसोःश्रियां	मनसोरप्यनसोःश्रियां
१४०	११	स्त्रयमाणयोः	स्त्रपमाणयोः
१४०	१५	तदान्त	तदात
१४०	१५	दश्रुतजातं	दश्रु जातं
१४०	१६	दधिकधिकं	दधिकाधिकं
१४१	१६	कारणनि	कारणानि
१४१	१६	केरणुजानि	करेणुजानिः
१४१	२०	शर्मलेखिनी	समलेखनी
१४३	१४	दुरतौघ	दुरितोघ
१४३	१६	पंक्ति के बाद के छुटा हुवा पाठ—	

सहसा सहसापि कः समायाः मनसः किं पनमः प्रवर्जनाय

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१४४	१०	कमनां	कामनां
१४४	१७	वलयच्छतः	वलयच्छलतः
१४५	१६	कञ्चक	कञ्चुक

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१४६	१९	पृतञ्जले	पतञ्जले
१४७	८	जायत	जायात
१४९	१	जग	गज
१४९	२	नय	नया
१५	४	मत्तस्	मतम्
१५०	८	त्थपय	त्थापय
१५०	९	यष्टिस्	यष्टिकस्
१५०	१६	ऽनिलेस्	ऽनिलम्
१५१	१३	द्विषतं हि मनांसि शित	द्विषतां हि मानांसि तद्ध्वजे
१५१	१४	विभयेन	भयेन
१५३	१५	महोवलाय	मदोवलाय
१५४	६	भात् शाड्	भाच्छाड्
१५५	२	नु	तु
१५५	६	शङ्कनापि	शङ्कनपि
१५७	१७	प्रथुलस्नी भो	प्रथुलस्तनी भो
१५८	६	द्विलितं	दिगलितं
१५८	१२	केरेणु	करेणु
१६१	२	सुलालिता	सुललिना
१६१	१०	पुरषे	पूरुषै
१६२	२२	दष्ता	दृष्ट्वा

पृष्ठा-	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१६५	६	सुकोशि	सुकेशि
१६५	१३	गम्भीरं	गभीरं
१६५	१७	संकवितायाः	संकलितायाः
१६६	७	मालिता	मलिता
१६६	२०	मृष्ठु	मृष्ठ
१६६	२१	करन्दे निशि येव	करन्दाति शयेन
१६६	२२	यूत्कुरुते	पूत्कुरुते
१६७	३	सुषुमा	सुषुमा
१६७	६	हरिततया	हरितया
१६७	११	समासीनम्	समानीम्
१६८	१७	सम्भवद्	सम्भवाद्
१६८	२०	सुतराङ्गिता	सुतरङ्गिता
१६९	४	तृड्भिः	तृड्भिः
१६९	६	दर्त्त	दार्त्त
१६९	११	चराङ्गि	चरङ्गि
१६९	१५	राङ्गिणा	रङ्गिणा
१६९	२२	रनु···पंतयेव	रनुबद्धे पंतया
१७०	१९	ऽययं	ऽह्ययं
१७१	५	मत्रैव	भत्रैव
१७१	१४	मालदस्य	मालदास्य
१७२	१६	सुमुद्दतीति	समुद्धतीति

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१७३	१	निकाप्या	निकाय्या
१७३	१०	तदि······	तदिन्दुदेवः
१७३	१६	कंद्रो	कन्द्रो
१७३	१७	र्भिमकिता	र्भमकिता
१७३	१८	राङ्गिता	राङ्किता
१७४	१८	प्रतिषेधदवश्यः	प्रतिषेधदृश्यः
१७५	४	कोकिक्लाना	कोकिकाना
१७५	१८	मरणा	भरणा
१७६	१	तण्डले	तण्डुले
१७६	१	तनुशर्म	ननु शर्म
१७६	३	स्वेनोड्ड क	खे नोडुक
१७६	५	थुल्कृतानि	थूल्कृतानि
१७६	८	निमानिमानि	निमानि भानि
१७७	२	आस्थं	आस्यं
१७७	१२	आद्धाश	आकाश
१७८	६	वद्ध माना	वर्द्ध माना
१७६	४	स्मारभंते	समारम्भन्ते
१७६	१०	व्यच्छेदि	व्यक्षादि
१८१	२	चाश्र	चाश्रु
१८१	१५	तमागमेका	तमागतमेका
१८६	१६	जघन	परिधान

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धा	शुद्धाः
१८१	१८	के बाद छुटा हुवा पाठ— निर्णयितुं ता नायके रमा पूरमाः शारदस्य रश्मिभि रासल्यं सर्वगं	
१८५	३	चेमो	चेपो
१८५	११	किन्न	किन्तु
१८७	४	सत्कर्मण	सत्कार्मण
१८७	१२	मानान्तु	भानान्तु
१८७	१७	मधुनाय	मधुनाप
१८७	२०	पादो	यादो
१८८	१८	चिलास्मि	किलास्मिन्
१८९	१७	पाति	पति
१९४	२२	तदादासा(?)सीस्मियेन	तदादाय स सिस्मियेन
१९५	१४	मिदा	भिदा
१९६	२	कुड्नलान्तं	कुड्मलान्तं
१९६	११	यमुत्तानित	समुत्तनित
१९६	१४	स्तेनेन	स्तनेन
१९७	११	सन्मतीतिः	सम्प्रतीतः
१९७	१२	रदाद्दर्शं	रदाद् दृशं
१९७	१४	कण्डले	कुण्डले
१९७	२०	कान्कित	कल्कित
१९८	१६	सुमाल्लं	सुमास्त्रं

पृष्ठा.	पंक्तयः	अशुद्धा	शुद्धाः
१६८	१७	मस्मादि	मस्माद्दि
१६८	२०	प्रसोर	प्रसारे
२००	८	सम्मद् गतामति	सम्माङ्गतामेति
२००	८	मुक्तस्तकिन्नरामो	मुक्तस्तव किन्नरा मे
२००	१४	रतेरिना	रतेरिव
२०१	१	व्याञ्जन	व्यञ्जन
२०१	१०	सात्वयितु	सान्त्वयितु
२०३	१२	रोचिया	रोचिषा
२०४	६	समान्वितभितः	समन्विताभितः
२०४	८	श्रणी	श्रेणी
२०५	५	घायाप्युत	धामाप्युत
२०७	१	मत्सवाय	मुत्सवाय
२०७	६	विमात्त	विभात
२०८	१४	पुष्पिरणी	पुष्पिणीं
२०८	१७	म्यान्	स्यान्
२०८	१८	तटौ निपतन्	तटैर्निपतन्
२१०	१०	मरन्तु	भरन्तु
२१३	१२	आमत्रणार्थ	आमंत्रणार्थ
२१८	८	एम्रः	एषः
२१६	२	देषो	देषोः
२२१	७	चम्बनं	चुम्बनं

पृष्ठा.	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२२१	१४	सान्निनाय	सन्निनाय
२२१	११	पत्रांकाभा	पत्रांकभा
२२२	७	गन्ता	गन्ता
२२३	१	धरित्री	धरित्रीं
२२३	१२	आशीच्चरगाण्डूष	आसीच्च गण्डूष
२२४	३	न्नमा	न्निभा
२२५	४	त्वन्निवेहोम्रुर्धमि	त्वनिर्हहोमुर्धमि
२२५	१४	युक्तया वा	युकृत्वाया वा
२२६	११	स म्माननीयो	सम्माननीयो
२२६	१७	वाञ्छत्र वेः	वाञ्छत्रवेः
२२७	१८	मन्त	मत्त
२२८	१८	मतक्रमन्तः	मतंक्रमन्तः
२२८	४	समथनः	समर्थनः
२२९	२३	निरोति	निरेति
२२९	१६	पतेतु	पतते तु
२३०	५	सवत्	स्रवत्
२३०	२२	पृष्ट	दृष्टु
२३१	२	प्रोदनायघटनाय	प्रोद्घटनाय
२३१	३	व्रजगतस्	व्रजतस्
२३१	१०	वर्द्धे	वार्द्धे
२३२	१४	वाघ	वाद्य

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२३२	१८	रपामीन्	रपाषिन्
२३२	१६	स्त्रियां	स्त्रियाः
२३६	६	नवता	नवका
२३६	१०	वाश्रिसृता	वाभिश्रिता
२३७	१६	यच्चिणी	पच्चिणी
२३८	१	भृत्यतेः	भृत्पतेः
२३८	२	मालिनः	मलिनः
२३८	२	नितान्त मिन्	नितान्तमिन्
२४०	११	कोऽमित	कोऽभितः
२४२	५	सहममस्था	साहसमस्या
२४२	१६	प्यद्यापदं	घापदं
२४४	८	यात् क्रिया	यत् क्रिया
२४४	६	स्तवः	स्तव स्तवः
२४५	४	सम्मधिगतं	सममधिगतं
२४५	६	लरङ्ग	तरङ्ग
२४६	६	धराञ्च	धराश्च
२४६	१२	विराय सा	भिराप सा
२४६	१५	सयस्सया	सयस्समा
२४६	१६	कारिता	कारिणः
२४७	११	केक	केतु
२४८	१८	मेप्य	मेत्य

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२४६	१४	चोकाचीव	चोद्घ काचवि
२५०	१७	हितकद्	हितकृद्
२५१	३	कुलाद्रि	कुलाद्धि
२५१	६	श्रव	श्रम
२५१	१०	प्रस्फुरा	प्रस्फुटा
२५१	१८	पद्धतावीष्टवो	पद्धतावीष्टयो
२५१	२१	रामनाम	दामनाम
२५१	२१	सेहुक्नि	सेहूकृति
२५२	६	तालकोनागरी	तालकांनगरी
२५२	१०	पद	पाद
२५२	११	सम्पकत्	सम्पर्कत
२५२	१३	यान्तरीयकं	मान्तरीयकम्
२५२	२२	तति	तर्तिं
२५७	१६	माघस्याप्यसानं	माघस्याप्यवसानं
२५७	१७	सश्वित्रा	सचित्राख्या
२५८	५	सकुचति	संकुचति
२५८	५	यः	माः
२५८	६	सकोचं	समकोचत्
२५८	७	रोमश्च	रोमाश्च
२५८	११	नवद्यां	ध्वनवद्यां
२५६	१६	पदपांग	यदपाङ्ग

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२६०	१३	कराटकितापि	कंटकितापि
२६१	५	समादुधतस्तु	समाद् धतस्तु
२६२	४	भामा	भासा
२६२	८	दशोत्पादता	दशोरादता
२६२	१७	वानितायाः	वनितायाः
२६३	७	भुवव	भुवन
२६३	१०	द्रचि	द्रुचि
२६५	११	शाकत्य भाजह	भाजह
२६५	१२	तर्ययन्न	तर्पयन्न
२६६	२	व्रजत्	व्रजन्
२६६	१५	रुचं	रूचां
२६६	१६	भवस्त	भवॅस्त
२६७	१	प्राणान्वि	प्राणान्विवो
२६७	३	व्यजनः	व्यजनं
२६७	१६	हपाय	हयाय
२६७	१६	मनयतर्कयत्	मनस्यतर्कयत्
२६८	३	सज्जनः	सज्जनुः
२६६	४	शुञ्चूणवे	शुञ्चूषवो
२७०	३	विसतो	विहतो
२७०	१५	विनो	विनौ
२७०	२२	विलसतो	विलासतो

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२७१	१४	जगत इच्छा या	जगत श्लाघा
२७२	१३	फलष्यति	फलिष्यति
२७२	१६	चन्द्रकता	चन्द्रकला
२७३	६	प्रेम	प्रषे
२७३	१६	पुत्तरां	पत्तुरां
२७३	१७	दागने	दागमे
२७४	१	त्सुतो	सुतो
२७४	४	विभौ	विभौ
२७५	२	भाविन	भावित
२७५	३	मदेशे	प्रदेशे
२७५	१७	नैप्रधौ	नैषधौ
२७६	१६	द्राशाशया	द्रशाशया
२७७	१५	प्रवृषि	प्रावृषि
२७८	४	यत्येव	यत्येष
२७८	६	ममन्दमन्दं	ममन्द मन्ददं
२७८	१०	भाल	मात्त
२७८	१२	म्युअपतीति	म्युअमतीति
२७८	२१	तिपात	निपात
२७६	३	मयाढ्यतां	भयाढ्यतां
२७६	१४	सपथ	सत्पथ
२८१	१५	शपयोत्स	शययोत्स

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२८२	५	क्रमोश्च	क्रमोच्च
२८२	७	वथवा	वयवा
२८२	१७	कथोः	कयोः
२८३	५	सनदयिता	सन्दयितः
२८३	११	तरा	तरां
२८३	१२	कुषिकृतः	कुष्टिकृतः
२८३	१३	मुश्चकैः	मुच्चकैः
२८३	१४	जपस्य	जयन्य
२८३	१४	सहसां	सहसा
२८३	१५	रपादया	रयादया
२८४	१७	स्वर्गा	स्वर्ग
२८५	७	स्याज्ञा	स्माज्ञा
२८६	१३	दृष्टा	दष्टा
२८६	१६	तांगपत्नी	न्तंरङ्गपत्नी
२८६	२२	महेशाह्णो	महेशाहो
२८७	४	संख्यस्तदीया नपुः	सख्यास्त दीया न पुनः
२८७	७	स्वमिन्द	स्वमिन्दु
२८७	१३	स्परो	स्मरो
२८७	२२	स्विदू	स्विद्
२८८	३	परिशोष	परिशेषात्
२८८	७	भद्न्ती	भिदन्ती

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२८८	२१	तिरेति	निरेति
२९२	४	मवाप मनाप	मवाप भवाप
२९२	६	मन्विति	मान्विति
२९३	२	त्वगत्सु	लगत्सु
२९३	८	भिलाष वरो	भिलाष परो
२९३	१६	स्फुर	स्फुट
२९३	१८	मुह्यतं	मुह्यतां
२९५	३	माङ्कित	थाङ्कित
२९५	१०	स्वमथास्तु	स्वयमथास्तु
२९७	१	नवोद्‌घतं	नवोद्‌घृतं
३०२	१२	अवतरथति	अवतारथति
३०२	१८.	दक्त्या	दक्तया
३०३	१४	पुराप युक्त्ये	पुरापयुक्तये
३०५	१३	रस्यां	रास्यां
३०६	२२	पृथगतो	पृथगतोऽथगतो
३०७	२३	पश्चिमाशेन	पश्चिमांसेन
३०८	१	मिर्हत्त	मर्हत्त
३०८	४	तथान गुह्यम्	तथा नृगुह्यम्
३१२	७	भुक्तस्य	भुक्तस्य
३१३	८	चर्वणमस्त्य	चर्वणमत्य
३१४	३	परश्रिया	परश्रियः

पृष्ठः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
३१४	४	परोर्थेषु	परार्थेषु
३१४	१६	तृणतो	मृणतो
३१५	१०	खरीदी	खरादी
३१५	१६	लम्बेत्	लुम्बेत्
३१५	२०	निवदेहपांशु	निवहेदपांशु
३१६	३	वृद्धिमृष्टे	वृद्धिमृर्ष्टे
३१६	४	भवित्यव साविष यविजिष्णो	निरर्गलाषीर्भवितम जिष्णो
३१६	५	जग्धामृतमाति	जग्धावृतभिति
३१६	७	सुचिर्वितं	सुचर्वितं
३१६	१०	ऽङ्गलि	ऽङ्गुलि
३१६	१२	जयस्य	जयत्ययं
३१६	१८	लिखिव्यलीनः	लिरि व व्यलीनः
३१७	७	समाधिजानि	समाधिजानिः
३१७	८	श्रम्यति	श्राम्यति
३१७	११	कल्प	कल्पः
३१७	१७	रयातु	रतयातु
३१७	२०	नौतिः	नीतिः
३१७	२०	मीतिरास्ते	भीतिरास्ते
३१७	२१	पादुके वसति कराद कातते	पादुकेव सति कंटकाततते

पृष्ठाः	पंक्तय.	अशुद्धा	शुद्धाः
३१७	२१	यतः	यतेः
३१६	१५	निर्दै	निर्दे
३२०	१३	पीत्यत्र	पीत्यत्रा
३२०	१८	स्पृष्टा	स्पृष्ट्वा
३२१	३	मिताङ्कनां	मिताङ्कानां
३२३	६	दयापासीद	दयायासीद
३२५	१	विंशम	विंशभ
३२५	३	मत्कल	मुत्कल
३२५	१७	पूवजमहं	पूर्वजमहं
३२६	५	शव्गार्णं	शब्दार्णं
३२७	८	ससस्रशः	सहस्त्रशः
३२७	१४	विशार्दे	विशदि
३२८	६	प्रभी	प्रभो
३२८	१०	लवास्माकं	तवास्माकं
३२६	६	स्तोरण	स्तारेण

